प्रकाशक
रायबहादुर श्रीमोतीलालजी मुथा
भवानी पेठ सातारा सिटी
(M. S. M. Rly)

जिनागमाऽऽराधनयाऽऽराधिताऽखिलसज्जिनान् ।
चन्दनग्रन्थमालेयमाह्लादयतु सज्जनान् ॥ १ ॥
वसुनिधिनिधिभूमिमिते, हर्षोत्कर्षेऽभवेऽस्मिन्वर्षे ।
पौषे सितेऽष्टतिथ्यां, नन्दीसूत्रस्य मुद्रणं पूर्णम् ॥ २ ॥

मुद्रक
रा. रा. विठ्ठल हरि बर्वे,
आर्यभूषण मुद्रणालय,
९१५/१ शिवाजीनगर, पुणे ५.

प्रकाशकका वक्तव्य।



बन्धुओं! बडे हर्षका विषय है कि आज स्वर्गीय काकाजी शेठ चन्दनमलजी मुथाकी सदिच्छासे आगम-प्रकाशन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य करनेका मुझे सुअवसर मिला। गतवर्ष दशवैकालिक सूत्रका हिन्दी व मराठी भाषान्तर टीकाके साथ प्रकाशित किया, उसके बाद द्वितीय वर्षमें नन्दीसूत्रका प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, इसका संशोधन आदि कार्य पूज्यश्रीने सातारामेंही प्रारम्भ कर दिया था जो इस तीसरे वर्षमें अहमदनगर चातुर्मासके समय सामग्री संकलनसे पूर्ण हुआ, यद्यपि पूज्यश्रीका विचार इससमय लिखवाकर रखनेका था, तो भी हमारी विशेष प्रार्थनासे वह संशोधित पुस्तक हमको मिली और हमने कई प्रेसोंमे पूछताछ करनेके बाद पूनाके आर्यभूषण प्रेसमें छपवानेका प्रबन्ध किया।

मुद्रणकार्य कार्तिक पूर्णिमासीतक पूर्ण होसके इस विचारसे आश्विन विजयादशमीमें नन्दीसूत्रकी हस्तलिखित प्रति प्रेस मैनेजरको देदी गई, किन्तु पसन्दयोग्य कागज मिल नहीं सका, कागजके तलासमे विलम्ब होनेसे कार्तिक शु० ५ से मुद्रण कार्यका आरम्भ हुआ, प्रूफके आने जानेमें विशेष विलम्ब देखकर प्रेस मैनेजरने कहा कि इसतरह यह मुद्रणकार्य १ मासमें पूर्ण होना अशक्य है, एक संशोधक पूनामें रखिए, तदनुसार मार्गशीर्ष वद पञ्चमीसे प्रूफ संशोधनके लिये व्यवस्था पूनामे की गई, फिरभी पूज्यश्रीकी दृष्टिमे प्रूफ एकवार आना अनिवार्य होनेसे १ मासके स्थानमें २ माससे अधिक समय लगा।

प्रस्तुत संस्करण अनेक संस्करणोंके निरीक्षण करके तथा अनेक विद्वान् मुनिओंसे शङ्का समाधान करके परिश्रमके साथ सम्पन्न किया गया है, तथापि इसकी उपयोगिता व श्रमोंकी सफलता तो पाठकोंके सन्तोषसेही समझी जायगी।

प्रार्थी–

नम्र–मोतीलाल मुथा.

सातारा सिटी.

नन्दीसूत्रके सम्पादन आदि कार्यमें संगृहीत ग्रन्थ.

ग्रन्थनाम	प्रकाशक या प्राप्तिस्थान.
१ श्री नन्दीजी सूत्र मलयगिरि वृत्ति व बालावबोध	श्रीराय धनपतिसिंह बहादुरका आगमसंग्रह–अजीम गंज (भा ४५)
२ श्रीमन्नन्दिसूत्रम् चूर्णि हारि. वृत्ति	विजयदानसूरिसंशोधित इन्दौरसे मुद्रित
३ नन्दीसूत्र मूलपाठ	छोटेलाल यति जीवनकार्यालय अजमेर
४ नन्दीसूत्र पू. अमोलकऋषिजीकृत हिन्दीभाषानुवादसहित	लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसाद जौहरी, दक्षिण हैद्राबाद
५ नन्दीसूत्रम्–मलयगिरिकृत टीका	आगमोदय–समिति सूरत
६ नन्दीसूत्रचूर्णि मूलसहित चूर्णिकार मलयगिरि सं. १८७४	भाण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मंदिर पूना
७ बृहत्कल्पसूत्रम् सभाष्य (प्र विभाग)	जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर
८ भगवती सूत्र गु. भा	पण्डित भगवानदास सम्पादित गुजरात विद्यापीठ, अमदावाद
९ अर्धमागधी कोष	शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज सम्पादक–बम्बई स्था. कॉन्फरन्स
१० अभिधानराजेन्द्र	रतलाम
११ श्रीमदावश्यकनिर्युक्ति–दीपिका प्र विभाग	गुलाबचंद लल्लुभाई, भावनगर
१२ आवश्यक–सूत्रम् मलयगिरिवृत्ति तृतीय भाग	देवचंद लालभाई, मुंबई
१३ पाइअसद्दमहण्णवो	पण्डित हरगोविन्ददास टी. शेठ, न्याय व्याकरणतीर्थ, कलकत्ता
१४ रायपसेणइय–सूत्र टीका टिप्पणिसमेत	गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय अमदावाद
१५ समवायांग अभयदेव सूरिकृत टीका	आगमोदय समिति सूरत
१६ गोम्मटसार जीवकाण्ड	परमश्रुत प्रभावक मण्डल जौहरी बजार मुंबई
१७ स्थानांग	आगमोदय समिति, सूरत
१८ अनुयोगद्वार	" " "

नन्दीसूत्रके सम्पादन आदि कार्यमें संगृहीत ग्रन्थ

१९ वीरनिर्वाण संवत और जैन कालगणना	कल्याणविजय शास्त्रसमिति जालोर (मारवाड)
२० आर्हत आगमोनुं अवलोकन याने जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास	हीरालाल रसिकदास कापडिया, सूरत
२१ चतुर्थ कर्मग्रन्थ	पं. सुखलालजी सम्पादित, रोसन मुहल्ला, आगरा, प्राप्तिस्थान-शेठ हिरालालजी कापडिया, बम्बई.

नन्दीसूत्रके प्रकाशित संस्करण.



१ रायधनपतिसिंह बहादुरकी ओरसे-	मलयगिरि वृत्ति व बालावबोधसहित मलयगिरिकृत टीका-
२ आगमोदय समिति सूरत	नन्दीसूत्र सटीक
३ रतलाम-श्वेताम्बरसंस्था	श्रीनन्दीसूत्रस्य चूर्णि हारिभद्रीया वृत्तिश्च
४ लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद दक्षिण हैद्राबाद	नन्दीसूत्र हिन्दीभाषा टीकासहित पूज्यश्री अमोलकऋषिजी कृत
५ इन्दोरसे मुद्रित	श्रीमन्नन्दीसूत्रम्, चूर्णि हारिभद्रीय वृत्तिसहितम्
६ शेठीया ग्रन्थमाला, बिकानेर	मूलपत्राकार
७ जैन पुस्तकप्रकाशक समिति, रतलाम	” पुस्तकाकार
८ फलोदी—	” ”
९ जीवन कार्यालय, अजमेर	” ”
१० जैनसिद्धान्त स्वाध्यायमाला जामनगर	” ”
११ जीवन श्रेयस्कर पाठमाला, बिकानेर	” ”
१२ श्रीमहावीर जैन भाण्डार, दिल्ली	” ”

प्रबन्धकके दो शब्द।



करीब १८ वर्षसे मुझे जैन मुनिओंकी सेवा करनेका अवसर मिलरहा है, यह स्व० शेठ चन्दनमलजी व रा. ब. मोतीलालजी साहबकी उदारताकाही परिणाम है। सौभाग्यवश आगमसेवाके कार्यमें भी उनकी सदिच्छासे मैं नियुक्त किया गया। पूज्यश्रीजीके साथ पुस्तकान्तरसे पाठ मिलाना, छाया व अनुवादकी प्रेस-कॉपी करना, और पूज्यश्रीजीको दिखाकर प्रेसमें देना यह मेरा कार्य है, अतः प्रस्तुत नन्दीसूत्रके सम्पादन, प्रकाशन आदि कार्यका परिचय देना मेरा कर्तव्य है।

नन्दीसूत्रकी आवश्यकता एवं कार्य-परिचय।

आज मुद्रण-सामग्रीकी सुलभता है। इस युगमें जो थोडा भी शिक्षित हुआ चटसे दो चार पुस्तकोंका संग्रह कर उनमें कुछ घटा बढाके लेखक या संशोधक बन जाता है। किन्तु संशोधनके लिये पर्याप्त साधन व शक्ति नहीं मिलनेके कारणही उनसे अभ्यासियोंकी आवश्यकता पूर्ण नहीं होती। प्रस्तुत सूत्रके भी मूल टीका, चूर्णि और अनुवादके मिलकर सब ११ प्रकाशन हो चुके हैं, परन्तु उनमें मूल संशोधनका पर्याप्त प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐसाही स्थविरावलीके विषयमें भी बहुतसी पुस्तकोंमें ५० गाथायें और कईमें ४१ गाथायें प्रकाशित हुई हैं, किन्तु इसपर किसीने विशेष ऊहापोह नहीं किया। ऐसेही दृष्टिवादके वर्णनमें भी बहुतसा पाठभेद मिलता है। इन सबपर पर्यालोचन करते हुए नन्दीसूत्रका कोई संस्करण आजतक नहीं निकला, अतः ऐसा कोई संस्करण निकले यह चिरकालसे मेरी इच्छा थी। इधर बम्बई प्रेसिडेन्सीमें अर्धमागधी शिक्षणके कोर्समें नन्दीसूत्रको भी रक्खा है। विद्यार्थी समितिसे प्रकाशित टीकावाली नन्दीसूत्रकी पुस्तकसे प्रायः अपना काम चलाते थे किन्तु अभी वह भी अप्राप्यसी हो गई, इससे विशेषतया विद्यार्थिवर्गकी ओरसे यह मांग होने लगी कि नन्दीसूत्रके अनुवादका एक शुद्ध संस्करण निकाला जाय। उपरोक्त आवश्यकतासे हमने पूज्यश्रीजीसे प्रार्थना की, जिसके फलस्वरूप सातारांके चातुर्मासमेंही पूज्यश्रीने नन्दीसूत्रका कार्य प्रारम्भ कर दिया और भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिरकी हस्तलिखित प्रतिसे तथा आगमोदय समितिमुद्रित पुस्तकसे संशोधन व छायानुवाद सम्पन्न किया। चातुर्मासके बाद ८ मासतक यह कार्य बिलकुल बंद रहा। गुलेजगुड्ड चातुर्मासमें रा. सा. लालचन्दजी मुथाके सहयोगसे फिर इस कार्यको प्रारम्भ किया और मूल व छायाकी कापी तपासकर हिन्दी अनुवाद शुरू किया। पं० शशिकान्त-जीने टीप्पणोंको फिर व्यवस्थित किये और स्थविरावलीतक यह लेखनकार्य पूर्ण

किया । स्थविरावलीकी सात गाथाओंके बाबत उपाध्याय श्री आत्मारामजी, युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी, शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी और पंजाब-केसरी पू० काशीरामजी महेराजसे पूछा गया है कि टीकाओंमें इनकी व्याख्या नहीं की है, समितिकी पुस्तकमें भी ये नहीं हैं अत आपका इस विषयमें क्या मत है?

सभीकी ओरसे एकही उत्तर मिला कि ये परम्परासे मान्य हैं, रखनी चाहिये । इसकी अन्वेषणामें भी खासा प्रयत्न किया गया, किन्तु चातुर्मासकी समाप्तिपर्यन्त कोई योग्य प्रमाण नहीं मिला । चातुमार्सके बाद साधनोंके विघटन होने और पू. के विहारसे फिर वह कार्य रुका रहा । नगरके चातु-र्मासमें पुनः टिप्पण, परिशिष्टके अलावा उस लिपिबद्धका संशोधन किया । उस समय स्थविरावलीकी गाथाओंके बाबत भी समाधानजनक प्रमाण मिले, उसपरसे इनको मूल क्रमसेही रखनेका निश्चय किया और साथ यह टिप्पण भी लगादिया कि अमुक २ पुस्तकमें ये गाथाएँ नहीं हैं ।

इसप्रकार नन्दीसूत्रको पूर्ण अन्वेषणके साथ तय्यार करना और परि-शिष्ट आदिसे भी सुसज्जित कर रखना, जो समयपर प्रकाशमें लाया जा सके इसतरह पू का विचार इस समय केवल नन्दीसूत्रको साङ्गोपाङ्ग लिख रखवानेकाही था किन्तु रा ब साहबकी सम्मति यह हुई कि पूज्यश्री मार-वाड पधार जॉयंगे तब फिर अधिक विलम्ब होगा, अतः इसको तो इस वर्ष प्रकाशित करवालेना चाहिये ।

शेठजीकी इस विनतिपर पूज्यश्रीने भी वह संशोधित पुस्तक हमारे स्वाधीन की ।

कार्यमें बाधा ।

इसी बीचमें महायुद्धका बोझ विशेषतया आनेसे कागजकी कीमतमें महर्घता आगई, इतनाही नहीं बलिक कागज मिलनाही दुस्साध्य होगया । बहुत कुछ खोजनेपर जो भी सन्तोषजनक नहीं तो भी साधारणतया उपयोगी कागज लिया गया । अनेकविध बाधाओंको पार करके आज इस कार्यको पूर्ण कर रहा हूँ यह प्रेसके कार्यकर्ताओंके सौहार्द और सहायकोंके योग्य सहाय-काही परिणाम है ।

---

१ आवश्यक सूत्रकी दीपिकाके प्रारम्भमें ५० गाथाकी व्याख्या की है । जैन कालगणनामें मुनिश्री कल्याणविजयजीने लिखा है कि—' जिसप्रकार वल्लभी वाचनाके अनुयायिओंने युगप्रधान गण्डिकाप्रभृति प्रकीर्णक ग्रन्थोंमें अपनी परम्परागत युगप्रधानावलीका क्रम दिया है, उसी प्रकार देवर्द्धिजीने भी इस थेरावलीमें माथुरी वाचनानुयायी युगप्रधान थेरावलीका वर्णन किया है । इसमें कुल ३१ युगप्रधानोंका क्रम वर्णित है, किन्तु जबसे देवर्द्धिको २७ वा पुरुष माननेकी दन्तकथा प्रचलित हुई तबसे इस थेरावलीमें धर्म, भद्रगुप्त, वज्र, आर्यरक्षित और गोविन्दके वर्णनकी गाथाऍं प्रक्षिप्त समझी जाकर निकाल दी गई । वस्तुत उक्त गाथाएँ नन्दीकीही हैं ' जैन काल गणना—पृ १२५

धन्यवाद।

प्रस्तुत कार्यमें जिन २ महानुभावोंने लेखन, प्रूफ-संशोधन व पुस्तक प्रदान आदिसे सहाय किया है उनके शुभनाम धन्यवादके साथ नीचे दिये जाते हैं—

इसमें स्वयं पूज्यश्रीका परिश्रम विशाल है. शीघ्रताके चलते जिन अंशोंमें पूज्यश्रीके श्रमोंका उपयोग नहीं किया जासका, उन्हीं अंशोंमें त्रुटियाँ रही. यह हमारा स्पष्ट कहना है।

१ अमोलकचन्दजी सुरपुरिया, एम. ए. एलएल. बी.—अपने वकालत आदि आवश्यक कामोंको एकतरफ रखकर अन्तःकरणसे प्रेमपूर्वक परिश्रम किया है।

२ पूनमचन्दजी मेहेर—आपने पूज्यश्रीजीके लेखकी पक्की कॉपी व प्रूफ-संशोधनमें श्रम किया है।

३ आत्मानन्द जैन लायब्ररी, पूना—यहांसे नन्दीसूत्र टीकाकी पुस्तकें मिली हैं।

४ भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना—यहांसे नन्दीसूत्रकी अतिप्राचीन प्रति प्राप्त हुई जिसपर कि प्रस्तुत प्रकाशन आधार रखता है।

जिन २ पुस्तकोंसे सहाय लिया है, उनके लेखकोंका भी हम सादर संस्मरण करते हैं।

अभ्यर्थना।

इतना परिश्रम उठानेपर भी त्रुटियाँ रहजाना सम्भव है। सुज्ञ पाठक इसके लिये हमें क्षमा प्रदान करें व सुजनतासे इसकी हमें सूचना करें ताकि आगामी संस्करणमें उनका उपयोग किया जाय। इत्येतु किं बहुना-इत्यलम्।

निवेदक—दुःखमोचन झा।

॥ श्रीः ॥

श्रीनन्दीसूत्रकी भूमिका



" नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स "

लेखक—जैनधर्मदिवाकर पण्डितप्रवर उपाध्याय श्रीआत्मारामजी महाराज

इस अनादि संसारचक्रमें आत्माने अनेकवार जन्म-मरण किए। किन्तु अपने स्वरूपको भूलकर परगुणोंमें रत होनेसे यह जीव दुःखोंका ही अनुभव करता रहा। श्रुत, श्रद्धा और संयमसे पराङ्मुख होकर पुद्गल द्रव्योंको अपनाता हुआ मनुष्य अपने गुणोंको भूलगया। इसीसे अज्ञानवश होकर वह शारीरिक व मानसिक दुःखोंका अनुभव कर रहा है। उन दुःखोंसे छूटनेके लिये सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्रकी आराधनाही एकमात्र उपाय है। गुणमय होनेपर भी ज्ञान द्रव्यको मङ्गलमय बनादेता है। जैसे-पुष्पोंकी प्रतिष्ठा सुगन्धिसे होती है, ठीक इसीप्रकार आत्मद्रव्यकी पूजा प्रतिष्ठा ज्ञानसे होती है।

ज्ञान और नन्दीसूत्र—

नन्दीसूत्रमें पञ्चविध ज्ञानका वर्णन किया गया है, यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ज्ञान शब्दसे नन्दी शब्दका क्या सम्बन्ध है? विषय तो इसमें ज्ञानका है फिर इसका नाम नन्दी क्यों पडगया? इस प्रश्नपर आचार्यश्री मलयगिरिजीने जो प्रकाश डाला है, वह यों है—

" अथ नन्दिरिति कः शब्दाऽर्थः? उच्यते—टुनदु समृद्धौ इत्यस्य धातोः "उदितो नम्" इति नमि विहिते नन्दनं नन्दिः—प्रमोदो हर्ष इत्यर्थः। नन्दि हेतुत्वाज् ज्ञानपञ्चकाभिधायकमध्ययनमपि नन्दिः। नन्दन्ति प्राणिनोऽस्मिन् वेति नन्दिः, इदमेव प्रस्तुतमध्ययनम्। आविष्टलिङ्गत्वाच्चाध्ययनेऽपि प्रवर्तमानस्य नन्दिशब्दस्य पुंस्त्वम्। " इः सर्वधातुभ्यः " इत्यौणादिक इप्रत्ययः। अपरे तु 'नन्दी' इति दीर्घान्तं पठन्ति, ते च " इक् कृष्यादिभ्यः " इति सूत्रादिक्प्रत्ययं समानीय स्त्रीत्वेऽपि वर्तयन्ति।

स च नन्दिश्चतुर्द्धा—नामनन्दिः, स्थापनानन्दिः, द्रव्यनन्दिः, भावनन्दिश्च।

इसप्रकार नन्दीसूत्रकी चूर्णिमें भी लिखा है, जैसे कि—

" सम्यक्श्रुतस्कंधपातादीणं मंगलाधिकारे नंदित्ति पयत्था—मंदणं णंदी, नंदंति वा णेण त्ति नंदी, नंदी—पमोदो—हरिसो कंदप्पो इत्यर्थः । तस्स य चउब्विहो णिक्खेवो, गयाओ णामठ्ठवणाओ, दव्वणंदी—आणगो अणुवउत्तो,

अहवा—जाणग—भविय—सरीर—वतिरित्तो बारसविह तूरसंघातो इमो—

भंभा, मुकुंद, मद्दल, कडम्ब, झल्लरि, हुडुक्क कंसाला ।
काहल, तिलिमा, वंसो, पणवो, संखो य बारसमो ॥

भावणंदी—णंदिसद्दोवउत्तभावो, अहवा—" इमं पंचविहणाणपरूवगं णंदित्ति अज्झयणं " ।

यहाँपर श्रीहरिभद्रसूरि भी इसीप्रकार लिखते हैं। अतः नन्दी शब्द आनन्दजनक होनेके कारण ज्ञानका वाचक है, यतु साहित्यमें आए हुए नन्दी या नान्दीका । भावनन्दीशब्द पञ्चविध ज्ञानकाही बोधक है, ये पांच ज्ञान क्षयोपशम या क्षायिकभावके कारणसे उत्पन्न होते हैं। जैसे-मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान व मनःपर्यवज्ञान ये चारों ज्ञान क्षयोपशम भावपर निर्भर हैं, और केवलज्ञान क्षायिक भावसे उत्पन्न होता है । जब ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म और अन्तराय कर्मोंकी प्रकृतियाँ क्षीण हो जाती हैं तब आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे युक्त अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है । इस नन्दीसूत्रमें उन पांच ज्ञानोंका विषय सविस्तर प्रतिपादित किया गया है ।

यह सङ्कलित है या रचित ?

आचार्य श्रीदेववाचक क्षमाश्रमणने आगमग्रन्थोंसे मङ्गलरूप पञ्च ज्ञानोंका प्ररूपक श्रीनन्दीसूत्रका उद्धार किया है, जैसे कि उपाध्याय समयसुन्दरजी लिखते हैं[1]–" एकादशाङ्ग गणधरभाषित हैं । उन अङ्गशास्त्रोंके आधारपर क्षमाश्रमणने उत्कालिक आदि आगमोंका उद्धार किया है । " नन्दीशास्त्र जिन जिन आगमोंसे सङ्कलित है, उनकी चर्चा नीचे की जाती है—नन्दीसूत्रके मूलकी गवेषणा करते हुए प्रथम स्थानाङ्ग सूत्रके द्वितीयस्थान प्रथम उद्देश के ७१ वें सूत्रपर दृष्टि जाती है । वहाँ नन्दीसूत्रके लिये निम्नोक्त आधार मिलता है । देखें वह पाठ—

१ देखिए समाचारीशतक- प्रथम प्रकाश आगमस्थापनाधिकार पत्र ७७ । विशेष–इसने आगमोंद्धारमिति प्रकाशित आगमोंकी प्रमाण माना है, अतः पत्रसंख्या उसीमें देखें ।

"दुविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव। पच्चक्खे नाणे दुविहे प० तं०—केवलनाणे चेव १, नोकेवलनाणे चेव २। केवलनाणे दुविहे प० तं०—भवत्थकेवलनाणे चेव, सिद्धकेवलनाणे चेव। भवत्थ-केवलनाणे दुविहे प० तं०—सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अजोगिभवत्थ-केवलनाणे चेव। सजोगिभवत्थकेवलनाणे दुविहे प० तं०—पढमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। अहवा—चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभव-त्थकेवलनाणे चेव। एवं अजोगिभवत्थकेवलनाणे वि। सिद्धकेवलनाणे दुविहे प० तं०—अणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव परंपरसिद्धकेवलनाणे चेव। अणंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे प० तं०—एक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव"। (पूर्णपाठ)

इनके व्याख्यास्वरूप सूत्रभी आगममें मिलते हैं। अनुयोगद्वार सूत्रमें इन्द्रियप्रत्यक्ष नोइन्द्रियप्रत्यक्ष—ये दोनो भेद प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रतिपादित किए गए हैं। अवधिज्ञानके भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक ये दोनों भेद एवं इसकी व्याख्या भी विस्तारसे मिलती है। स्थानाङ्ग आदिमें अवधिज्ञानके छ भेद प्रति-पादित किए गए हैं। इन भेदोके नाम और मध्यगत—अन्तगत आदि विषय प्रज्ञापनासूत्रमें आते हैं। अवधिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे चार भेदोंका सविस्तर वर्णनभी भगवतीसूत्रमें देखा जाता है।

मनःपर्यवज्ञानके अधिकारका पाठ नन्दीसूत्र और प्रज्ञापनासूत्रमें समान-रूपसे ही आता है। भेद केवल इतनाही है कि यह प्रज्ञापनासूत्रमे आहारक शरीरके प्रसङ्गमे वर्णित है। इस सूत्रमें मनःपर्यवज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे जो चार भेद प्रदर्शित किए गए हैं, इनका सम्बन्ध भगवतीसूत्रसे मिलता है।

केवलज्ञानका वर्णन जिस रूपसे हम यहाँ पाते हैं, वहभी प्रज्ञापना सूत्रसे उद्धृत किया ज्ञात होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपसे केवलज्ञानके जो चार भेद प्रतिपादित किए हैं, वेभी भगवतीसूत्रसे सङ्कलित हैं।

---

१ अनुयोगद्वारसूत्र—जीवगुणप्रत्यक्षाधिकार पत्र २११। २ स्थानाङ्ग स्थान ६, सूत्र ५२६, पत्र ३७०। ३ प्रज्ञापनासूत्र पद ३३ सू० ३१७ पत्र ५३६। ४ भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देश २, सू० ३२३, पत्र ३५६। ५ प्रज्ञापना पद २१, सू० २७३, प ४२३। ६ देखिए चौथी पादटिप्पणी। ७ पद १, सू० ७०८, पत्र १८। ८. देखिए चौथी पादटिप्पणी।

मतिज्ञानके विषयका मूल (बीजरूप) स्थानाङ्गसूत्र स्थान २, उद्देश १, सूत्र ७१ में साधारणरूपसे आचुका है, किन्तु उसके अट्ठाइस भेदोंका वर्णन समवायाङ्गसूत्रमें मिलता है। सम्भव है कि नन्दीसूत्रमें मतिज्ञानका जो सविस्तर वर्णन आया है, वह किसी अन्य (अधुना अप्राप्य) जैन आगमसे सङ्गृहीत हुआ हो। मतिज्ञानकेभी चारों (द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव) भेद भगवतीसूत्रसे उद्धृत किए हुए ज्ञात होते हैं। किन्तु भगवतीसूत्रमें केवल 'पासइ' है और नन्दीमें 'न पासइ' ऐसा पाठ आता है, शेष पाठ समान है।

श्रुतज्ञानका विषयभी यहाँ भगवतीसूत्रसे उद्धृत किया गया है—

“ कइविहे णं भंते ! गणिपिडए प० ? गोयमा ! दुवालसंगे गणिपिडए प० तं०—आयारो जाव दिट्ठिवाओ । से किं तं आयारो ? आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयर० एवं अंगपरूवणा भणियव्वा, जहा नंदीए जाव—

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ १ ॥”

इन सबोंके अतिरिक्त नन्दीसूत्रके कितनेही स्थल स्थानाङ्गसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र, दशाश्रुतस्कन्धसूत्र आदि अनेकों आगमग्रन्थोंके कितनेही स्थानोंसे मिलते हैं। इसप्रकारकी समानतासे यह बात भली भाँति प्रमाणित हो जाती है कि देववाचक क्षमाश्रमणका यह ग्रन्थ विविध आगमोंसे सङ्कलित है, निर्मित नहीं है।)

नन्दीसूत्रकी प्रामाणिकता—

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमणने भगवान् महावीर स्वामीके ९८० वर्ष पश्चात् अर्थात् ४५४ ई० (५११ वि०) में वलभी नगरीमें साधुसङ्घको एकत्र किया। तबतक सारा आगम कण्ठस्थही रक्खा जाता था। देववाचक क्षमाश्रमणके प्रयत्नसे साधुसङ्घके उस महान् अधिवेशनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि तबतक कण्ठस्थ चले आते आगमोंको साधुओंने लिपिबद्ध करलिया। एक स्थानमें बैठकर एकही समयमें साधुओंद्वारा लिखे होनेके कारण हम आगमी इन विविध ग्रन्थोंमें सामञ्जस्य पाते हैं और इसीलिये एक ग्रन्थका प्रामाण्य अथवा निर्देश दूसरे ग्रन्थमें पाते हैं। समाचारीशतकमें इस विषयको भिन्न प्रकारसे स्पष्ट किया है—

---

१ समवायाङ्गसूत्र पत्र ७५। २ देखिए पृष्ठ ३ की ४ थी पादटिप्पणी। ३ भ० सू० शतक २५ उद्देश ३ सूत्र ७३१ पत्र ८९६। ४ समाचारीशतक पत्र ७७।

"साम्प्रतं वर्तमानाः पञ्चचत्वारिंशदप्यागमाः श्रीदेवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणैः श्रीवीरादशीत्यधिकनवशतवर्षे ९८० जातेन द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षवशात् ? (जातया द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षतया) बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ च जातायाम्, यदाहुः–"प्रसह्य श्रीजिनशासनं रक्षणीयम्, तद्रक्षणञ्च सिद्धान्ताधीनम्" इति भविष्यद्भव्यलोकोपकाराय श्रुतभक्तये च श्रीसङ्घाऽऽग्रहान्मृताऽवशिष्ट तत्कालीन ? (लिक) सर्वसाधून् वल्लभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छिन्नाऽवशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितान् आगमाऽऽलापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या सङ्कलय्य (ते) पुस्तकाऽऽरूढाः कृताः। ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्सङ्कलनाऽनन्तरं सर्वेषां पञ्चचत्वारिंशन्मितानामप्यागमानां कर्ता श्रीदेवार्द्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः। तज् ज्ञापकमपीदम्–'यथा श्रीभगवतीसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम्। प्रज्ञापनासूत्रं च वीरात् पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशतमिते वर्षे जातं श्रीश्यामाचार्यकृतम्। श्रीभगवत्यां च बहुषु स्थानेषु साक्षिः ? लिखितास्ति–'जहा पन्नवणाए' एवमन्येष्वप्यङ्गेषु–उपाङ्गसाक्षिः ? लिखिता, (साक्ष्यं लिखितम्) तद्वचने त्वया उपयोगो देयः"।

इस कथनसे यह भलीभांति सिद्ध हो गया कि देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण सङ्कलयिता थे। एक आगममें दूसरे आगमके निर्देशका कारणभी इसीसे समझमें आजाता है। नन्दीसूत्रका निर्देश अन्य आगमोंमे मिलता है—

जहा नंदीए[१]। जहा नंदीए[२]। जहा नंदीए[३]। जहा नंदीए[४]।

इस प्रकार अन्यान्य आगमोंमें भी नन्दीसूत्रका उल्लेख पाया जाता है। इससे नन्दीसूत्रकी पूर्ण प्रामाणिकता व प्राचीनता सिद्ध होती है।

नन्दीसूत्रमें अवतरणनिर्देशकी शैली—

आगमोंकी प्राचीनशैलीसे पता चलता है कि प्रस्तुत आगमका प्रस्तुत आगममें भी निर्देश किया जाता था, जैसे कि-समवायाङ्गसूत्रमें द्वादशाङ्गके वर्णनप्रसङ्गमें खुद समवायाङ्गका भी नाम आया है। ऐसे व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रमे द्वादशाङ्गका उल्लेख करते समय खुद व्याख्याप्रज्ञप्तिका भी नाम आया है। यही क्रम अन्य आगमोंमें भी मिलता है। यह प्राचीन परम्परा वेदोंमें[५] भी पाई जाती है, जैसे कि—

१।२ भग सू. शतक ८ उद्देश २ सू० ३२३ पत्र ३५६ पंक्ति ६ और ८।

३ समवायाङ्ग समवाय ८८ सू. ८८ पत्र ८८। ४ रायपसेणइयं पत्र ३०५।

५ यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ४।

" सुपर्णोऽसि गरुत्माँ स्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दाᳲᳯ स्यङ्गानि यजूᳲᳯषि नाम । "

इसी प्राचीन शैलीको नन्दीसूत्रमें भी स्वीकार किया है। अतएव उसका लिङ्गसूत्रकी गणनामें नन्दीसूत्रका नाम मिलता है।

अश्रुतनिश्रितज्ञानकी विशेषता—

मतिज्ञानके श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित ये दो भेद प्रतिपादित किये गए हैं। श्रुतनिश्रितका जो विषय नन्दीसूत्रमें प्रतिपादित किया गया है । वह अन्य आगमोंमें विद्यमान है। किन्तु अश्रुतनिश्रितके विषयमें जो गाथायें यहाँ दी गई हैं, वे अन्यत्र नहीं मिलती। सम्भव है देववाचक क्षमाश्रमणने उदाहरणके रूपमें इन गाथाओंका निर्माण स्वयं किया हो।

नन्दीको सूत्र कहना या सूची ?

स्थानाङ्ग सूत्रके द्वितीयस्थान प्रथम उद्देशमें श्रुतज्ञानके दो भेद किये गए हैं, जैसे कि—अङ्गप्रविष्टश्रुत और अङ्गबाह्यश्रुत। अङ्गबाह्यके भी आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त ऐसे दो भेद किये गए हैं। आवश्यकव्यतिरिक्तके भी कालिक तथा उत्कालिक ये दो भेद किये गए हैं।

देववाचक क्षमाश्रमणने स्थानाङ्गसूत्र और व्यवहारसूत्रमें आए हुए आगमोंके नाम तथा उनके अपने समयमें जो आगम विद्यमान थे उनमें जो कालिकश्रुतके अन्तर्गत थे उनका वैसा निर्देश करदिया। और जो उत्कालिक श्रुत थे उन्हें उत्कालिक निर्दिष्ट कर दिये जैसे कि चार मूलसूत्रोंमेंसे उत्तराध्ययनसूत्र कालिक है और दशवैकालिक नन्दी अनुयोगद्वार ये तीनों सूत्र उत्कालिक हैं। इसीप्रकार उपाङ्ग आदि सूत्रोंके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिए। नन्दीसूत्रमें अनुक्रमणिका अंश गौण है, सूत्र अंशही प्रधान है, अतः इसका सूत्र नामही सार्थक है।

अक्षर आदि १४ श्रुतका आधार कहाँसे लिया ?—

नन्दीसूत्रमें श्रुतज्ञानके १४ भेद वर्णित हैं, जैसे कि—

" से किं तं सुयनाणपरोक्खं ? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पण्णत्तं, तंजहा—अक्खरसुयं १ अणक्खरसुयं २ सण्णिसुयं ३ असण्णि

१ " से किं तं आभिणिबोहियनाणं ? आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं तंजहा—सुयनिस्सियं असुयनिस्सियं च। से किं तं असुयनिस्सियं ? असुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—

उप्पत्तिया वेणइया कम्मया पारिणामिया ।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता पंचमा नोवलब्भइ ॥ १ ॥
असुतनिश्रित नन्दी।

सुयं ४ सम्मसुयं ५ मिच्छसुयं ६ साइयं ७ अणाइयं ८ सपज्जवसियं ९ अपज्जवसियं १० गमियं ११ अगमियं १२ अंगपविट्ठं १३ अणंगपविट्ठं[1] १४ "।

यह प्रसङ्ग भगवतीसूत्रसे लिया गया है। वहाँपर नन्दीसूत्रकी अन्तिम गाथा पर्यन्तका निर्देश है। नन्दीसूत्रकी अन्तिमगाथा ९० वीं गाथा है। किन्तु श्रुतज्ञानके चतुर्दश भेदोंका जो वर्णन विस्तारपूर्वक पहले आ चुका है, उसका पुनः संक्षेपसे ८६ वीं गाथामे वर्णन किया गया है जैसे कि--

" अक्खर, सन्नी, सम्मं, साइयं, खलु सपज्जवसियं च ।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्त वि एए सपडिवक्खा ॥ "

अन्तमे निष्कर्ष यह निकला कि अक्षरश्रुत अनक्षरश्रुत आदि विषय भी आगमबाह्य नहीं है।

केतुभूतकी द्विरुक्ति—

तीर्थङ्करोंके अन्तरोंमें अर्थात् एकके वाद दूसरे तीर्थङ्करके बीच समयमें दृष्टिवादका व्यवच्छेद होना लिखा है[3]। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके हजार वर्षके बाद १४ पूर्वोंका व्यवच्छेद हुआ[4]। दृष्टिवादका जो प्रसङ्ग समवायाङ्ग सूत्रके द्वादशाङ्ग वर्णनमे आता है वैसाही प्रसङ्ग हम नन्दीमें पाते हैं। केतुभूतका सम्बन्ध इसी व्यवच्छिन्न (विच्छेद पाये हुए) दृष्टिवादसे है, अतः 'केउभूयं' के दो बार आनेका कारण ज्ञात करना असम्भव है। वृत्तिकार भी इस व्यवच्छिन्न दृष्टिवादकी व्याख्याके सम्बन्धमे लिखते हैं—

" सर्वमिदं प्रायो व्यवच्छिन्नम्, तथाऽपि लेशतो यथागतसम्प्रदायात् किञ्चिद् व्याख्यायते.... .... . "

और चूर्णिमें भी-" तं च सव्वं समूलुत्तरभेदं सुत्तत्थओ वोच्छिण्णं जहागतसंपदायं वा वच्चं " (पृ० ५५) ऐसाही लिखा है। हरिभद्रसूरि भी इससे सहमत थे। तभी तो उन्होंने अपनी वृत्तिमें पृ १०६ पर चूर्णिका उक्त वाक्य उद्धृत किया है। " यथाऽऽगत सम्प्रदाय ' के अतिरिक्त और क्या आलम्बन था। इस स्थितिमें ' केउभूयं ' की द्विरुक्तिका कारण समझना बडा ही कठिन है।

भारत रामायण आदिका उल्लेख—

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके समयमें गणधरोंने सूत्ररूपसे द्वादशाङ्गीकी रचना की। उनके समयमें भारत, रामायण आदि ग्रन्थ विद्यमान थे,

---

१ नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान भेद, सूत्र ३८। २ भगवती सूत्र, पत्र ८६६, सूत्रसंख्या ७३२, ३ भगवती सूत्र, पत्र ७९२ (सू. ६७७) ४. भगवती सूत्र, पत्र ७९२ (सू. ६७८)

अतः उनका नाम आना असङ्गत नहीं है। पश्चात् देववाचक क्षमाश्रमणने भारत और रामायणके साथ अन्य शास्त्रोंका भी उल्लेख अपने नन्दीसूत्रमें कर दिया, जैसे कि—कोडिल्ल (कौटिल्य चाणक्य) आदि।[1]

नन्दीसूत्रके अध्ययनकी विशिष्टता—

नन्दीसूत्रमें पाँच ज्ञानोंका विस्तृत स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। कारण कि "पढमं नाणं तओ दया" अर्थात् दयाकी अपेक्षा ज्ञानका महत्त्व अधिक है, इसलिए नन्दीसूत्रका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अङ्गसूत्रोंसे प्रायः उद्धृतकर सङ्कलयिता श्रीदेववाचक क्षमाश्रमणने इसको उत्कालिक सूत्रोंके अन्तर्भूत कर दिया, जिससे केवल अनध्यायको छोड़कर सदैव इसका स्वाध्याय किया जा सकता है। ज्ञानका प्रतिपादक होनेसे इसका माङ्गलिक होना भी स्वतः सिद्ध है। ज्ञानकी आराधनासे जब निर्वाणपदकी भी प्राप्ति हो सकती है तो फिर और वस्तुओंका तो कहना ही क्या! इस बातका साक्ष्य भगवतीसूत्रमें है—

"उक्कोसियं णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति। अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति, अत्थेगइए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जंति।

मज्झिमियं णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ।

जहन्नियण्णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव अंतं करेइ, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ"।[2]

अर्थात् जघन्य सम्यग्ज्ञानकी आराधनासे भी जीव अधिकसे अधिक ७-८ भव करके सिद्ध हो जाता है। इससे ज्ञानमय नन्दीसूत्रकी विशिष्टता सहज मालूम हो सकती है।

इत्यलं विस्तरेण।

दीपावली १९९८ }

जैनमुनि आत्माराम,
लुधियाना (पंजाब)

---

१ नन्दीसूत्र मिथ्याश्रुताधिकार। २ भग. श. ८ उ. १ सू. ३५५।

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

प्रस्तावना



प्रस्तुत शास्त्रका नाम नन्दीसूत्र है। निर्युक्तिकारने नन्दी शब्दके निक्षेप करते हुए कहा है कि 'भावंमि नाणपणगं' अर्थात् भावनिक्षेपमें पांच ज्ञानको नन्दी कहते हैं। नाट्यशास्त्रमें और १२ प्रकारके वाद्य-अर्थमें भी नन्दी शब्दका प्रयोग आता है। किन्तु यहां पांच ज्ञानरूप भावनन्दीका वर्णन करने एवं भव्य जनोंके प्रमोदका कारण होनेसे यह शास्त्र नन्दी कहाता है। पांच ज्ञानकी सूचना करनेसे यह सूत्र है, विशेष जाननेके लिये इसी सूत्रकी भूमिका देखे।

अङ्गादि आगमोंमें नन्दीका स्थान

अङ्ग, उपाङ्ग, मूल व छेद इस प्रकार जैनागमोंके प्रसिद्ध जो चार विभाग हैं उनमे प्रस्तुत नन्दीसूत्रका मूल आगममे स्थान पाता है, क्योंकि इसमे आत्माके मूल गुण ज्ञानका वर्णन किया गया है। [अङ्ग, उपाङ्ग, मूल व छेदकी विशेष जानाकरीके लिए सातारासे प्रकाशित दशवैकालिक सूत्रकी भूमिका देखे]

विषय

नन्दीसूत्रका विषय है आत्माके ज्ञानगुणका वर्णन करना, इसमे ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले संस्थान आदि सब बातोंको नहीं कहके पांचों ज्ञानके मुख्य भेदोंका स्वरूप और उनके जाननेका विषय दिखाया गया है।

नन्दीसूत्रका विषय परिचय

नन्दीसूत्रमे आचार्य श्रीदेववाचकने सर्व प्रथम अर्हदादि आवलिकारूपसे ५० गाथाओंमें मङ्गलाचरण किया है। फिर आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, आदि ज्ञानके ५ भेद करके प्रकारान्तरसे प्रत्यक्ष व परोक्ष संज्ञासे ज्ञानके दो प्रकार किये हैं। प्रत्यक्षके इन्द्रियप्रत्यक्ष व नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ऐसे दो भेद करके प्रथम ५ प्रकारका इन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है। जिसको जैन न्यायशास्त्रकी परिभाषामें सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। तदनन्तर नोइन्द्रियप्रत्यक्षमें अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान व केवलज्ञानका अवान्तर भेदोंके साथ वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रधानत्वकी दृष्टिसे प्रत्यक्षका वर्णन करके फिर परोक्षज्ञानमें आभिनिबोधिक ज्ञानके अश्रुत-निश्रित व श्रुत-निश्रित ऐसे दो भेद किए गए हैं। तथा औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धिओंके उदाहरणपूर्वक वर्णनसे अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान कहा गया है, एवं अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा भेदसे भिन्न श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका प्रभेदोंसे वर्णन करके प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे

अवग्रह, ईहा आदिमें परस्पर भेद समझाया गया है। इसके बाद उत्तरार्धमें श्रुतज्ञान परोक्षके १ अक्षर २ अनक्षर ३ संज्ञि ४ असंज्ञि ५ सम्यक् ६ मिथ्या ७ सादि ८ अनादि ९ सपर्यवसान १० अपर्यवसान ११ गमिक १२ अगमिक १३ अङ्गप्रविष्ट १४ और अनङ्गप्रविष्ट श्रुत ऐसे १४ भेदोंका उद्देश करके क्रमशः उनका स्वरूप बताया गया है। अङ्गबाह्यश्रुतमें आवश्यकके ६ अध्ययन और उत्कालिक व कालिक श्रुतोंकी परिगणना की गई है। बाद अङ्गप्रविष्टमें ११ अङ्गोंका विषय परिचय व श्रुतस्कन्ध अध्ययन आदिका परिमाण एवं उद्देशन-समुद्देशन-कालका निर्देश किया गया है। फिर १२ वें अङ्ग दृष्टिवादके परिकर्म १, सूत्र २ पूर्वगत ३ अनुयोग ४, व चूलिका ५, इन पाँचों प्रकारोंका अवान्तर भेदोंके साथ वर्णन किया गया है। अन्तमें द्वादशाङ्गीके विराधनाका संसारमें भ्रमणरूप और उसकी आराधनाका संसार तारणरूप फल बताया है। उपसंहारमें पञ्चास्तिकायकी तरह द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाकर श्रुतज्ञानके भेदोंका दो गाथासे संग्रह किया है। आगे अनुयोग प्रदान एवं अनुयोग ज्ञानकी विधि कही गई है। इसप्रकार श्रुतज्ञान परोक्षके साथ नन्दीसूत्रकी समाप्ति होती है।

रचनाका मूल-आधार

इसकी रचनाका मूल आधार पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद पूर्व सम्भव होता है, क्योंकि उसमें ज्ञानसम्बन्धी वर्णन है। वर्तमानके अङ्गोपाङ्ग आदि शास्त्रोंमें भी इसका आधार मिलता है, जिसका उपाध्यायजीने भूमिकामें दिग्दर्शन कराया है। अतः विशेष जाननेके लिये भूमिका पढ़ें।

रचना शैली

नन्दीसूत्रकी रचना सूत्र और गाथा उभयरूपसे है। इसकी सूत्ररचना प्रश्नोत्तरके रूपमें होनेसे प्रायः सुगम है। प्रत्येक प्रश्न-वाक्यके अन्तिमपदको उत्तर वाक्यमें भी दुहराया गया है। प्राचीन आगमोंमें बहुधा यह शैली दृष्टिगोचर होती है (जैसे भगवतीसूत्र आदि अङ्गशास्त्र) यहाँ पाठकोंको शङ्का होगी कि शास्त्र तो अल्पाक्षर और बहु अर्थवाले होते हैं। फिर इस सूत्रमें एकही पदकी अनेक बार आवृत्ति क्यों की? क्या इससे पुनरुक्ति दोष नहीं होगा? उत्तरमें पुनरुक्ति सर्वत्र दोषही होता है या कहीं गुण भी? यह समझना चाहिये। आचार्योंने कई प्रसङ्ग ऐसे माने हैं जिनमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता, जैसे—

पुनरुक्तिर्न दुष्यते

उपरोक्त श्लोकमें आदरार्थ किये गये पुनरुक्तको भी निर्दोष माना है, इसके सिवाय कहीं २ सुबोधार्थ भी शाब्दिक या आर्थिक पुनरुक्ति की गई है, जैसे—आयविज्जा, पज्ज० आदि, इसके लिये आचार्यने 'शिष्यबुद्धि-वैशद्यार्थम्' ऐसा उत्तर दिया है।

भाषा और ग्रन्थ-परिमाण

भगवती सूत्रकी तरह नन्दीसूत्रकी मूलभाषा प्राचीन प्राकृत है। प्राकृत साहित्यमे थोडा भी अभ्यास रखनेवाला इसपरसे सहज बोध कर सकता है। ग्रन्थ-परिमाण सातसौका कहा जाता है। जैसे १४७४ की हस्तलिखित प्रतिमे ग्रन्थाग्रं ७०० लिखा है। किन्तु 'जयइ' पदसे अन्तिम 'से त्तं नन्दी' इस पदतकके पाठको अक्षरगणनासे गिननेपर २०६८६ अक्षर होते हैं, जिनके ६४६ श्लोक १४ अक्षर होते हैं। अगर कहा जाय कि ७०० की गणना आणुन्नानन्दीको लेकर पूरी की गई है, तो उसमें बहुत श्लोक बढते हैं, अतः ऐसा मानना भी सङ्गत नहीं। प्रचलित नन्दीसूत्रका मूलपाठ यदि कौंसके पाठोंको मिलावे तो भी ६५० करीब होता है; सम्भव है कालक्रमसे कुछ पाठकी कमी हो गई हो, या लेखकोंने अनुमानसे ७०० लिखा हो।

कर्ता

(नन्दीसूत्रके कर्ता श्रीदेववाचक आचार्य माने जाते है। चूर्णिकार श्री-जिनदासगणि आपका परिचय देते हुए लिखते हैं कि 'देववायगो साहुजण-हियट्ठाए इणमाह'-नन्दीचूर्णि (पृ २०१/२) इसकी पुष्टीमे वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरिका उल्लेख इस प्रकार है-"देववाचकोऽधिकृताध्ययनाविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां कुर्वन्निदमाह" फिर-'न नु देववाचकरचितोऽयं ग्रन्थ इति' नन्दी हा. वृ. (पृ ३७)

(उपरोक्त उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्दीसूत्रके लेखक श्रीदेव वाचक आचार्य है, किन्तु यह विचारना आवश्यक हो जाता है कि आचार्य-श्रीने इसको मौलिक निर्माण किया है या प्राचीन शास्त्रोंसे उद्धरण किया है?

टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरिने मनःपर्यवज्ञानकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ देववाचकरचित है, तब अप्रासङ्गिक गौतमका आमन्त्रण क्यों? इस शङ्काके उत्तरमे आप कहते हैं कि "पूर्वसूत्रोंके आलापकही अर्थके वशसे आचार्यने रचे हैं" देखो 'पूर्वसूत्रालापका एव अर्थवशाद्विरचिताः'-श्रीमन्नन्दी-हा वृ (पृ ४१) १

उपाध्याय समयसुन्दर गणि भी लिखते हैं-'अङ्गशास्त्रोंके सिवाय अन्य शास्त्र आचार्योंने अङ्गोंसे उद्धरण किये हैं' देखो-'एकादश अङ्गानि गणधर-भाषितानि, अन्यागमाः सर्वेऽपि छद्मस्थै अङ्गेभ्य· उद्धृताः सन्ति'-पृ ७७, समाचारीशतक। 2

सङ्कलनकर्ता व निर्माता

(श्रीदेववाचक आचार्य प्रस्तुत सूत्रके सङ्कलनकर्ता हैं। इन्होंने इसका सङ्कलन किया है, नूतन निर्माण नहीं।) उपाध्यायश्रीने अपनी भूमिकामें इस विषयको सप्रमाण सिद्ध किया है। टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरिजी भी मनःपर्यव ज्ञानकी व्याख्या करते हुए 'पूर्व सूत्रोंके आलापकोंकोही आचार्यने अर्थवशसे रचे हैं' ऐसा लिखते है, देखो टीका पृ ४१।

दूसरी बात यह है कि नन्दीसूत्रमें आये हुए 'तेरासिय' पदका अर्थ चूर्णिकार व वृत्तिकारोंने 'आजीविक सम्प्रदाय' ही किया है। देखो- 'ते चेव आजीविया तेरासिया भणिया' चूर्णि पृ १०५ पं ९ और 'त्रैराशिकाश्चाजीविका एवोच्यन्ते' हा वृ पृ १०७ पं ७। यदि देववाचककोही नन्दीसूत्रका मूल कर्ता माना होता तो चूर्णि और वृत्तिमें 'तेरासिय' पदका अर्थ भी आचार्य त्रैराशिक सम्प्रदाय करते क्योंकि वी० नि० ५४४ में रोहगुप्त आचार्यसे त्रैराशिक सम्प्रदायका आविर्भाव हो चुका था। फिर भी 'तेरासिय' पदसे आजीविक ही कहे जाते हैं, (ऐसा आचार्यश्रीका निश्चयात्मक वचन यही सिद्ध करता है कि नन्दीसूत्रकी मौलिक रचना गणधरकृत है क्योंकि देववाचकका सत्ता समय दूष्यगणिके बाद माना गया है, वी० नि० ५४४ के पूर्वका नहीं। इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि देववाचक आचार्य नन्दीसूत्रके संकलनकर्ता ही हैं।)

देववाचक और देवर्द्धिगणी

नन्दीसूत्रके संकलनकर्ता श्रीदेववाचक और देवर्द्धिगणि दोनों भिन्न भिन्न हैं या एकही आचार्यके ये दो नाम हैं? इस विषयमें श्रीमन्नन्दीसूत्रके उपोद्घातमें इस प्रकार लिखा है— "देववाचकका दूसरा नाम भी देवर्द्धिगणी है, किन्तु नन्दीसूत्रके संकलनकर्ता देववाचक आगमोंको पुस्तकारूढ करनेवाले देवर्द्धिसे भिन्न हैं"। स्थविरावलीकी मेरुतुङ्गीया टीकामें भी 'दूष्यगणिनो य देवर्द्धि' लिखकर देववाचकका दूसरा नाम देवर्द्धि माना है। 'गच्छमतप्रबन्ध अने संघ प्रगति' के लेखक बुद्धिसागर सूरीने पृ ५२६ की पट्टावलीमें भी देववाचक और देवर्द्धिको भिन्न भिन्न माने हैं।

उपरोक्त मान्यतामें नन्दी व कल्पसूत्रकी स्थविरावली प्रमाण समझी जाती है, क्योंकि नन्दीसूत्रके रचयिता देववाचकको वृत्तिकारने दूष्यगणिका शिष्य कहा है, और कल्पकी स्थविरावलीके निर्माता देवर्द्धि गणी शाण्डिल्यके शिष्य माने गये हैं, देवर्द्धि जो पूर्ववर्ती हैं वे शास्त्रोंको पुस्तकारूढ करनेवाले माने जावें और दूष्यगणिके शिष्य देववाचक नन्दीसूत्रके लेखक होंगे। अर्थात् शास्त्रलेखनके बाद नन्दीसूत्रका निर्माण मानना होगा जो सर्वथा विरुद्ध है।

देवर्द्धिका परिचय

प्रस्तुत सूत्रके संकलयिता श्री देवर्द्धि कब और कहां जन्म धारण किये तथा उनको किस समय मुनि व सूरिपद प्राप्त हुआ? आदि विषयोंका स्पष्ट उल्लेख आज अनुपलब्ध है। तथापि स्थविरावली आदि साहित्यमें इनका कुछ परिचय मिलता है जैसे-दशाश्रुतस्कन्ध-पंच अष्टमाध्ययनकी—

'सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने।
देवड्ढि खमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि'॥ १४॥

इस गाथासे मालुम होता है कि देवर्द्धि जन्मसे काश्यपगोत्री थे।

देवर्द्धिगणिकी शाखा

वृत्तिकार श्री मलयगिरीजीने प्राचीन व्याख्याकारोंकी व्याख्याके आधारपर नन्दीसूत्रमें आई हुई स्थविरावलीको देवर्द्धिकी गुर्वावली मानी है और इसीलिये उन्होंने देवर्द्धिको महागिरिशाखीय दूष्य माने है। इस विषयमें उनका लेख इस प्रकार है-'नन्दीसूत्रके प्रारम्भमें भगवान देवर्द्धिगणिजीने जो स्थविरावली दी है वह हमारे मतसे माथुरी वाचनानुगत युगप्रधान स्थविरावली है'। पर आचार्य्य मलयगिरिजी मेरुतुङ्गसूरि-प्रभृति आचार्योंका कथन है कि नन्दीकी थेरावली महागिरिशाखीय देवर्द्धिगणिकी गुरुपरम्परा मात्र है। इस विषयका मलयगिरि सूरिका उल्लेख इस प्रकार है- "तत्र सुहस्तिन आरभ्य सुस्थितसुप्रतिबुद्धादिक्रमेणावलिका विनिर्गता सा यथा दशाश्रुतस्कन्धे तथैव द्रष्टव्या, न च तयेहाधिकारः, तस्यामावलिकायां प्रस्तुताध्ययनकारकस्य देववाचकस्याभावात्, तत इह महागिर्यावलिकयाऽधिकारः"-नन्दीसूत्र टीका, पत्र ४९।

मेरुतुङ्गसूरि भी स्थविरावली टीकामें इस प्रकार लिखते हैं-'अत्र चाऽयं वृद्धसम्प्रदायः-स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्-आर्य्यमहागिरिः, आर्य्यसुहस्ती च। तत्र आर्य्यमहागिरेर्या शाखा सा मुख्या, सा चैवं स्थविरावल्यामुक्ता'-

सूरि वलिस्सह साई, सामज्जो संडिलो य जीयधरो।
अज्जसमुद्दो मंगू, नंदिल्लो नागहत्थी य॥
रेवई सिंहो खंदिल, हिमवं नागज्जुणा य गोविंदा।
सिरिभूइदिन्न-लोहिच्च, दूसगणिणो य देवड्ढी॥

(मेरुतुङ्गी थेरावली टीका ५)

चूर्णिकार व श्री हरिभद्रसूरिने[1] भी इनको दूष्यगणिके शिष्य लिखकर महागिरीय शाखाके आचार्य माना है, जो इस प्रकार है-'एवं कयमंगलोवयारे थेरावलिकमे य दंसिए अरिहेसु दूसगणिसीसो देववायगो साधुजणहियट्ठाए इणमाह'-चूर्णि पृ. १०। 'दूष्यगणिशिष्यो देववाचकः'-हारि. वृ पृ १०।

इस प्रकार प्राचीन आचार्योंके लेख और प्रसिद्धिमे देवर्द्धिगणी महागणी शाखाके आचार्य्य माने गए हैं किन्तु मुनि कल्याणविजयजीने अपने 'जैन कालगणना' नामक लेखमें इसका विरोध ८ कारणोंसे किया है। उन्होंने देवर्द्धिको सुहस्ति परम्पराकी जयन्ती शाखाके आचार्य माने हैं। उनके लेखका वह अंश निम्न प्रकार है—'आजपर्यन्त जो जो उल्लेख हमारे दृष्टिगत हुए हैं उनसे तो यहि साबित होता है-देवर्द्धिगणि आर्य्यमहागिरीकी शाखाके नहीं, किन्तु

---

१ जिनदास गणि चूर्णिकार और वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरि।

आर्य्यसुहस्तीकी परम्परामत जयन्ती शाखाके स्थविर थे । टीकाकारोंने नन्दीकी स्थविरावलीको देवर्द्धिकी गुर्वावली मानी है परन्तु श्रीकल्याणविजयजीका कहना है कि 'नन्दीके आदिमें उन्होंने जिन जिन स्थविरोंका उल्लेख किया है वे सब गुरुशिष्यपरम्परामत नहीं परन्तु युगप्रधान-परम्परामत स्थविर थे-उनके भिन्न भिन्न गच्छ और गुरुओंके शिष्य होनेपर भी एक दूसरेके पीछे युगप्रधान-पद प्राप्त होनेसे देवर्द्धिने उनको क्रमशः एक आवलिबद्ध किया है' फिर-'देवर्द्धिने सम्भूतविजयके बाद भद्रबाहु और महागिरिके बाद सुहस्तिको स्थविर माना है, इससे ज्ञात होता है कि यह थेरावली गुरुक्रमवाली थेरावली नहीं पर युगप्रधान क्रमवाली है । उपरोक्त विधानपर विशेष विचार करनेसे देवर्द्धिको सुहस्तिकी परम्परामें माननाही विशेष सुसंगत दिखता है ।

उपर हम लिख आए कि श्रीदेवर्द्धि सुहस्तीकी परम्पराके आचार्य हैं । अब इस बातका विचार करना आवश्यक है कि उनके दीक्षागुरु कौन थे । चूर्णिकार, वृत्तिकार आदि प्राचीन आचार्योंने दूष्यगणिको इनके दीक्षागुरु माने हैं । मुनि कल्याण-विजयजीने शाण्डिल्यको देवर्द्धिके दीक्षागुरु माना है । उनका कहना निम्न प्रकार है—

देवर्द्धिगणिके दीक्षागुरु

आचार्य मलयगिरिजी इनको दूष्यगणिके शिष्य लिखते हैं-'दूष्यगणिशिष्यो देववाचकः' । प्रसिद्धिमें भी देवर्द्धिगणि दूष्यगणिकेही शिष्य कहलाते हैं । पर हम समझ सकते हैं कि मलयगिरिजीका उल्लेख और उक्त प्रसिद्धि नन्दी थेरावलीको देवर्द्धिकी गुरुक्रमावली समझनेकाही फल है । और जब हम यह देख चुके हैं कि नन्दीथेरावली देवर्द्धिकी गुरुपट्टावली नहीं है, तब उसके आधारपर यह कैसे मानलें कि देवर्द्धिगणि दूष्यगणिके शिष्य थे । कल्पथेरावलीमें भी दूष्यगणिका नामनिर्देश नहीं है, पर यहाँ अन्त्यनाम शाण्डिल्यका है । इससे जाना जाता है कि देवर्द्धिगणिके दीक्षागुरु आर्य शाण्डिल्यही होने चाहिए । नन्दीमें देवर्द्धिके पहले दूष्यगणिका नाम होनेका अर्थ यह हो सकता है कि वे देवर्द्धिगणिके पुरोगामी युगप्रधान होंगे' ।

आचार्यश्री देववाचकने वी. नि. ९८० में शास्त्रलेखन किया ऐसा प्रसिद्ध है, देखो-'जैन कालगणना पृ. ११७ का टिप्पण । माथुरीकी गणनाके अनुसार आर्यरक्षितजी १० वें स्थविर थे, वे वी. नि. सं. ५८४ में स्वर्गवासी हुए । और इनके पीछे ३९५ वर्षमें देवर्द्धिसहित ११ युगप्रधान हुए । और देवर्द्धिने ९८० में पुस्तकोद्धार किया इसपरसे यह निर्णय कर सकते हैं कि वी. नि. दशमी शताब्दीके अन्तिम चरणमें आचार्य श्री वर्तमान थे ।

देवर्द्धिगणिका समय

श्रीमन्नन्दीसूत्रकी प्रस्तावना

भगवान् महावीरके बाद शास्त्रोंकी मुख्य तीन वाचनाएँ हुई जो १ पाटलिपुत्रीया २ माथुरी तथा ३ वालभीक नामसे प्रसिद्ध हैं।

आगमवाचना और देवर्द्धिगणी

१ पाटलिपुत्रीया—यह वाचना नन्द राजाके शासनकालमें वीर नि. १६० के आसपास पाटलिपुत्र नगरमे हुई, अत यह पाटलीपुत्रीय कहाती है। इस वाचनामें श्रमण सङ्घने एकत्र होकर दुर्भिक्षके कारण छिन्न-भिन्न हुए आगमोंको पुनः व्यवस्थित किये, यह वाचना श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमे हुई थी।

२ माथुरी वाचना—इसके सम्बन्धमे आचार्य श्रीमलयगिरिजी नन्दीसूत्रकी टीकामें लिखते हैं-स्कन्दिलाचार्यके समयमें वारह वर्षका दुर्भिक्ष पडा, उस महान् दुर्भिक्षके समयमें साधुओंको भिक्षाकी प्राप्ति असम्भव हो गई। इससे अपूर्व सूत्रार्थका ग्रहण और पठितका परावर्तन प्रायः सर्वथा नष्ट हो गया। वहुतसा अतिशययुक्त श्रुत भी इसीसे विनष्ट हो गया तथा परिवर्तन नहीं करनेसे वह अङ्ग-उपाङ्गगत भी भावसे नहीं रहा। वह वारह वर्षका दुर्भिक्ष मिटकर जब सुभिक्ष हुआ तब मथुरामें स्कन्दिलाचार्य प्रमुख श्रमण सङ्घने एकत्र मिलकर जिसको जो याद था उसने वह कहा, इसप्रकार कालिकश्रुत और पूर्वगतको अनुसन्धान करके सङ्घटित किया। मथुरामें यह सङ्घटना हुई इसलिये इसको माथुरी वाचना कहते हैं, और वह उस समयके युगप्रधान स्कन्दिलाचार्यकी मान्य थी व अर्थरूपसे उन्होंनेही शिष्योंको उसका अनुयोग दिया, इसलिये वह अनुयोग स्कन्दिलाचार्यका कहाता है। दूसरे आचार्य इस विषयमें ऐसा कहते हैं—दुर्भिक्षसे कुछ भी श्रुत नष्ट नहीं हुआ, किन्तु उस समयमे उतनाही श्रुत रहा था। केवल दूसरे प्रधान अनुयोग करनेवाले आचार्य सभी दुर्भिक्ष समयमे कालके ग्रास होगये, एक स्कन्दिलाचार्यही रहे थे, उन्होंने दुर्भिक्षके अन्तमें फिर मथुरामे अनुयोग किया, इसलिये यह माथुरी वाचना कहाती है। पाठकोंके अवलोकनार्थ हम वह टीकाका अंश यहां उद्धृत करते हैं—

“इह स्कन्दिलाचार्य्यप्रतिपत्तौ दुष्षमसुषमाप्रतिपन्थिन्या· तद्गतसकलशुभभावग्रसनैकसमारम्भाया दुष्षमायाः साहायकमाधातुं परमसुहृदिव द्वादशवार्षिकं दुर्भिक्षमुदपादि, तत्र चैवंरूपे महति दुर्भिक्षे भिक्षालाभस्याऽसम्भवादव सीदतां साधूनामपूर्वार्थग्रहणपूर्वार्थस्मरणश्रुतपरावर्तनानि मूलत एवापजग्मु। श्रुतमपि चातिशायि प्रभूतमनेशत्। अङ्गोपाङ्गादिगतमपि भावतो विप्रणष्टम्, तत्परावर्तनादेरभावात्। ततो द्वादशवर्षानन्तरमुत्पन्ने सुभिक्षे मथुरापुरि स्कन्दि-

ऽऽचार्य्यप्रमुखश्रमणसङ्घेनैकत्र मिलित्वा यो यत् स्मरति स तत्कथयतीत्येवं कालिकश्रुतं पूर्वगतं च किञ्चिदनुसन्धाय घटितम्। यतश्चैतन्मथुरापुरि सङ्घटितमत इयं वाचना 'माथुरी'त्यभिधीयते, सा च तत्कालयुगप्रधानानां स्कन्दिलाचार्याणामभिमता तैरेव चार्थतः शिष्यबुद्धिं प्रापितेति तदनुयोगस्तेषामाचार्याणां सम्बन्धीति व्यपदिश्यते। अपरे पुनरेवमाहुः—न किमपि श्रुतं दुर्भिक्षवशादनेशत्, किन्तु तावदेव तत्काले श्रुतमनुवर्तते स्म। केवलमन्ये प्रधाना येऽनुयोगधरास्ते सर्वेऽपि दुर्भिक्षकालकवलीकृताः, एक एव स्कन्दिलसूरयो विद्यन्ते स्म ततस्तैर्दुर्भिक्षापगमे मथुरापुरि पुनरनुयोगः प्रवर्तित इति वाचना 'माथुरी'ति व्यपदिश्यते अनुयोगश्च तेषामाचार्याणामिति" मलयगिरि-वृत्तौ।

उपरोक्त वाचनाके समयबाबत जैनकालगणनामें जिस उल्लेख है—'यह वाचना वीरनिर्वाणसे ८२७ और ८४० के बीचमें किसी वर्षमें युगप्रधान आचार्य स्कन्दिलसूरिकी प्रमुखतामें मथुरा नगरीमें हुई थी।'—(पृ १०४)

२ वालभी वाचना—वलभीपुरमें की हुई वाचना वालभी कहाती है, इसके सम्बन्धमें परम्परासे यह मान्यता चली आरही है कि देवर्द्धिगणिके प्रमुखत्वमें वलभीपुरमें जो शास्त्रलेखन हुआ वही वालभी वाचना है। लोकप्रकाश व समाचारी-शतकमें यह मत मिलता है, किन्तु जैनकालगणनामें योग शास्त्र व कथावली आदिके आधारसे नागार्जुनको वालभी वाचनाके प्रवर्तक माना है। वहांका यह लेख इस प्रकार है—

जिस कालमें मथुरामें आर्य स्कन्दिलने आगमोद्धार करके अपनी वाचना शुरू की उसी कालमें वलभी नगरीमें नागार्जुनसूरिने भी श्रमणसङ्घ इकट्ठा किया और दुर्भिक्षवश नष्टावशेष आगम सिद्धान्तोंका उद्धार शुरू किया। वाचक नागार्जुन और एकत्रित सङ्घको जो जो आगम और उनके अनुयोगोंके उपरान्त प्रकरण ग्रन्थ याद थे वे लिख लिए गए और विस्मृत स्थलोंको पूर्वापर सम्बन्धके अनुसार ठीक करके उसके अनुसार वाचना दी गई (पृ ११०)

योगप्रकाशका उल्लेख भी इसी प्रकार है, देखें—जिनवचनं च दुष्षमा-कालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्यप्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्—[तृतीय प्रकाश प २०७]

वाचनाओंके इस विवरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि महावीर निर्वाणके बाद एक हजार वर्षमें २ वाचनाएँ हुई जिनमें प्रथम वाचनामें अङ्ग-शास्त्रोंकी सङ्कलना की गई और माथुरी व वालभी वाचनामें शास्त्रोंकी संकलना-के सिवाय उनका लेखन भी करवाया गया। ये दोनों वाचनाएँ देवर्द्धिसे करीब १००-१२५ वर्ष पूर्वमें हो चुकी थी।

वालभी वाचना जो कि माथुरीके समकालमें हुई है, देवर्द्धिगणिकी

देवर्द्धिगणीका आगमलेखन

वाचना नहीं किन्तु नागार्जुनकी है क्योंकि देवर्द्धिगणिने अपने नन्दीसूत्रमे स्कन्दिलाचार्यका 'अनुयोग-प्रवर्तक' और नागार्जुन आचार्यका 'वाचक' इस विशेषणसे वन्दन किया है। इससे नागार्जुनाचार्य ही वालभी वाचनाके प्रवर्तक सम्भव होते हैं। हां! नागार्जुन और स्कन्दिलाचार्यकी वाचनामे समन्वय करके श्री देवर्द्धिगणिने शास्त्रोंको सर्वमान्य एकरूप दिया तथा उन सबको लिपिबद्ध कराये इस दृष्टिसे यदि इनको वाचक कहें तो कह सकते हैं। अन्यथा वाचनाके मुख्य प्रवर्तक स्कन्दिलाचार्य और नागार्जुनही हैं। इस विषयमें 'जैनकालगणना'का उल्लेख इस प्रकार है—

"स्कन्दिलाचार्यके समयमें वलभीमे मिले हुए सङ्घके प्रमुख आचार्य नागार्जुन थे और उनकी दी हुई वाचना ही वालभी वाचना कहलाती है"— [पृ० ११३ टि०]

देवर्द्धिगणिकी अध्यक्षतामें वलभीमें जो श्रमणसङ्घ इकट्ठा हुआ उसमें दोनों वाचनाओंके सिद्धान्तोंका परस्पर समन्वय किया गया, और यथाशक्य भेद मिटाकर उनको एकरूपमे किये, तथा जो भेद महत्त्वपूर्ण दिखे उनको पाठान्तरके रूपसे टीका- चूर्णियोंमे संगृहीत किये अतएव देवर्द्धिके इस कार्यको आगमलेखन कहते हैं, 'सिद्धान्त पुस्तकीकृत' ऐसी उक्ति भी प्रसिद्ध है। मेरुतुङ्गीया थेरावलीमे इस विषयका निम्न उल्लेख है-'श्रीवीरादनु सप्तविंशतितम पुरुषो देवर्द्धिगणी सिद्धान्तान्-अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढानकार्षीत्'। सुबोधिका टीकामें भी इस विषयका एक पद्य है, जैसे—

वलहिपुरम्मि णयरे, देविड्ढिपमुहसयलसंघेहिं॥
पुत्थे आगम लिहिओ, नवसय असियाओ वीराओ॥ १॥

उपरोक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्री देवर्द्धिगणिने वी. नि ९८० के समय वलभीपुरमे आगमलेखन सम्पन्न किया।

देवर्द्धिगणीकी विशेषता

जब आचार्य श्रीदेवर्द्धिने आगमका लेखन करवाया है तब आगमोंमें जिनवाणीविरुद्ध भी स्वार्थवश या अज्ञावनवश लिखा गया होगा, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि आचार्य श्री भवभीरु और ११ अङ्गोंके सिवाय १ पूर्वका ज्ञान रखते थे, जिनवाणीका उच्छेद न होजाय इसी परमार्थबुद्धिसे उन्होंने शास्त्रोंको लिपिबद्ध किये हैं, किन्तु अपनी मान-पूजाके लिये नहीं। इसलिये जहां मतभेदका भी प्रसङ्ग आया तो बहुमतके सिद्धान्तको मुख्य मानकर दूसरेको भी पाठान्तररूपसे रखलिया, जो आगमोंमें आज भी वाचनान्तरके नामसे उपलब्ध हैं, और उनकी उत्सूत्रभीरुताका यह खास प्रमाण है। भगवती सूत्रमें वीर निर्वाणसे १००० वर्षतक

पूर्व-ज्ञान रहनेका प्रमाण मिलता है, जैसें- जंबूद्दीवे ? भारहे वासे इमीसे *उस्सप्पिणीए देवाणुप्पियाणं एगं वाससहस्सं पुव्वगए अणुसज्जिस्सइ* — (श. २०, उ ८ सू १७८)

उपरोक्त प्रमाणसे आचार्यश्रीकी पूर्वधारिता सच्ची सिद्ध होती है। पूर्व-ज्ञानके ज्ञाता और भवभीरु होनेके कारण आचार्यश्रीके लिये जिनवाणी-विरुद्ध लिखनेकी शङ्का नहीं हो सकती, आचार्यश्रीकी इस विशेषताको दिखानेवाली कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें एक गाथा मिलती है, जो इस प्रकार है—

" सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने।
देवड्ढि खमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि " ॥ १४ ॥

उपरोक्त गाथामें आचार्यश्रीके सूत्रअर्थरूप विविध रत्नोंसे पूर्ण और क्षमादममार्दव गुणोंसे सम्पन्न ऐसे जो विशेषण दिये हैं, इससे उनके ज्ञानबल व चारित्रबलका परिचय मिलता है। ज्ञानबलके साथ चारित्र और आत्मार्थिता आचार्यश्रीकी खास विशेषता है।

आचार्यश्रीकी अन्य रचना और शिष्यपरिवार आदिका परिचय नहीं मिलता।

देवर्द्धिगणीकी गुर्वावली देवर्द्धिगणीके कुल और शाखाका उपलब्ध सामग्रीके अनुसार हम पहले परिचय करा आये हैं, उससे आधारसे देवर्द्धिगणी शाण्डिल्यके शिष्य सिद्ध होते हैं, ऐसी परिस्थितिमें उनकी गुर्वावली श्रीनन्दीसूत्रस्थ स्थविरावली नहीं होकर कल्पसूत्रकी स्थविरावली होनी चाहिये क्योंकि नन्दीसूत्रकी स्थविरावलीमें १४ वें नम्बरपर शाण्डिल्यको लिखकर फिर १० नाम अन्य आचार्योंके लिखे हैं। जैसें नन्दीसूत्रकी स्थविरावली—

नन्दीसूत्रस्थ स्थविरावली

१ आर्य श्री सुधर्मा	११ आर्य श्री बलिस्सह
२ " " जम्बू	१२ " " स्वाति
३ " " प्रभव	१३ " " श्यामार्य
४ " " शय्यम्भव	१४ " " शाण्डिल्य
५ " " यशोभद्र	१५ " समुद्र
६ " सम्भूतविजय	१६ " " मङ्गु
७ " " भद्रबाहु	१७ " धर्म
८ " स्थूलभद्र	१८ " भद्रगुप्त
९ " " महागिरि	१९ " " वज्र
१० " " सुहस्ती	२० " " रक्षित

२१ आर्य श्री नन्दिल (आनन्दिल)	२७ आर्य श्री नागार्जुन
२२ ,, ,, नागहस्ती	२८ ,, ,, श्रीगोविन्द
२३ ,, ,, रेवतीनक्षत्र	२९ ,, ,, भूतदिन्न
२४ ,, ,, ब्रह्मद्वीपकसिंह	३० ,, ,, लौहित्य
२५ ,, ,, स्कन्दिलाचार्य	३१ ,, ,, दूष्यगणी
२६ ,, ,, हिमवन्त	३२ ,, ,, देवर्द्धिगणी

अगर यह स्थविरावली देवर्द्धिगणीकी गुर्वावली होती तो शाण्डिल्यके बाद देवर्द्धिगणीका नाम होता, किन्तु यहां वैसा नहीं है। कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें शाण्डिल्यका नाम अन्तिम लिखकर फिर देवर्द्धिगणीका नाम लिखा है, इसलिये इसको देवर्द्धिकी गुर्वावली मानना सङ्गत दिखता है, वह इसप्रकार है—

कल्पसूत्रीय स्थविरावली

५ आर्य यशोभद्र	२० आर्य नक्षत्र
६ ,, सम्भूतिविजय	२१ ,, रक्ष
७ ,, स्थूलभद्र	२२ ,, नाग
८ ,, सुहस्ती	२३ ,, जेहिल
९ ,, सुस्थितसुप्रतिबुद्ध	२४ ,, विष्णु
१० ,, इन्द्रदिन्न	२५ ,, कालक
११ ,, दिन्न	२६ ,, सम्पलितभद्र
१२ ,, सिंहगिरि	२७ ,, वृद्ध
१३ ,, वज्र	२८ ,, संघपालित
१४ ,, श्रीरथ	२९ ,, श्रीहस्ती
१५ ,, पुष्यगिरि	३० ,, धर्म
१६ ,, फल्गुमित्र	३१ ,, सिंह
१७ ,, धनागिरि	३२ ,, धर्म
१८ ,, शिवभूति	३३ ,, शाण्डिल्य
१९ ,, भद्र	३४ ,, देवर्द्धिगणी

नन्दीसूत्रकी विशेषता

श्रीनन्दीसूत्र और श्री देवर्द्धिगणीके विषयमे संक्षिप्त परिचय देकर हम प्रस्तुत सूत्रकी विशेषतापर विचार करते हैं। स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती व रायपसेणिय आदि अङ्ग और उपाङ्ग शास्त्रोंमे प्रसङ्गोपात्त ज्ञानका वर्णन मिलता है किन्तु इसप्रकार विशद रीतिसे पांच ज्ञानोंका एकत्र वर्णन नन्दीसूत्रमेही उपलब्ध होता है, श्रुतनिश्रित मतिज्ञानके अवग्रह आदि भेदोंको प्रतिबोधक व मल्लकके उदाहरणसे समझाना और चार बुद्धिओंका उदाहरणके साथ परिचय देना यह नन्दीसूत्रकी खास विशेषता है। पूर्व-

वर्णित विषयका गाथाओंके द्वारा संक्षेपमें उपसंहार कर दिखाना यह इस सूत्रकी दूसरी विशेषता है।

नन्दीसूत्रपर टीकाएँ

नन्दीसूत्रपर प्राकृत संस्कृत हिन्दी गुजराती ऐसी चार भाषाओंमें टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम टीका जो चूर्णि कहाती है, वह जिनदासगणि महत्तरकृत प्राकृत भाषामें है, दूसरी टीका श्रीहरिभद्रसूरिकृत संस्कृतभाषामें है, यह टीका बहुत अच्छी है प्रायः चूर्णिके आधारपर निर्माण की गई मालूम होती है, तीसरी श्रीमलयगिरि टीका है, इसमें श्रीमलयगिरि आचार्यकृत विस्तृत विवेचन है चौथी गुजराती बालावबोध नामकी टीका रा. धनपतसिंह बहादुरकी तरफसे प्रकाशित है, पाँचवी पूज्यश्री अमोलक-ऋषिजीकृत हिन्दी अनुवाद है। सभी मूलके साथ मुद्रित हैं। वैसे-नन्दीसूत्रके मुद्रित संस्करणोंका परिचय जो इसी प्रतिमें अन्यत्र प्रकाशित है।

शास्त्रान्तरके साथ नन्दीसूत्रका भेद

जब हम नन्दीसूत्रके विषयको अन्य शास्त्रोंमें देखते हैं, तब उनमें कहीं कहीं भेद भी मिलता है, जिसमें कुछ भेद तो विशेषता-दर्शक है, और कुछ मतभेदसूचक भी। यहाँ हम उनका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराते हैं—

१ अवधिज्ञानके विषय संस्थान आभ्यन्तर और बाह्य, तथा देशावधि, सर्वावधि आदि विचार प्रज्ञापनाके ३३ वें पदमें मिलते हैं।

२ मतिसम्पदाके नामसे दशाश्रुतस्कन्धके चतुर्थ अध्ययनमें अवग्रह, ईहा अवाय और धारणाके-क्षिप्र ग्रहण करना १ एकसाथ बहुत ग्रहण करना २ अनेक प्रकारसे और निश्चित रूपसे ग्रहण करना ३-४, बिना किसीके सहारे तथा सन्देहरहित ग्रहण करना ५-६ ये छः प्रकार हैं, मतिपदके ६ प्रकार मिलानेसे अवग्रह आदिके १२-१२ भेद होते हैं। ये दोनों भेद विशेषता दर्शक हैं।

३ पाँच ज्ञानमें प्रथमके ३ ज्ञान मिथ्यादृष्टिके लिये मिथ्याज्ञान कहाते हैं। नन्दीसूत्रमें मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञानका उल्लेख मिलता है किन्तु भगवती आदि शास्त्रोंमें मिथ्यादृष्टिके अवधिज्ञानको भी विभङ्गज्ञान कहा है (श. ८ उ० २)

४ मतिज्ञानका विषय—नन्दीसूत्रमें मतिज्ञानका विषय दिखाते हुए कहा है कि मतिज्ञानी सामान्य रूपसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु देखता नहीं। परन्तु भगवती सूत्रके श० ८ उ० २ और सू० ३०२ में कहा है कि "मति-ज्ञानी सामान्य रूपसे सब द्रव्योंको जानता और देखता है"। उपर्युक्त दोनों उल्लेखोंमें महान् भेद दिखता है, भगवती सूत्रमें टीकाकारने इसको वाचना

न्तर माना है, उनका वह उल्लेख इस प्रकार है—" इदं च सूत्रं नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' इति पाठान्तरेणाधीतम् ", दोनों वाचनाओंका टीकाकारने इस प्रकार समन्वय किया है। 'आदेश' पदका 'श्रुत' अर्थ करके श्रुतज्ञानसे उपलब्ध सब द्रव्योंको मतिज्ञानी जानता है, यह भगवती सूत्रका आशय है। नन्दीसूत्रमे 'न पासइ' कहनेका आशय इस प्रकार है—

आदेशका मतलब है प्रकार, वह सामान्य और विशेष ऐसे दो प्रकारका है, उनमें द्रव्यजाति इस सामान्य प्रकारसे धर्मास्तिकायादि सब द्रव्योंको मतिज्ञानी जानता है और धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायका देश इस विशेष रूपसे भी जानता है, किन्तु धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्योंको नहीं देखता केवल योग्य देशमे स्थित शब्दरूप आदिको देखता है, देखें-वह टीकाका अंश—" आदेश -प्रकारः, स च सामान्यतो विशेषतश्च, तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन्, शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति "।

श्रुतज्ञान-द्वादशाङ्गीका परिचय समवायाङ्ग सूत्रमें नन्दीसूत्रसे कुछ भिन्न मिलता है। परिशिष्टमें समवायाङ्गका पाठ दिया है, जिसको पढकर पाठक सहजमें भिन्न अंशको समझ सकते हैं। उसमें बहुतसा अंश विशिष्टतासूचक है, किन्तु आठवें, नवमे और दशमे अङ्गके परिचयमें जो भेद है वह विशेष विचारणीय है।

आठवें अङ्गके ८ वर्ग और उद्देशनकाल हैं परन्तु समवायाङ्गमें दस अध्ययन, सात वर्ग और १० उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल कहे हैं। टीकाकारने इसका समाधान ऐसा किया है-१ प्रथमवर्गकी अपेक्षाही दश अध्ययन घटित होते हैं, २ प्रथमवर्गसे इतरकी अपेक्षा ७ वर्ग होते हैं। उद्देशनकालके लिये लिखते हैं कि-'नास्याभिप्रायमवगच्छामः' अर्थात् इसका अभिप्राय हम नहीं समझते, सम्भव है यह वाचनान्तरकी दृष्टिसे लिखा गया हो।

नवम अङ्गके तीन वर्ग और तीन उद्देशनकाल हैं, किन्तु समवायाङ्गमें दश अध्ययन, तीन वर्ग और उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल १० लिखे हैं टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि इसके विवेचनमें लिखते हैं कि-'वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते, इत्यतस्त्रय एव उद्देशनकाला भवन्तीत्येवमेव च नन्द्यामभिधीयन्ते, इह तु दृश्यन्ते दशेत्यत्राभिप्रायो न ज्ञायत इति "-सम.।

अर्थात्-वर्गका एकसाथही उद्देशन होता है इसलिये तीनही उद्देशनकाल होते है, और ऐसाही नन्दीसूत्रमें कहा जाता है। यहां दश उद्देशनकाल दिखते हैं, किन्तु इसमे अभिप्राय क्या ? वह मालुम नहीं होता।

प्रश्नव्याकरणके ४५ उद्देशनकालके लिये भी टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि 'वाचनान्तरकी अपेक्षा' ऐसा उत्तर देते हैं।

उपरोक्त भेदोंके सिवाय भी जो भेद हो उसके लिये वाचनाभेदको कारण समझना चाहिये।

मलयगिरि आचार्यने अपनी टीकामें यही कारण दिखाया है, जैसे— "इह हि स्कन्दिलाचार्य-प्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयोर्मेलापकोऽभवत्, तद्यथा-एको वलभ्यामेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थ-सङ्घटने परस्परवाचनाभेदो जातः। विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा सङ्घटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः"। समयसुन्दर उपाध्यायने अपने समाचारीशतकमें भी लिखा है—

"तर्हि कथमेतावन्तो विसंवादा लिखितास्तेन? उच्यते-एकं तु कारणमिदं यथा २ यस्मिन् २ आगमे वृत्तावशिष्टसाधुभिर्यद् यदुक्तम् तथा २ तस्मिन् २ आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेनाऽपि पुस्तकारूढीकृतम्, न हि पापभीरवो महान्त 'इदं सत्यम् इदं तु-असत्यमिति' एकान्तेन प्ररूपयन्तीति द्वितीयं तु कारणमिदं यथा वलभ्यां यस्मिन्काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता तथा तस्मिन्नेव काले मथुरानगर्यामपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनवृत्तावशिष्टप्रायस्यपशाधुमुखविनिर्गताऽऽलापकेषु सङ्कलनायां विस्मृतत्वाद्विशेष एव वाचनाविसंवादकारणो जातः"-पृ ८०।

दुर्भिक्षके बाद बचे हुए साधुओंने जिस २ आगममें जैसा कहा वैसा देवर्द्धिगणीने पुस्तकारूढ करदिया क्योंकि पापभीरु आचार्य यह सत्य यह असत्य ऐसा एकान्तसे प्ररूपण नहीं करते। दूसरा वलभी और मथुरामें एक समय दो वाचनायें हुई थी जिसमें वृत्तावशिष्ट साधुओंके मुखसे निकले हुए आलापकोंकी सङ्कलनामें विस्मृतत्व आदि दोषही वाचनाके विसंवादका कारण हुआ। उपरोक्त उल्लेखसे वाचनाभेद व मतभेदका कारण स्पष्ट हो जाता है, इसलिये शङ्का करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

प्रस्तुत संस्करण और सूचना

इसका परिचय 'प्रकाशकके दो शब्दके' अन्तमें दे दीने कराया है, अतः उसकी पुनरावर्तन करनेकी यहां आवश्यकता नहीं रहती। केवल यह मालूम कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत सूत्रका अनुवाद मलयगिरि और हारिभद्रीय वृत्तिके आधारसे किया है। अतः स्थविरावलीके भी अनुवादमें गुरुशिष्यका सम्बन्ध उसीके अनुसारही लिखा गया है। ११-१२ आदि गाथाओंका क्षेपकत्व भी उसी दृष्टिसे लिखा था, किन्तु उपलब्ध सामग्रीसे इनको क्षेपक माननेकी बात भ्रमपूर्ण दिखती है, जिसका प्रस्तावनामें पहले विवेचन कर आये हैं।

विज्ञप्ति पुस्तक-मुद्रणके कार्यमें स्थानान्तरसे ग्रन्थसंग्रह, सम्मत्यर्थ पत्र-प्रेषण, प्रूफ-संशोधन व सम्मतिप्रदान आदि प्रापञ्चिक कार्य करने या कराने पडते हैं। इस बातको जानते हुए भी मैंने जो आगमसेवाके लिये इस अंशतः सदोष कार्यको अपवादरूपसे किया है उसका उद्देश निम्नप्रकार है—

१ साधुमार्गीय (स्था०) समाजमें विशिष्टतर साहित्यका निर्माण हो।

२ मूल आगमोके अन्वेषणपूर्ण, शुद्ध संस्करणकी पूर्ति हो और समाजको अन्य विद्वान् मुनिवरभी इस दिशामें आगे लावें।

३ सूत्रार्थका शुद्ध पाठ पढकर जनता ज्ञानातिचारसे बचे।

तीनोंमेंसे यदि एक भी उद्देश सिद्ध हुवा तो मैं अपने दोषोंका प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ समझूंगा। प्रस्तुत कार्यमें सर्वथा श्रीउपाध्यायजी म० का उपकार नहीं भूल सकता। आपने समय २ पर पूछे गए प्रश्नोंका समाधान करनेके सिवाय अवकाश कम होते हुए भी हमारे आग्रहसे नन्दीसूत्रपर भूमिका लिखनेकी कृपा की है, जिससे इस संस्करणकी विशेषता बढ जाती है। यद्यपि प्रस्तुत संस्करणकी सच्ची उपादेयता पाठकोंकी परीक्षाबुद्धि ही कहेंगी, तथापि हमे इतना विश्वास है कि यह संस्करण पूर्वकी अपेक्षा अपनी कुछ विशिष्टता सिद्ध करेगा। इस सबका श्रेय मेरे सहायक मुनिवर व ज्ञानप्रेमी गृहस्थोको है जिनके सहायसे कि आज मैं इस कार्यको पूर्ण कर सका हूँ।

प्रयत्न और इच्छाके प्रबल होते हुए भी मुद्रणकी शीघ्रता तथा विहार आदि कारणोंसे इसमें कुछ त्रुटियाँ होना सम्भव है। विज्ञ मुनिवर एवं तज्ज्ञोंसे निवेदन है कि वे त्रुटिओंको संशोधन कर हमें भी सूचित करें।

अन्तमें अल्पज्ञता व प्रमादके कारण जो सर्वज्ञवाणीविरुद्ध लिखा गया हो उसके लिये जिनदेवसे क्षमा चाहता हुआ पश्चात्ताप करता हूँ। और नन्दीसूत्रके शुद्धपाठसे पाठक सम्यग्ज्ञानमय बने इसी आशाके साथ विराम करता हूँ।

ॐ शान्तिः

वीर सं २४६८
माघ कृ २ रवौ

मुनिहस्तीमल्ल
घोरी जि० पूना

श्रीनन्दीसूत्रकी विषयानुक्रमणिका



श्रीमन्नन्दीसूत्रकी विषयानुक्रमणिका

इति समाप्त ।

पूज्यश्रीहस्तिमल्लजिन्महाराजाना सन्निधौ
सविनय निवेदनम्—

प्रथमं तदीय कर्तव्यकथनम्—

मेधामन्थानकेनाऽभिहितजिनगवीगव्यमव्यग्रचेता ।
ग्रन्थेऽस्मे चिरत्ने विततगुणनिभैकधर्मैरम्यमग्र्यम् ॥
यत्नादुन्नीतवान् सत्सुमतिसमुदये हारि हैयङ्गवीनं ।
पूज्यः श्रीहस्तिमल्लो मुनिरुपहरते नन्दिसूत्रं नवीनम् ॥ १ ॥

तदनु तद्गुणवर्णने मौनोपक्रमः—

दीपे देदीप्यमाने तिरयति तिमिरे द्योतिते द्योतकं चेत् ।
कोऽपि ब्रूयात्स्वकीयं गुणमुपहसितः स्यात्समेयैः स नूनम् ॥
पूज्ये श्रीहस्तिमल्ले मुनिगुणमहिते कीर्तिचित्तेऽभिधेये ।
मौनं स्यात्तु ममास्ति प्रवचनमनसो मां निरुन्धो विमर्शः ॥२ ॥

अथापि भवान्—

चिरञ्जीवतु जीयात्तु भूतस्तीर्थानि संनयन् ।
धूर्ति परिहरन् यत्नादुपकोऽममलीमसाम् ॥ ३ ॥
इत्थं प्रशस्तं जिनशासनस्यो,—भवौ सदा सज्जनमपक्षपंम ।
दयोदयं दीननने बिभर्तु निजाऽन्यतन्त्राऽपरक्षन्मभावम् ॥ ४ ॥

—चिरानुचरस्य कस्यचित्—

॥ ॥ नमः जिनाय। जयति श्रुतदेवता। सर्वज्ञ विदित केवलालोकः॥ नित्योदितः स्फुरत्प्रभावर्जितो वर्द्धमान जिनः॥ जयति जगदेकमंगल
मपहततिमिरप्रचुरितघनतिमिरं॥ रविबिंबमिव यथास्थित वस्तुविकाशं जिनेश्वर वचनं॥ वर्द्धमानो जिनः संसारमध्यम ध्वसीनजंतूनां नारक तिर्यङ्नराम
र गतिषु बंधनवध धारीरमानसानेक दुःखापनिपात पीडितानां पीडा निर्वेदितः संसारपरिजिहीर्षया जन्मजरामरणरोगशोकाद्युपद्रवाः
स्वरूपपरमानंदस्वरूपं शाश्वतसपदमधिरोढुकामानां तदुपाय मपरसममानसो भूयः स्वपरोपकाराय यतितं तत्रापि महत्या मार्गे विशुद्धोप
रोपदेशोतिकर्त्तव्यता त्रयाणां विशुद्धि प्रकर्षसंपादनाय विशेषतः परोपकार श्रेयस्त्रयः परोपकार स्थितिः इत्थं ततः सावद्यात्त तदुद्यतो विशे
षणत्तु धृतलोचनादि प्रदानं जनितः स वाति काति कः कदा — चित्तत्वा विसृतिकादिना प्रवृत्तवतः परोपकारा संभवात् नायाति कः किं
यतत्वात् माद्यत्ता विज्ञातोऽत्रा वाता जिनप्रणीत धर्म संपादन — अनितः सा विकातिकः कदाविद्दीप्तता द्योषा सलवात् श्रुतेति कथ्यापरंपर
युक्तिश्रुतिकामाकाशोरथ्यसंपादकत्वात्। जिनप्रणीता पिस्थ — तमो द्विधा श्रुत धर्मश्चारित्र धर्मश्च तत्र श्रुतधर्मः स्वाध्यायश्चारित्र धर्मः क्षांत
दिलक्षणः श्रमणधर्मः तथा चोक्तं श्रुतधर्मः स्वाध्याय वि — स्वधर्मः समणधर्मः तत्र श्रुतधर्मः संपन्नमवितापनवायश्चारित्रं च
यभ्यासः पालनप्रयायात्य परिपालनसमर्थो भवतीति प्रथमतः सप्रदानमवश्यार्थं तत्र परमार्हत्यमहिमाप्रकाशित तत्रा वर्द्धमान स्वामिविदितमर्थं वध
यीणा प्रभुश्च भक्तस्वामिनाशं तानवृत्तिः॥ शिष्याः स्थिरविप्र प्रदानमकारि न च सवादं विज्ञातार्था दूसिल्लषितार्था वा जिरूपजायते ततः प्रारंभणीय
पूर्वतना चार्या गाराधराय परममपदश्रान्निदृश्रवात्स्वयात्रूपा॥ श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवंतीति चेतस्स्वा॥ श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवंति महतामपि श्रेयस्य
स्विघ्नवसाना का पि याति विनाय काः इति॥ ततः स प्रारंभ एव सकल प्रत्यूह व्यूह शमनाय मंगलाधिकारं तदिवं कश्रावणं दिरितिकशाह्वार्थ॥
उपनइ नसम्हा नित्य श्रुतादियाता न मिति नमि विहितनं दनंनं दिः श्रमा नाद्यं स्थ कृत्यः॥ नंदिस्वरूपज्ञानपंचकाभिधायकमध्यय

णं असीवि सत्तावणाणं दिट्ठी विसत्तावणाणं मद्दा सम णत्तावणाणं वारए सम णत्तावणाणं तयञ्जनिस याणं सावसिंपिणसिं उाद
राग सप्ताहसा अणुसा ष्ठाणुत्तगा पवलज्जतिस्संग पविठ्ठस्स उाहसा इकिमायरस्स सूयगडस्स हाणस्स समवायस्स। विवाहपन्नत्तीए णायाध
धम्मकहाणं उवासगदसाणं अंतगडदसाणं अणुत्तरोववातियदसाणं पण्हावागरणाणं। विवागसुयस्स सावसिंपिणसिं उाहसा सु
गुहसा अणुण्णा अणुओगा पवत्तइ इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणुओगस्स उाहसा नंदी अणुसा नंदी पवत्तइ रवसा समणाणं दाणाणं खुत्त
णा आवणा तदुत्ताणं सुज्जाणामि॥ छा॥ जायं आर्यं उर्ण्णसंदीसमत्ता॥ शिवमस्तु॥ श्री श्रमण संघस्स॥ सेवं भवदि
गोमाय धाय सूत्रसहवाता नि॥ इ हि सहितं उत्तरयां॥ ० पन्नुपसहस्स॥ — — — — — —
भागाय श्री पन्नी हि सागर सूरि सहस्र लोचनम॥ ॥संवत — १७११ वर्षे महोपाध्याय श्री — — — — — — — — — — — — — वंदित सा
विनीत — — — — — — — — — — — — महावीर — — ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥

卐 ॐ अर्हं वन्दे 卐

श्रीमन्नन्दीसूत्रम्



अथ देवर्द्धिगणिविरचिताऽर्हदाद्यावलिका—

मङ्गलार्थ अर्हत्स्तुति

मूल—जयइ जगजीवजोणी,-वियाणओ जगगुरू जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥ १ ॥

छाया—जयति जगज्जीव-योनि-विज्ञायको जगद्गुरुर्जगदानन्दः ।
जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जयति जगत्पितामहो भगवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(जयइ) जयवन्त हैं, (जग) पञ्चास्तिकायात्मकलोकवर्ती (जीवजोणी) जीवोंकी उत्पत्तिके स्थानको, (वियाणओ) जाननेवाले, (जगगुरू) जगद्गुरु, (जगाणंदो) जगतको आनन्द देनेवाले, (जगणाहो) चराचर जगतके नाथ, (जगबंधू) प्राणिमात्रके बन्धु, (जगप्पियामहो) जगतके पितामह याने प्राणिओंकी आत्मिक रक्षा करनेसे धर्म जगतका पिता है और आप उस धर्मके भी उत्पादक हैं, अतः जगतके पितामह हैं, (भयवं) भगवान्–समग्र ज्ञानादि ऐश्वर्ययुक्त हैं, अत एव (जयइ) जयवन्त है ॥ १ ॥

श्रीवीरस्तुति

मूल—जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥ २ ॥

छाया—जयति श्रुतानां प्रभवः, तीर्थकराणामपश्चिमो जयति ।
जयति गुरुर्लोकानां, जयति महात्मा महावीरः ॥ २ ॥

शब्दार्थ—(जयइ) जयवन्त हैं, (सुआणं) श्रुतज्ञान याने द्वादशाङ्गरूप वर्तमान शास्त्रके (पभवो) उत्पत्ति कारण, अर्थात् निर्माण करनेवाले, (तित्थयराणं) तीर्थङ्करोंमें (अपच्छिमो) अपश्चिम याने अवसर्पिणीकालके २४ तीर्थङ्करोमे अन्तिम, (गुरू लोगाणं) [निरीहभावसे संसारको तत्त्वका उपदेश करनेसे] लोकके गुरु (जयइ) जयवन्त हैं, (महप्पा) महात्मा (महावीरो) महावीर (जयइ) सर्वोत्कृष्ट है ॥ २ ॥

मूल—भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धुयरयस्स ॥ ३ ॥

छाया—भद्रं सर्वजगदुद्योतकस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य ।
भद्रं सुरासुरनमस्यितस्य, भद्रं धूतरजसः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(सव्व जगुज्जोयगस्स) सब जगतमें उद्योतकारक, यानि चरा चर जगतके प्रकाशकका, (भद्दं) कल्याण हो, (जिणस्स) वीतराग-रागद्वेष रहित (वीरस्स) श्री महावीरका, (भद्दं) भद्र हो, (सुरासुर नमंसियस्स) देवदानवोंसे वंदितका, (धुयरयस्स) कर्मरजको हटानेवालेका (भद्दं) भद्र हो ॥३॥

गुणोंके आधार होनेसे संघकी स्तुति करते हैं—

श्रीसंघस्तुति

मूल—गुण-भवण-गहणसुय-रयण,-भरियदंसण-विसुद्ध-रत्थागा ।
संघनगर ! भद्दं ते, अखंड-चारित्त-पागारा ॥ ४ ॥

छाया—गुणभवनगहन—श्रुतरत्नभृत—दर्शनविशुद्धरथ्याक ! ।
संघनगर ! भद्रं ते, अखण्डचारित्रप्राकार ! ॥ ४

शब्दार्थ—(गुणभवणगहण) जो उत्तर गुणरूप भवनोंसे गहन, (सुय रयणभरिय) तथा श्रुतरत्नोंसे भराहुआ, (दंसणविसुद्धरत्थागा) व सम्यग् दर्शनरूप निर्मल मार्गवाला याने निर्मल श्रद्धारूप गलीवाला है, (अखंडचारित्त पागारा) एवं अखण्ड चारित्ररूप प्राकार याने कोटवाला, (संघनगर) हे संघ नगर ! (ते) तेरा, (भद्दं) भद्र हो ॥ ४ ॥

मूल—संजमतवतुंबारयस्स, नमो सम्मत्तपारियल्लस्स ।
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघचक्कस्स ॥ ५ ॥

छाया—संयमतपस्तुम्बारकस्य(काय), नमः सम्यक्त्वपारियल्लाय ।
अप्रतिचक्रस्य जयो, भवतु सदा संघचक्रस्य ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—(संजमतवतुंबारयस्स) संयम और तपरूपतुंब-नाभि याने चाकके मध्यभाग व आरे-चारों तरफकी लकडियोंसे युक्त (सम्मत्तपारिय ल्लस्स) सम्यक्त्वमय परिकर याने चाकके ऊपरी भागवाले, तथा (अप्पडि चक्कस्स) प्रतिचक्ररहित अर्थात् जिसके विरोधी चक्र नहीं है ऐसे (संघचक्कस्स) संघचक्रको (नमो) नमस्कार हो, और (सया) सदा (जओ) उसकी जय (होउ) हो ॥ ५ ॥

1 विसुद्ध-इति हस्तलिखिते पाठः । २ प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । ३ पारियल्ल-इति देश्यं शब्दः परिकरार्थ-कम् ।

अव संघको रथकी उपमासे कहते हैं—

मूल—भद्दं सीलपडागूसियस्स, तवनियमतुरयजुत्तस्स ।
संघरहस्स भगवओ, सज्झायसुनंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

छाया–भद्रं शीलपताकोच्छ्रितस्य[1], तपोनियमतुरगयुक्तस्य ।
संघरथस्य भगवतः, स्वाध्यायसुनन्दिघोषस्य ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(तवनियमतुरयजुत्तस्स) जो संघरथ तपनियम[2]रूप घोडोंसे युक्त है, (सीलपडागूसियस्स) जो शीलरूप पताकासे ऊंचा है, (सज्झायसुनंदिघोसस्स) तथा जो संघरथ पंचविधस्वाध्यायरूपनन्दिघोष–माङ्गलिक ध्वनिवाला है, ऐसे (भगवओ) ऐश्वर्ययुक्त, (संघरहस्स) संघरूप रथका (भद्दं) भद्र हो ॥ ६ ॥

कामभोगसे अलिप्त रहनेके कारणसे संघको कमलकी उपमा दी जाती है–

मूल—कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स, सुयरयणदीहनालस्स ।
पंचमहव्वयथिरकण्णियस्स, गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥

छाया–कर्मरजो–जलौघविनिर्गतस्य, श्रुतरत्नदीर्घनालस्य ।
पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य, गुणकेसरवतः ॥ ७ ॥

मूल—सावगजणमहुअरिपरिवुडस्स, जिणसूरतेयबुद्धस्स ।
संघपउमस्स भद्दं, समणगणसहस्सपत्तस्स ॥ ८ ॥

छाया–श्रावकजनमधुकरीपरिवृतस्य, जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य ।
संघपद्मस्य भद्रं, श्रमणगणसहस्रपत्रस्य ॥ ८ ॥

शब्दार्थ— जैसे पद्म–कमल पानीसे ऊपर उठाहुआ, लम्बी नाल और स्थिर कर्णिकावाला होता है, तथा सुगन्धित पीत परागके कारण भ्रमर-समूहसे सेवित रहता है, सूर्यकिरणसे विकसित होता व हजारपत्रवालाभी होता है वैसे—(कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स) जो संघ कर्मरूपरज व जलप्रवाहसे बाहर निकला हुआ है अर्थात् निर्लेप है, तथा (सुयरयणदीह-नालस्स) श्रुत–शास्त्ररत्नमय दीर्घ–लम्बी नाल–डंटवाला व (पंचमहव्वयथिर-कण्णियस्स) पांच महाव्रतही जिसकी स्थिर कर्णिकाएँ हैं, (गुणकेसरालस्स) उत्तरगुण–क्षमा आर्जव आदि जिसके पराग–केसर हैं तथा (सावगजण–

---

१ प्राकृतत्वात् निष्ठान्तोच्छ्रितपदस्य परनिपात ।

२ कुछ समयके लिये इच्छाओंको रोकना तप है और आजीवन इच्छानिरोध करना नियम है ॥

मधुकरि-परिवृतस्य) श्रावकजनरूप भ्रमरोंसे सेवित या घिराहुआ व- (जिणसूर तेय बुद्धस्स) भावसूर्य-तीर्थङ्करके केवलज्ञानरूप तेजसे प्रबोध पाए हुए अर्थात् विकाश पाए हुए, और (समणगण सहस्सपत्तस्स) श्रमण-साधु समूहरूप हजारपत्र-पांखडीवाले उस (संघपउमस्स) संघपद्मका (भद्दं) भद्र हो ॥ ७-८ ॥

फिर सौम्यगुणसे चन्द्रके रूपकद्वारा संघकी स्तुति करते हैं—

मूल—तवसंजममयलंछण, अकिरियराहुमुहदुद्धरिस निच्च ।
जय संघचंद निम्मल,—सम्मत्तविसुद्धजोण्हागा ॥ ९ ॥

छाया—तप'संयममृगलाञ्छन !, अक्रियराहुमुखदुर्धृष्य ! नित्यम् ।
जय संघचन्द्र ! निर्मल,—सम्यक्त्वविशुद्धज्योत्स्नाक ! ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—(तव संजम मय लंछण) हे तपप्रधान संयमरूप मृग लाञ्छनवाले ! (अकिरिअराहुमुह-दुद्धरिस) नास्तिक वादरूप राहुके मुखसे दुर्धर्ष नहीं करने योग्य, तथा (निम्मल सम्मत्त विसुद्धजोण्हागा) निर्दोष सम्यक्त्वरूप विशुद्ध चांदनीवाले (संघचंद) हे संघचन्द्र ! आप (निच्चं) सदा (जय) जयवन्त हों ॥ ९ ॥

प्रकाशमय होनेसे फिर संघको सूर्यकी उपमा देते हैं—

मूल—परतित्थियगहपहनासगस्स, तवतेयदित्तलेसस्स ।
नाणुज्जोयस्स जए, भद्दं दमसंघसूरस्स ॥ १० ॥

छाया—परतीर्थिकग्रहप्रभानाशकस्य, तपस्तेजोदीप्तलेश्यस्य ।
ज्ञानोद्योतस्य जगति, भद्रं दमसंघसूरस्य ॥ १० ॥

शब्दार्थ—(परतित्थिय गहपहनासगस्स) परतीर्थिकरूप ग्रहोंकी प्रभाको नष्ट-मन्द करनेवाले (तवतेयदित्तलेसस्स) तपस्तेजरूप चमकती कान्तिवाले तथा (नाणुज्जोयस्स) ज्ञानरूप प्रकाशवाले, ऐसे (दमसंघसूरस्स) उपशम प्रधान संघसूर्यका (जए) जगतमें (भद्दं) भद्र हो ॥ १० ॥

गम्भीरतारूप गुणसे अब संघको समुद्रकी उपमा देते हैं—

मूल—भद्दं धिइवेलापरिगयस्स, सज्झायजोगमगरस्स ।
अक्खोहस्स भगवओ, संघसमुद्दस्स रुदस्स ॥ ११ ॥

छाया—भद्रं धृतिवेलापरिगतस्य, स्वाध्यायपयोगमकरस्य ।
अक्षोभ्यस्य भगवत , संघसमुद्रस्य रुन्द्रस्य ॥ ११ ॥

---

१ विस्तीर्णस्य-इत्यर्थः ।

शब्दार्थ—(धिइवेला परिगयस्स) धैर्य–मूलोत्तरगुणमें उत्साहरूप आत्मपरिणाम ही जिस समुद्रकी वेला याने वृद्धिकी चरमसीमा है, (सज्झाय जोगमगरस्स) स्वाध्यायकी प्रवृत्तिरूप मकर–ग्राहवाले, व (अक्खोहस्स) उपसर्ग आदिसे क्षुब्ध नहीं होनेवाले ऐसे (भगवओ) भगवान् (रुंदस्य) परमविशाल (संघसमुद्दस्स) श्रीसंघरूप समुद्रका (भद्दं) भद्र हो ॥ ११ ॥

अब शाश्वत व अतिशय उच्च होनेके कारण छ गाथाओंसे संघको मेरुकी उपमासे उपमित करते हैं—

मूल—सम्मद्दंसणवरवइर,–दृढरूढगाढावगाढपेढस्स ।
धम्मवररयणमंडिय,–चामीयरमेहलागस्स ॥ १२ ॥
नियमूसियकणय,–सिलायलुज्जलजलंतचित्तकूडस्स ।
नंदणवणमणहरसुरभि,–सीलगंधुद्धुमायस्स ॥ १३ ॥
जीवदया-सुंदर-कंदरुद्दरिय,–मुणिवरमइंदइन्नस्स ।
हेउसयधाउपगलंत,–रयणदित्तोसहिगुहस्स ॥ १४ ॥
संवरवरजलपगलिय,–उज्झरप्पविरायमाणहारस्स ।
सावगजणपउररवंत,–मोरनच्चंतकुहरस्स ॥ १५ ॥
विणयनय-प्पवरमुणिवर,–फुरंतविज्जुज्जलंतसिहरस्स ।
विविहगुणकप्परुक्खग,–फलभरकुसुमाउलवणस्स ॥ १६ ॥
नाणवररयणदिप्पंत,–कंतवेरुलियविमलचूलस्स ।
वंदामि विणयपणओ, संघमहामंदरगिरिस्स ॥ १७ ॥

छाया—सम्यग्दर्शनवरवज्रदृढरूढगाढावगाढपीठस्य ।
धर्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकस्य ॥ १२ ॥
नियमकनकशिलातलोच्छ्रितोज्ज्वलज्वलच्चित्रकूटस्य ।
नन्दनवनमनोहरसुरभिशीलगन्धोद्धुमायस्य ॥ १३ ॥
जीवदयासुन्दरकन्दरोद्दृप्तमुनिवरमृगेन्द्राकीर्णस्य ।
हेतुशतधातुप्रगलद्रत्नदीप्तौषधिगुहस्य ॥ १४ ॥
संवरवरजलप्रगलितोज्झरप्रविराजमानहा(धा)रस्य ।
श्रावकजनप्रचुररवन्नृत्यन्मयूरकुहरस्य ॥ १५ ॥

---

१ सम्मद्दसणवइर, इति हस्तलिखिते हारिभद्रीयवृत्तौ च पाठ । २ पूर्णस्य-इति भाव ।

विनयनयप्रवरमुनिवरस्फुरद्विद्युज्ज्वलच्छिखरस्य ।
विविधगुणकल्पवृक्षकफलभरकुसुमाकुलवनस्य ॥ १६ ॥

ज्ञानवररत्नदीप्यमानकान्तवैडूर्यविमलचूडस्य ।
वन्दे विनयप्रणतः, संघमहामन्दरगिरिम्(रेः) ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—(सम्मद्दंसण वर वइर दढरूढ गाढावगाढ पेढस्स) जिस संघरूप मेरुकी सम्यग्दर्शनरूप उत्तम वज्रमय दृढ तथा बहुत कालसे रोपी हुई और बहुत गहरी भूपीठ—आधारशिला है, (धम्मवर रयण मंडिय चामीयर मेहलागस्स) शुद्ध चारित्रधर्मरूप उत्तम रत्नोंसे मण्डित व सुवर्णमय ऐसी जिस संघमेरुकी मेखला है, (नियमूसिय कणय सिलायलुज्जल जलंत चित्तकूडस्स) इन्द्रियनिग्रह आदि नियमरूप सोनेकी शिलाओंके तलपर निर्मल और भास्वर चित्तही संघमेरुके उच्च कूट हैं, (नंदणवण मणहर सुरभिसील गंधुद्धुमायस्स) तथा सन्तोषरूप नन्दनवनकी मनोहर और सुगन्धियुक्त शीलमय सुवाससे जो भरा है, अर्थात् सुमेरुकी सुवर्णमयी शिलापर ऊंचे २ उज्ज्वल व चमकने वाले अनेक विचित्र शिखर हैं। इधर संघमेरुकी नियमरूप सुवर्ण शिलापर शुभाशुभविचार—चञ्चमान चित्त—ही निर्मल तथा शुभार्थकी चिरस्मृतिसे देदीप्यमान शिखर है, मेरु नन्दनवनके सुवाससे पूर्ण है तो संघमेरु सन्तोषरूप मनोहर नन्दनवनकी सदाचरणमय सुगन्धिसे भरा हुआ है, इस प्रकार संघमेरु सुमेरु पर्वतकी तुलना करता है ॥ १२–१३ ॥

(जीवदया सुंदर कंदरुद्दरिय मुणिवर मइंद इन्नस्स) जीवदयारूप सुन्दर कन्दरामें दर्पयुक्त—कर्मशत्रुओंके प्रति व कुमतवादियोंके प्रति वादलब्धिसे बलिष्ठ ऐसे मुनिवर ही जहाँ मृगेन्द्र—सिंह हैं उनसे पूर्ण, तथा (हेउसयधाउ पगलंत रयण दित्तोसहिगुहस्स) सैकड़ों हेतुरूप धातु और क्षायोपशमिकभावसे गिरते हुए शुभविचाररूप रत्नोंसे दीप्त व आमर्षौषधी आदि औषधीसे व्याप्त व्याख्यानशालावाला संघमेरु है, और सुमेरु औषधीसे व्याप्त गुहावाला है। [दोनोंकी अच्छी तरह तुलना करनेके लिये पाठक अपनी बुद्धिसे काम लेवें] ॥ १४ ॥

(संवरवर जल पगलिय उज्झरप्पविरायमाण हारस्स) पाँच आस्रवोंका निरोधरूप उत्तम संवरही कर्ममल प्रक्षालनके लिये जिस संघमेरुमें जल है, तथा बहती हुई प्रशम आदि विचारोंकी धारा—प्रवाहही जिसके शोभायमान हार हैं, (सावगजण पउर रवंत मोर नच्चंत कुहरस्स) और बहुतसी स्तुति बोलनेवाले श्रावकजनरूप मयूरोंसे मानो संघमेरुके कुहर—कन्दरा व्याख्यानशाला—नाचरही हैं ॥ १५ ॥

तथा—(विणयनय पवर मुणिवर फुरंत विज्जुज्जलंत सिहरस्स) विनयसे नम्र प्रवर मुनिराजही चमकती हुई विद्युल्लता है उन विद्युतरूप मुनिवरोंसे वह संघमेरु देदीप्यमान शिखरवाला है, (विविह गुणकप्परुक्खग फलभर कुसुमाउलवणस्स) तथा अनेक गुणयुक्त मुनिराजही जहाँ परमानन्दकारी धर्मफलके प्रदानसे कल्पवृक्ष हैं, उन कल्पवृक्षोंके समाधिसुख आदि फलभार व अनेक प्रकारकी अतिशय-विशेषताएँ रूप कुसुमोंसे पूर्ण वनवाला याने साधुसमूहवाला संघमेरु है ॥ १६ ॥

फिर—(नाणवर रयणदिप्पंत कंत वेरुलिय विमलचूलस्स) उत्तम ज्ञानरूप रत्नोंसे देदीप्यमान कान्त-मनोहर और विमल वैडूर्यमय चूडावाले ऐसे (संघमहामंदरगिरिस्स) इस संघरूपे सुमेरुगिरिके [माहात्म्यको] (विणयपणओ) विनयसे विनम्र हुआ मैं (वंदामि) वंदन करता हूं ॥ १७ ॥

मूल—गुणरयणुज्जलकडयं, सीलसुगंधितवमंडिउद्देसं ।
सुयवारसंगसिहरं, संघमहामन्दरं वंदे ॥ १८ ॥

छाया—गुणरत्नोज्ज्वलकटकं, शीलसुगन्धितपोमण्डितोद्देशं ।
श्रुतद्वादशाङ्गशिखरं, संघमहामन्दरं वन्दे ॥ १८ ॥

फिर मेरुकी कुछ बची हुई विशेषताओंको लेकर आचार्य संघको वन्दना करते हैं—

शब्दार्थ—(गुणरयणुज्जलकडयं) प्रशस्त गुणरूप उज्वल रत्नमय कटक-मध्यभागवाले, (सीलसुगंधि तवमंडिउद्देसं) तथा शीलसे सुवासित व तपसे मण्डित उद्देश-पार्श्वभूमिवाले, (सुयवारसंगसिहरं) बारह अङ्गमय श्रुतही जिसके शिखर हैं, उस (संघमहामंदरं) संघरूप विशाल सुमेरुको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ १८ ॥

मूल—नगर-रहचक्क-पउमे, चंदे सूरे समुद्द मेरुम्मि ।
जो उवमिज्जइ सययं, तं संघगुणायरं वंदे ॥ १९ ॥

छाया—नगररथचक्रपद्मे, चन्द्रे सूरे समुद्रे मेरौ ।
य उपमीयते सततं, तं संघगुणाकरं वन्दे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—(नगर रह चक्क पउमे-) नगर, रथ, चक्र, पद्म तथा (चंदे सूरे) चन्द्र व सूर्यके विषयमें और (समुद्दमेरुम्मि) समुद्र व मेरुमें (जो) जो संघ (सययं) सदा (उवमिज्जइ) उपमित किया जाता है, (गुणायरं) गुणोंके आकर (तं) उस संघमेरुको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ १९ ॥

---

१ संघस्य सुमेरोरुपमा पाठकैर्निपुण योजनीया ।

संघकी स्तुति करके अब आवलीरूपसे तीर्थङ्करोंकी स्तुति करते हैं—

श्रीचौबीसजिनस्तुति

मूल—(वंदे) उसमं अजियं संभव,-मभिनंदण सुमइ सुप्पम सुपास।
सप्ति पुप्फदंत सीयल, सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥ २० ॥

छाया—ऋषभमजित सम्भव,-मभिनन्दनसुमतिसुप्रभसुपार्श्वम्।
शशिपुष्पदन्तशीतल,-श्रेयांसं वासुपूज्यञ्च ॥ २० ॥

शब्दार्थ—(उसमं) ऋषभदेवस्वामीको, (अजियं) अजितनाथजीको, (संभवं) सम्भवनाथजीको, (अभिणंदण सुमइ सुप्पभसुपासं) अभिनन्दनजी सुमतिजी सुप्रभ अर्थात् पद्मप्रभजी और सुपार्श्वनाथजीको, (ससि पुप्फदंत सीयल सिज्जंसं) चन्द्रप्रभजी, पुष्पदन्तजी याने सुविधिजी, शीतलनाथजी श्रेयांसनाथजी (च) और (वासुपुज्जं) वासुपूज्यजीको नमन करता हूं ॥२०॥

मूल—विमलमणंत य धम्मं, संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च।
मुणिसुव्वय नमि नेमिं, पास तह वद्धमाणं च ॥ २१ ॥

छाया—विमलमनन्तं च धर्मं, शान्तिं कुन्थुमरं च मल्लिं च।
मुनिसुव्रतनमिनेमिं, पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—(विमलं) विमलनाथजी, (अणंतं) अनन्तनाथजी, (य) और (धम्मं) धर्मनाथजी (संतिं) शान्तिनाथजी (कुंथुं) कुन्थुनाथजी (च) और (अरं) अरनाथजी, (मल्लिं) मल्लिनाथजी (च) और (मुणिसुव्वयनमि नेमिं) मुनिसुव्रतनाथजी नमिनाथजी व नेमिनाथजीको (तह) तथा (पासं) पार्श्वनाथजी (च) और (वद्धमाणं) वर्द्धमान-महावीर स्वामीजीको वंदन करता हूं ॥ २१ ॥

अब गणधरावलीको कहते हैं—

मूल—पढमित्थ इंदभूई, बीए पुण होइ अग्गिभूइत्ति।
तइए य वाउभूई, तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥ २२ ॥

छाया—प्रथमोऽत्र इन्द्रभूतिर्द्वितीयः पुनर्भवत्यग्निभूतिरिति।
तृतीयश्च वायुभूतिस्ततो व्यक्तः सुधर्मा च ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—(पढमित्थ) यहाँ महावीरके शासनमें पहले गणधर (इंदभूई) इन्द्रभूति-गौतमस्वामी (पुण) फिर (बीए) दूसरे (अग्गिभूइत्ति) अग्निभूति नामवाले (होइ) हैं, (य) और (तइए) तीसरे (वाउभूई) वायुभूति,

(तओ) बाद [चौथे] (वियत्ते) व्यक्तस्वामी, और [पांचवे] (सुहम्मे) सुधर्मस्वामी हैं ॥ २२ ॥

मूल—मंडिअ मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य ।
मेयज्जे य पहासे, गणहरा हुंति वीरस्स ॥ २३ ॥

छाया—मण्डितमौर्यपुत्रा,—वकम्पितश्चैवाचलभ्राता च ।
मेतार्यश्च प्रभासो, गणधराः सन्ति वीरस्य ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—(मंडियमोरियपुत्ते-) मण्डित व मौर्यपुत्र (चेव) और ऐसेही (अकंपिए) अकम्पित (चेव) और (अयलभाया) अचलभ्राता, (मेयज्जे) मेतार्यस्वामी (य) और (पहासे) प्रभासस्वामी—येसब— (वीरस्स) श्रीमहावीरस्वामीके (गणहरा) गणधर (हुंति) हैं ॥ २३ ॥

अब श्री जिनशासनकी स्तुति करते हैं—

मूल—निव्वुइ–पह–सासणयं, जयइ सया सव्वभाव-देसणयं ।
कुसमयमयनासणयं, जिणिंदवरवीरसासणयं ॥ २४ ॥

छाया—निर्वृतिपथशासनकं, जयति सदा सर्वभावदेशनकम् ।
कुसमय–मद–नाशनकं, जिनेन्द्रवरवीरशासनकम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—(निव्वुइपहसासणयं) निर्वाण-रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गका शासक याने शासन करनेवाला, तथा (सव्वभाव देसणयं) संसारवर्ती सब पदार्थोंका सम्यग् वर्णन करनेवाला, एवं (कुसमयमयनासणयं) कुदर्शन-मिथ्यामतके मदको नष्ट करनेवाला ऐसा (जिणिंदवर वीर सासणयं) जिनेन्द्र-श्रेष्ठ श्रीमहावीरका शासन याने प्रवचन (सया) सदा (जयइ) जयवन्त हैं-सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ २४ ॥

अब स्थविरावली कहते हैं—

मूल—सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥ २५ ॥

छाया—सुधर्माणमग्निवेश्यायनं, जम्बूनामानं च काश्यपम् ।
प्रभवं कात्यायनं वन्दे, वात्स्यं शय्यम्भवं तथा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—श्रीमहावीरके प्रथम पट्टधर (अग्गिवेसाणं) अग्निवेश्यायन-गोत्री (सुहम्मं) श्रीसुधर्मास्वामीको (च) और (कासवं) काश्यपगोत्री (जंबूनामं) जंबूनामक द्वितीय पट्टधर आचार्यको, (तहा) तथा (कुच्चायणं)

कात्यायनगोत्री (पभवं) प्रभवस्वामीको व (वच्छं) वत्सगोत्री (सिज्जंभवं) चतुर्थ आचार्य श्री शय्यंभवस्वामीको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ २५ ॥

मूल—जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं ।
भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥ २६ ॥

छाया—यशोभद्रं तुङ्गिकं वन्दे, सम्भूतं चैव माठरम् ।
भद्रबाहुं च प्राचीनं, स्थूलभद्रं च गौतमम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—शय्यम्भव स्वामीके शिष्य (तुंगियं) तुंगिकगोत्री-[व्याघ्रापत्यगोत्री] (जसभद्दं) श्री यशोभद्रको (चेव) और इसी प्रकार यशोभद्रके शिष्य (माढरं) माठरगोत्री (संभूयं) सम्भूतविजयको, (च) और (पाइन्नं) प्राचीनगोत्री (भद्दबाहुं) भद्रबाहुको (वंदे) वन्दन करता हूं, (च) और सम्भूतविजयके शिष्य (गोयमं) गौतमगोत्री (थूलभद्दं) स्थूलभद्र आचार्य को भी नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥

मूल—एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च ।
तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वन्दे ॥ २७ ॥

छाया—एलापत्यसगोत्रं, वन्दे महागिरिं सुहस्तिनञ्च ।
ततः कौशिकगोत्रं, बहुलस्य सदृग्वयसं वन्दे ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—(एलावच्चसगोत्तं) स्थूलभद्रके शिष्य एलापत्य-गोत्रवाले (महागिरिं) महागिरिको (च) और (सुहत्थिं) सुहस्ती आचार्य वशिष्ठगोत्रीको (वंदे) वंदन करता हूं, [यहाँ सुहस्तीसे सुस्थित-सुप्रतिबद्ध आदि क्रमसे एक आचार्यावली चलती है । इस विषयको दशाश्रुतस्कन्धके पर्युषित अध्ययन अर्थात् कल्पसूत्रसे जानना चाहिए । प्रस्तुत अध्ययनकी संकलना करनेवाले श्री देववाचकका उसमें सम्बन्ध नहीं होनेसे यहाँ महागिर्यावलिका-काही उल्लेख किया गया है, महागिरि और सुहस्ती ये दोनों स्थूलभद्रके शिष्य हैं] (तत्तो) सुहस्तीके बाद (कोसियगोत्तं) कौशिकगोत्री (बहुलस्स) बहुल मुनिके (सरिव्वयं) समानवयवाले बलिस्सहको (वंदे) वन्दन करता हूं । अर्थात् महागिरि आचार्यके बहुल और बलिस्सह ये दो प्रधान शिष्य थे । ये दोनों यमल-एकसाथ पैदा होनेवाले सोदर भ्राता होनेसे सगोत्री थे प्रवचनकी प्रधानतासे गुणप्रधान श्री बलिस्सह आचार्यको नमस्कार किया जाता है ॥ २७ ॥

मूल—हारियगुत्तं साइं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥ २८ ॥

छाया—हारीतगोत्रं स्वातिं च, वन्दे हारीतं च श्यामार्यम्।
वन्दे कौशिकगोत्रं, शाण्डिल्यमार्यजीतधरम्॥ २८॥

शब्दार्थ—फिर बलिस्सहके शिष्य-(हारीयगोत्तं) हारीतगोत्री (साइं) श्रीस्वाति आचार्यको (च) और स्वातिआचार्यके शिष्य (हारियं) हारीतगोत्री (सामज्जं) श्यामार्यको (वंदिमो) नमन करते हैं, तथा श्यामार्यके शिष्य (कोसियगोत्तं) कौशिकगोत्री (सांडिल्लं) शाण्डिल्य आचार्यको तथा (अज्जजीयधरं) आर्यजीतधर नामके आचार्यको (वंदे) वंदन करता हूं, [वृत्तिकारने 'आर्य जीतधर' इन दो पदोंको शाण्डिल्यका विशेषण माना है, विशेषणका अर्थ इस प्रकार किया है—आर्य—पापोंसे दूर रहनेवाले, जीतधर—मर्यादादर्शक सूत्रोंको धारण करनेवाले, ऐसे शाण्डिल्यको वन्दन करता हूं, ऐसा मुख्य अर्थ किया और गौण अर्थसे मतान्तरमें आर्यजीतधर नामक दूसरे आचार्यको माना है]॥ २८॥

मूल—तिसमुद्द-खायकित्तिं, दीवसमुद्देसु गहिय-पेयालं।
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं॥ २९॥

छाया—त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिं, द्वीपसमुद्रेषु गृहीतपेयालम्[1]।
वन्दे-आर्यसमुद्रम्, अक्षुभितसमुद्रगम्भीरम्॥ २९॥

शब्दार्थ—शाण्डिल्यके शिष्य-(तिसमुद्दखायकित्तिं) तीन समुद्र अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम इन तीनों दिशाओंमें स्थित एकही लवणसमुद्रके तीन विभागकी अपेक्षासे इन तीन समुद्रपर्यन्त प्रख्यात कीर्तिवाले और (दीव समुद्देसु गहिय पेयालं) विविध द्वीप-समुद्रोंमें प्रमाणको प्राप्त करनेवाले, अर्थात् द्वीपसागर प्रज्ञप्तिके विद्वान् तथा (अक्खुभिय समुद्द गंभीरं) क्षोभरहित-स्थिर समुद्रकी तरह गम्भीर, ऐसे (अज्जसमुद्दं) आर्यसमुद्र नामक आचार्यको (वंदे) मैं वन्दन करता हूं॥ २९॥

मूल—भणगं करगं झरगं, पभावगं णाणदंसणगुणाणं।
वंदामि अज्जमंगुं, सुयसागरपारगं धीरं॥ ३०॥

छाया—भाणकं कारकं ध्यातारं, प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानाम्।
वन्दे—आर्यमंगुं, श्रुतसागरपारगं धीरम्॥ ३०॥

शब्दार्थ—(भणगं) कालिक आदि सूत्रोंको सदा पढनेवाले, (करगं) सूत्रोक्त क्रियाकलापको करनेवाले तथा (झरगं) धर्मध्यान ध्यानेवाले, अतएव (णाणदंसण गुणाणं पभावगं) ज्ञान, दर्शन व चारित्र इन तीनोंके गुणोंको

१ पेयालमिति देशीशब्द प्रमाणमित्यर्थ।

दिपानेवाले, तथा (सुयसागरपारगं) श्रुतरूप समुद्रके पारगामी व (धीरं) धीर [एवंगुणविशिष्ट] आर्यसमुद्र आचार्यके शिष्य (अज्जमंगुं) श्री आर्य-मंगु आचार्यको (वंदामि) वन्दन करता हूं ॥ १० ॥

मूल—*वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च ।
तत्तो य अज्जवइरं, तव-नियम-गुणेहिं वइरसमं ॥ ११ ॥

छाया—वन्दे—आर्यधर्मं, ततो वन्दे च भद्रगुप्तं च ।
ततश्चार्यवज्रं, तपोनियमगुणैर्वज्रसमम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—फिर—(अज्जधम्मं) श्री आर्यधर्माचार्यको (य) और (तत्तो) उसके बाद (भद्दगुत्तं) भद्रगुप्ताचार्यको (वंदामि) वन्दन करता हूं, (च) और (तत्तो) तदनन्तर (तव नियम गुणेहिं) तप नियम आदि गुणोंसे (वइर समं) वज्रके समान बलशाली ऐसे (अज्जवइरं) आर्यवज्रस्वामीको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ११ ॥

मूल—*वंदामि अज्जरक्खिय,—खवणे[1] रक्खिय-चारित्तसव्वस्से ।
रयणकरंडगभूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥ १२ ॥

छाया—वन्दे आर्यरक्षितक्षपणान्, रक्षितचारित्रसर्वस्वान् ।
रत्नकरण्डकभूतो,—ऽनुयोगो रक्षितो यैः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—(अज्जरक्खियखवणे) श्रीआर्यरक्षित तपस्विराजको (वंदामि) वन्दन करता हूं, जिन्होंने (रक्खिय चारित्तसव्वस्से) उस समयके सभी मुनिओंके व अपने चारित्रसर्वस्व—संयमजीवनकी रक्षा की, तथा (जेहिं) जिन्होंने (रयणकरंडगभूओ) विचाररूपरत्नोंके करण्डक—पेटीके समान (अणुओगो) अनुयोगकी (रक्खिओ) रक्षा की थी ॥ १२ ॥

तीसवीं गाथासे सम्बन्धित आर्यमंगुके शिष्य—

मूल—नाणम्मि दंसणम्मि य, तव—विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जं नंदिलखवणं, सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥ १३ ॥

छाया—ज्ञाने दर्शने च तपो—विनये नित्यकालमुद्युक्तम् ।
आर्यं नन्दिलक्षपणं, शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् ॥ १३ ॥

आर्यमंगुके शिष्य—

शब्दार्थ—(नाणंमि) ज्ञानमें, (दंसणंमि) दर्शन—सम्यक्त्वमें (य)

---

१ मर्द इति पाठान्तरम् भा० टी० । २ खमणे इति पाठान्तरम् । *११ १२ गाथाद्वयं पराङ्मुखमानमपि तत्समकृतत्वात्‌सूरीणां ज्ञापकम्, शेषपाकृतौ मौलम् ।

और (तव विणए) तपस्यामें व विनयमें (निच्चकालं) सर्वदा (उज्जुत्तं) तत्पर-प्रमादरहित, तथा (पसन्नमणं) रागद्वेषसे रहित होनेके कारण प्रसन्न-चित्त ऐसे (अज्जं-नंदिलखवणं) आर्य नन्दिलक्षपणको (सिरसा) मस्तकसे (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ३३ ॥

श्रीआर्य नन्दिलक्षपणके शिष्य—

मूल—वड्ढउ वायगवंसो, जसवंसो अज्जनागहत्थीणं ।
वागरणकरणभंगिय,-कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३४ ॥

छाया—वर्द्धतां वाचकवंशो, यशोवंश आर्यनागहस्तिनाम् ।
व्याकरणकरणभाङ्गिक-कर्मप्रकृतिप्रधानानाम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—(वागरण) व्याकरण-संस्कृत शब्दानुशासन अथवा प्रश्न-व्याकरण, (करण) पिण्डविशुद्धि आदि, (भंगिय) भांगाओंकी विशेषता-वाले, (कम्मप्पयडी) कर्मप्रकृति-श्रुतकी रचनासे या इनकी विशिष्टप्ररूपणा करनेमें (पहाणाणं) प्रधान ऐसे (अज्जनागहत्थीणं) आर्यनागहस्ती आचार्यका (वायगवंसो) वाचकवंश (जसवंसो) मूर्तिमान् यशोवंशकी तरह (वड्ढउ) वृद्धि पावे-वर्द्धमान हो ॥ ३४ ॥

आर्यनागहस्तीके शिष्य—

मूल—जच्चंजणधाउसमप्पहाणं, मुद्दियकुवलयनिहाणं ।
वड्ढउ वायगवंसो, रेवइनक्खत्तनामाणं ॥ ३५ ॥

छाया—जात्याञ्जनधातुसमप्रभाणां, मृद्वीकाकुवलयनिभानाम् ।
वर्द्धतां वाचकवंशो, रेवतिनक्षत्रनाम्नाम् ॥ ३५ ॥

(जच्चंजणधाउसमप्पहाणं) जातिसम्पन्न अञ्जनधातुके समान शरीरकी कृष्णप्रभावाले, तथा (मुद्दिय कुवलयनिहाणं) पकी हुई दाख व नीलकमलके समान कान्तिवाले, ऐसे (रेवइ नक्खत्तनामाणं) रेवतिनक्षत्र नामक आचार्यका (वायगवंसो) वाचकवंश (वड्ढउ) वर्द्धमान हो ॥ ३५ ॥

रेवतिनक्षत्र आचार्यके शिष्य—

मूल—अयलपुरा णिक्खंते, कालियसुअ-आणुओगिए धीरे ।
बंभद्दीवगसीहे, वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥ ३६ ॥

छाया—अचलपुरान्निष्क्रान्तान्, कालिकश्रुताऽनुयोगिकान् धीरान् ।
ब्रह्मद्वीपिकसिंहान्, वाचकपदमुत्तमं प्राप्तान् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—(अयलपुरा णिक्खंते) अचलपुरमें दीक्षा लेनेवाले, (कालि-यसुय आणुओगिए) कालिकश्रुतके अनुयोगमे नियोगवाले तथा (धीरे)

धीर (वायगपयमुत्तमं पत्ते) तथा उत्तम वाचक पदको प्राप्त करनेवाले ऐसे (बंभदीवगसीहे) ब्रह्मद्वीपकी शाखासे उपलक्षित श्री सिंहाचार्यको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ३६ ॥

श्रीसिंहाचार्यके शिष्य—

मूल—जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि ।
बहुनयरनिग्गयजसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥ ३७ ॥

छाया—येषामयमनुयोगः, प्रचरत्यद्याप्यर्द्धभरते ।
बहुनगरनिर्गतयशसः, तान् वन्दे स्कन्दिलाचार्यान् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—(जेसिं) जिनका (इमो) वर्तमानमें मिलनेवाला यह (अणुओगो) अनुयोग (अज्जावि) आजभी (अड्ढभरहम्मि) आधे भरतक्षेत्र-दक्षिण भरतमें (पयरइ) प्रचलित है, (बहु नयर निग्गयजसे) बहुतसे नगरोंमें विस्तृत यशवाले (ते) उन (खंदिलायरिए) सिंह वाचकके शिष्य श्री स्कन्दिलाचार्यको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ३७ ॥

मूल—तत्तो हिमवंतमहंत,—विक्कमे धिइपरक्कममणंते ।
सज्झायमणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥ ३८ ॥

छाया—ततो हिमवन्महाविक्रमान्, अनन्तधृतिपराक्रमान् ।
अनन्तस्वाध्यायधरान्, हिमवतो वन्दे शिरसा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—(तत्तो) स्कन्दिलाचार्यके बाद इनके शिष्य (हिमवंत महंत विक्कमे) हिमवान्की तरह बहुक्षेत्रव्यापी विहार करनेवाले (धिइ परक्कम मणंते) अपरिमित धैर्यप्रधान पराक्रमवाले तथा (सज्झायमणंतधरे) अर्थकी दृष्टिसे अनन्तस्वाध्यायको धरनेवाले, ऐसे (हिमवंते) श्री हिमवन्नामक आचार्यको (सिरसा) मस्तकसे (वंदिमो) वन्दन करता हूं ॥ ३८ ॥

मूल—कालियसुय-अणुओगस्स, धारए धारए य पुव्वाण ।
हिमवंतखमासमणे, वंदे णागज्जुणायरिए ॥ ३९ ॥

छाया—कालिकश्रुताऽनुयोगस्य, धारकान् धारकांश्च पूर्वाणाम्[२] ।
हिमवतः क्षमाश्रमणान्, वन्दे नागार्जुनाचार्यान् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—फिरभी उन्हींकी स्तुति करते हैं, जैसे—(कालियसुयअणुओगस्स) कालिकशास्त्रसम्बन्धी अनुयोगके (धारए) धारक—धरनेवाले (य) और (पुव्वाणं) उत्पाद आदि पूर्वोके (धारए) धारण करनेवाले इस प्रकारके गुणोंसे युक्त ऐसे (हिमवंतखमासमणे) श्रीहिमवन्तनामक क्षमाश्रम

१ प्राकृतशैल्या—अन्त्य शब्दस्य .... । दी । २ पूर्वाणाम्—इति जैनागमप्रसिद्धपूर्वशब्दस्य पर्यायोऽयम् ।

णको तथा इन्हींके शिष्य (णागज्जुणायरिए) नागार्जुनाचार्यको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ३९ ॥

मूल—मिउमद्दवसंपन्ने, आणुपुव्वि[1] वायगत्तणं पत्ते ।
ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वंदे ॥ ४० ॥

छाया—मृदुमार्दवसम्पन्नान्, आनुपूर्व्या वाचकत्वं प्राप्तान् ।
ओघश्रुतसमाचारान्(चारकान्), नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—(मिउमद्दवसंपन्ने) मृदु-मनोज्ञ अर्थात् भव्य जीवोंके सन्तोष-कारक ऐसे मार्दव आदि भावोंसे युक्त, और (आणुपुव्वि) अवस्था व दीक्षा पर्यायसे (वायगत्तणं पत्ते) वाचकपदको पाए हुए, तथा (ओहसुयसमायारे) ओघश्रुत अर्थात् उत्सर्ग-विधि-मार्गका समाचरण करनेवाले, ऐसे गुणसे युक्त (णागज्जुणवायए) नागार्जुनवाचकको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ४० ॥

श्रीगोविन्द आचार्य और भूतदिन्न आचार्यकी स्तुति—

मूल—गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं[2] ।
णिच्चं खंतिदयाणं[3], परूवणे दुल्लभिंदाणं[4] ॥ ४१ ॥

तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तवसंजमे अनिव्विण्णं ।
पंडियजणसम्माणं[5], वंदामो[6] संजमविहिण्णुं ॥ ४२ ॥

छाया—गोविन्देभ्योऽपि नमः, अनुयोगे विपुलधारणेन्द्रेभ्यः ।
नित्यं क्षान्तिदयानां, प्ररूपणे इन्द्रदुर्लभेभ्यः ॥ ४१ ॥
ततश्च भूतदिन्नं, नित्यं तपःसंयमेऽनिर्विण्णम् ।
पण्डितजनसंमान्यं, वन्दामहे संयमविधिज्ञम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—(अणुओगे विउल धारणिंदाणं) अनुयोगकी विपुल धारणा-रखनेवालोंमें इन्द्रके समान, (खंतिदयाणं) क्षमा, दया आदि गुणोंकी (परूवणे) प्ररूपणामें (निच्चं) सदा (दुल्लभिंदाणं) जो इन्द्रोंके भी दुर्लभ ऐसे (गोविंदाणं पि) श्रीगोविन्द नामक आचार्यको भी (नमो) नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

(य) और (तत्तो) तदनन्तर (तवसंजमे) तपसंयमकी आराधनामें (निच्चं) सदा (अनिव्विण्णं) निर्वेद-ग्लानिसे रहित (पंडियजणसम्माणं) पण्डितजनसे संमाननीय तथा (संजम विहिण्णुं) संयमविधिके विशेष जानकार ऐसे (भूयदिन्नं) श्रीभूतदिन्न आचार्यको (वंदामो) वन्दन करते हैं ॥ ४२ ॥

---

१ 'पुव्विं', 'पुव्वी' इति पाठान्तरम् । २ 'धारिणदाण' इति रा व मुद्रिते पाठ । ३ 'जुयाण' इति पाठान्तरम् । ४ 'दुल्लभिंदाणिं', इत्यपि पाठ. । प्राकृतत्वादिन्द्रशब्दस्य पर-निपात । ५ सामण्ण–इति पाठ । ६ वदामि–इति पाठान्तरम् ।

मूल—वरकणगतवियचंपग,–विमउलवरकमलगब्भसरिवन्ने ।
भवियजणहिययदइए, दयागुणविसारए धीरे ॥ ४३ ॥
अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविह-सज्झाय-सुमुणियपहाणे ।
अणुओगिअवरवसभे, नाइलकुलवंसनंदिकरे ॥ ४४ ॥
भूयहियप्पगब्भे, वंदेऽहं भूयदिन्नमायरिए ।
भवभयवुच्छेयकरे, सीसे नागज्जुणरिसीणं ॥ ४५ ॥

छाया—वरतप्तकनकचम्पक,–विमुकुलवरकमलगर्भसदृगवर्णान् ।
भविकजनहृदयदयितान्, दयागुणविशारदान् धीरान् ॥ ४३ ॥
अर्द्धभरतप्रधानान्, सुविज्ञातबहुविधस्वाध्यायप्रधानान् ।
अनुयोजितवरवृषभान्, नागेन्द्रकुलवंशनन्दिकरान् ॥ ४४ ॥
भूतहितप्रगल्भान्, वन्देऽहं भूतदिन्नाचार्यान् ।
भवभयव्युच्छेदकरान्, शिष्यान् नागार्जुनर्षीणाम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—(वर कणग तविय चंपग विमउल वर कमल गब्भ सरिवण्णे) तपाया हुआ उत्तम सुवर्ण या सुनहरी रंगवाला प्रधान चम्पाका फूल तथा खिले हुए उत्तम कमलके गर्भ इनके समान पीतवर्णवाले और (भवियजण हियय दइए) भव्य जीवोंके चित्तमें प्रेम उत्पन्न करनेवाले याने जो वल्लभ हैं तथा (दयागुण विसारए) लोगोंके मनमें दयागुणको उत्पन्न करनेमें परम निपुण थ (धीरे) जो धीर हैं ॥ ४३ ॥

(अड्ढभरहप्पहाणे) उस कालकी अपेक्षासे दक्षिणार्द्धभरतके युगप्रधान और (बहुविहसज्झाय सुमुणियपहाणे) आचाराङ्ग आदि बहुविध स्वाध्यायके जो अच्छीतरह जानकार हैं, (अणुओगियवरवसभे) अनेकवर वृषभ-श्रेष्ठ साधुओंको स्वाध्याय वैयावृत्य आदि कार्योंमें लगानेवाले, तथा (नाइल कुलवंस नंदिकरे) नागेन्द्रकुलनामक वंशका जो प्रमोद या वर्द्धमान करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥

फिर (भूयहियप्पगब्भे) प्राणिमात्रके हितमें प्रगल्भ अर्थात् निर्भीकतासे उपदेशपूर्वक जो प्राणिहितको करनेवाले हैं, तथा (भवभयवुच्छेयकरे) संसारके भयको नष्ट करनेवाले हैं, [इस प्रकारके गुणोंसे विशिष्ट] ऐसे (नागज्जुणरिसीणं) श्रीनागार्जुनमहर्षिके (सीसे) शिष्य (भूयदिन्नमायरिए) श्री भूतदिन्न नामक आचार्यको (अहं) मैं (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ४५ ॥

मूल—सुमुणिय–निच्चानिच्चं, सुमुणिय–सुत्तत्थधारयं वंदे ।
सब्भावुब्भावणया, तत्थं लोहिच्चणामाणं ॥ ४६ ॥

१ विमउल इति हस्तलिखित पाठः । २ भूयहियप्पगब्भे इति हस्तलिखित पाठः । [illegible] इति [illegible] टीकायाम् । ३ [illegible] इति पाठान्तरम् । ४ [illegible] इति हस्तलिखिते पाठः ।

छाया—सुज्ञातनित्याऽनित्यं, सुज्ञातसूत्रार्थधारकं वन्दे ।
सद्भावोद्भावनया, तथ्यं लौहित्यनामानम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—(सुमुणिय निच्चानिच्चं) अच्छीतरह नित्य अनित्यरूपसे वस्तुको जाननेवाले, (सुमुणिय सुत्तत्थधारयं) सम्यक् समझे हुए सूत्रार्थ-को धारण करनेवाले (सब्भावुब्भावणया तत्थं) और यथावस्थित वर्तमान भावोंके प्रकाशनमें अविसंवादी याने वस्तुतत्त्वोंका सत्य प्रतिपादन करनेवाले ऐसे उन (लोहिच्चणामाणं) श्रीभूतदिन्न आचार्यके शिष्य लौहित्यनामक आचार्यको (वंदे) वन्दन करता हू ॥ ४६ ॥

मूल—अत्थमहत्थखाणिं, सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं ।
पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं ॥ ४७ ॥

छाया—अर्थमहार्थखनिं, सुश्रमणव्याख्यानकथननिर्वृत्तिम् ।
प्रकृत्या मधुरवाणीकं, प्रयतः प्रणमामि दूष्यगणिनम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—(अत्थमहत्थखाणिं) जो अर्थ व महार्थकी खानकी तरह खान याने भाषा विभाषा वार्तिक आदि भेदोंसे अनुयोगविधिमें अत्यन्त कुशल हैं, तथा (सुसमण वक्खाण कहण निव्वाणिं) मूलोत्तर गुणसम्पन्न सुसाधु-ओंके लिये अपूर्व शास्त्रार्थका व्याख्यान करने व पूछे हुए विषयोंको कहनेमें जो समाधि अनुभव करनेवाले हैं, उन (पयईए) स्वभावसे (महुरवाणिं) मधुरभाषी (दूसगणिं) श्री दूष्यगणी आचार्यको (पयओ) सम्मानपूर्वक (पणमामि-) प्रणाम करता हूं ॥ ४७ ॥

मूल—तवनियमसच्चसंजम,-विणयज्जवखंतिमद्दवरयाणं ।
सीलगुणगद्दियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥ ४८ ॥

छाया—तपोनियमसत्यसंयम,-विनयार्जवशान्तिमार्दवरतानाम् ।
शीलगुणगर्दितानाम्, अनुयोगयुगप्रधानानाम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—(तवनियम सच्च संजम विणयज्जव खंतिमद्दवरयाणं-) तप, नियम, सत्य, संयम, विनय, आर्जव-सरलभाव, शान्ति, और मार्दव-कोमलता आदि गुणोंमे रत-लगे रहनेवाले तथा (सीलगुणगद्दियाणं) शीलगुणोंसे प्रख्यात होनेवाले, (अणुओग जुगप्पहाणाणं) अनुयोग करनेमें उस समयकी अपेक्षासे जो युगप्रधान हैं ॥ ४८ ॥

मूल—सुकुमालकोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे ।
पाए पावयणीणं, पडिच्छयसयएहिं पणिवइए ॥ ४९ ॥

छाया—सुकुमारकोमलतलान्, तेषां प्रणमामि लक्षणप्रशस्तान्।
पादान् प्रावचनिकानां, प्रातीच्छिकशतैः[1] प्रणिपतितान्॥ ४९॥

शब्दार्थ—(पावयणीणं) प्रधान प्रवचन करनेवाले (तेसिं) पूर्वोक्त गुणवाले उन पूज्यवर्योंके (लक्खणपसत्थे) लक्षणोंसे प्रशस्त-उत्तम, व (सुकुमाल कोमलतले) मृदु और सुन्दर तल-तलवे-वाले (पाए) चरणोंको (पणमामि) प्रणाम करता हूं, जो पैर (पडिच्छय सयपणिवइए) सैकड़ों शिष्योंसे (पणिवइए) नमस्कार पाए हुए हैं॥ ४९॥

मूल—जे अन्ने भगवंते, कालियसुय-आणुओगिए धीरे।
ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छं॥ ५०॥

छाया—येऽन्ये भगवन्तः, कालिकश्रुतानुयोगिनो धीराः।
तान् प्रणम्य शिरसा, ज्ञानस्य प्ररूपणां वक्ष्ये॥ ५०॥

शब्दार्थ—(अन्ने) स्तुतिके विषय हुए आचार्योंके सिवाय भी (जे) जो (कालियसुय आणुओगिए) कालिकशास्त्रके अनुयोगवाले (धीरे) धीर (भगवंते) विशेषश्रुतधारी आचार्य भगवान् हैं (ते) उनको (सिरसा) मस्तकसे (पणमिऊण) प्रणाम करके (नाणस्स) ज्ञानकी (परूवणं) प्ररूपणाको (वोच्छं) कहूंगा॥ ५०॥

इति स्थविरावली समाप्ता।

श्रीदेवर्द्धिगणिविरचिताऽर्हत्स्थविरावलिकाऽपि सम्पूर्णा।



१ ज्ञानप्राप्तिके लिये जो शिष्य गुरुकी आज्ञासे दूसरे गच्छसे आकर पढ़के अनुयोगधारीकी स्वीकृतिसे उनकी इच्छानुसार रहते हैं, उनको प्रातीच्छिक कहते हैं। (सम्पादक)

२ एतासु पञ्चाशत्संख्याकासु गाथासु १०।१३।१६।१२।२।४८।४९ संख्याकाः गाथाः चूर्णि हारिभद्रीयवृत्त्योर्मलयगिरिवृत्तौ च न व्याख्याताः समितिमुद्रितेऽपि न सन्ति एवमन्य हस्तलिखिते रत्नपत्तनस्थितसिद्धसूरिविरचिते पूज्य-ऋषिसम्पादिते च विद्यन्ते अवचूरिकाकृन्निर्युक्तिदीपिकयोः च समस्ते। वीरचन्द्रैरपि ता संस्कृते हरिभद्रीयस्याभिमन्ये। अतश्च पुरातनाचार्याणां परम्परयाऽऽसां गाथानां प्रामाण्यं निश्चित्य विशेषो निर्णयो विधेयः। (सम्पादक)

अथ नन्दीसूत्रम्



सच्छायं



सभाषाटीकं प्रारभ्यते



अनुवादकका मङ्गलाचरण— श्रोताओंके लिये १४ दृष्टान्त.

जगमें कषायोंपर विजयकर, केवली जो बनगए,
परमार्थ जिनवाणी बना, सर्वार्थहित जो करगए।
उन तीर्थपतिको नमन कर, गुरुभक्तिको मनमें धरूं,
भाषार्थ नन्दीसूत्रका, चूर्ण्यादि आश्रयसे करूं ॥ १ ॥

मङ्गलके हेतु अर्हत् आदि स्तुतिरूपका आवलिका कहचुके, अब नन्दीसूत्रके कथित अर्थोंको ग्रहण करनेमें योग्य श्रोता कौन? तथा कैसी परिषद् योग्य होती है, इस दृष्टिसे पहले १४ दृष्टान्तोंसे श्रोताके अधिकारको कहते हैं—

मूल—सेल घण कुडग चालिणि, परिपुण्णग हंस महिस–मेसे य।
मसग जलूग बिराली, जाहग गो भेरी आभीरी ॥

छाया–शैल–घन–कुटक–चालनी,–परिपूर्णक–हंस–महिष–मेषाश्च।
मशक–जलौक–बिडाली,–जाहक–गो–भेर्याऽऽभीर्यः ॥

टीका—१ शैल–चिकना गोल पत्थर–मुद्गशैल, और घन–पुष्करावर्त मेघ, २ कुडग–घडा, ३ चालनी, ४ परिपूर्णक, ५ हंस, ६ महिष, ७ मेष, ८ मशक, ९ जलौका, १० और बिडाली, ११ जाहक, १२ गौ, १३ भेरी, तथा १४ आभीरी इनके समान श्रोता होते है।

श्रोताके लिये शैल आदिके दृष्टान्त—

१ सेल–किसी समय मुद्गशैल और पुष्करावर्त महामेघमें विवाद खडा हुआ, मुद्गशैल बोलने लगा कि मुझे कोई नहीं गला सकता। यदि

तुम मुझे तिलतुषमात्र भी खण्डित करसको या गीला भी करसको तो तुम्हारा पुष्करावर्त नाम सच्चा समझूं । पुष्कर मेघ बोला–अरे तूं हमारी एक धारा भी नहीं सह सकेगा, यदि हमारे धारा-पातोंके सामने तूं टिक गया तो मैं भी समझूंगा कि तूं सच्चा मुद्गशैल है । ऐसा कहकर मेघ मूसलधार बरसने लगा और लगातार ७ दिनोंतक बरसकर सोचा कि अब तो शैल नष्ट होगया होगा ऐसा समझकर वर्षा बन्द करदी और देखने लगा तो मुद्गशैल अधिक चाकचिक्ययुक्त दिखपड़ा, वह मेघको देखतेही बोला–'क्यों जी ! तुम्हारा बल पूरा हुआ या नहीं ! तुम तो मुझे गलाते थे !' मेघ सुनके लज्जित हो चला गया। इसीप्रकार मुद्गशैलके समान अयोग्य श्रोता–शिष्यको उपदेश(शिक्षा) देते हुए अतिशयज्ञानी–वचन–संपत्तियुक्त आचार्यको भी लज्जित एवं हताश होना पड़ता है । जैसे चिकना गोल पत्थर पुष्करावर्त मेघके सात अहोरात्र बरसनेपर भी नहीं भीजता, वैसे प्रयत्न पूर्वक अतिशय ज्ञानीके किये गये उपदेशोंसे भी जिसके हृदयपर असर नहीं होता, वह शैलघन श्रोता अयोग्य है । प्रतिपक्षमें–जैसे कृष्ण मिट्टी अपने ऊपर बरसे हुए पानीको बाहर नहीं जाने देती वैसे योग्य श्रोता बहुश्रुत आचार्यके उपदेशको व्यर्थ नहीं जाने देते किन्तु उसे धारण करलेते हैं । ऐसे श्रोता योग्य होते हैं।

१ कुडम–कुट–घड़ा–ये चार प्रकारके होते हैं–(१) टूटा गरदनवाला, (२) बाजूमें एक तरफसे फूटा हुआ, (३) नीचेसे फूटा, (४) न टूटा न फूटा । जैसे–किनारपर फूटे हुए घड़ेमें थोड़ा–कुछ कम पानी रहता है, बीचसे फूटे हुए घड़ेमें पहलेसे थोड़ा पानी कम रहता है, नीचेसे फूटे हुए घड़ेमें कुछ भी पानी नहीं रहता और छिद्ररहित घड़ेमें सब जल ठहरता है, ऐसेही (१) श्रोता कुछ कम धारण करता (२) बहुत थोड़ा धारण करता, (३) कुछ भी नहीं धारण करता, (४) सुना हुआ सब धारण कर रखता, यही श्रोता पूर्ण योग्य है, और जो कुछ भी धारण नहीं करता वह पूर्ण अयोग्य है; बाकी दो देशतः शास्त्रश्रवणमें योग्य हैं, घटका दृष्टान्त दूसरे प्रकारसे भी है, जैसे–एक भावित दूसरा अभावित । इसमें जो भावित है, उसके भी दो भेद हैं–एक प्रशस्त भावित और दूसरा अप्रशस्त भावित । पुष्प कर्पूर वगैरह से जो भावित है वह प्रशस्त भावित कहलाता है, तथा मदिरा तैल आदिसे जो भावित है, वह अप्रशस्त भावित है । प्रशस्त भावित भी वाम्य और अवाम्य भेदसे दो तरहका होता है–जो घड़े, रूप और गन्ध आदिसे बदलाये जा सकें वे वाम्य और जो नहीं बदलाये जासकें वे अवाम्य हैं, इनमें प्रशस्त भावित अवाम्य और अप्रशस्त भावित वाम्य घड़ोंकी तरहके श्रोता योग्य हैं अर्थात् सम्यक् तत्त्वकी श्रुतिसे भावित होकर जो स्थिर विचारवाले हैं और कुश्रुतिके उपदेशसे भावित होकर भी जो वाम्य–परिवर्तनीय हैं, ये दोनों प्रकारके श्रोता योग्य हैं ।

३ चालिणि-चालनी-जैसे चालनी एक वाजूसे पानी लेकर दूसरी वाजूसे निकाल देती है, ऐसे जो आचार्यके उपदेशको कुछ भी ध्यानमें नहीं रखता वह चालनीके समान श्रोता भी शास्त्रश्रवणमें अयोग्य है।

चालनीके प्रतिपक्षमें-जैसे तापसका कमण्डलु विन्दुमात्र भी जल नहीं गिरने देती ऐसे जो श्रोता उपदेशके तत्त्वको कुछ भी नहीं छोडता वह शास्त्रश्रवणमे योग्य है।

४ परिपुण्णग-परिपूर्णक (घृत आदि छाननेका तृणमय साधन) इसमे जैसे सारसार निकलजाता व मल ठहरता है ऐसे जो श्रोता गुणोंको निकालकर दोषोंको रखता है वह भी शास्त्रश्रवणमे अयोग्य है। इसके प्रतिपक्षमें-

५ हंस-जैसे हंस मिले हुए दूध व पानीमेसे पानीको अलगकर दूधही पीता है ऐसे जो शिष्य दोषोंको छोडकर गुण ग्रहण करता है वह श्रोता उपदेशश्रवणके योग्य है।

६ महिस-माहिष-जैसे जलाशयमें पानी पीनेको गया हुआ महिस-भैंसा पानीको डुलाकर-मलिन वनाके न तो खुद स्वच्छ जल पीता और न दूसरेकोही पीने देता है, ऐसे जो शिष्य अनेक तरहके कोलाहलद्वारा न तो खुद अच्छीतरह शास्त्रोपदेशको सुनता और न दुसरोंकोही सुनने देता वह शास्त्रश्रवणके अयोग्य है। इसके प्रतिपक्षमें-

७ मेष (भेड)-जैसे भेड गौके खुर डुबे उतने पानीमें भी अपने घुटने टेक, पानीको वगैर मलिन किये हुए खुद इच्छाभर पी लेती है तथा दूसरोंको भी पीने देती है, ऐसे जो श्रोता शान्तभावसे स्वयं भी शास्त्र-उपदेश सुनता तथा दूसरोको भी सुनने देता है वह शास्त्रग्रहणके योग्य है।

८ मसग-मशक-मच्छर-डांस-जैसे मच्छर शरीरपर वैठतेही दुःख पैदा करता है ऐसे जो श्रोता आचार्यको उद्वेग व कष्ट पहुँचाता है वह भी उपदेशके लिये अयोग्य होनेसे मशककी तरह हटानेयोग्य है। प्रतिपक्षमे-

९ जलूगा-जलौका (जोंक)-जैसे जलौका विना कष्ट पहुँचाये खराव रक्त पी लेती है ऐसे जो श्रोता आचार्यको विना कष्ट पहुँचाये शास्त्रवाणीका पान करते हैं वे योग्य हैं।

१० विराली-विडाली (मार्जारी)-जैसे मार्जारी भाजनसे नीचे गिराके धूलयुक्त दूधको पीती है ऐसे जो श्रोता अहंकारवश आचार्यके पास उपदेशामृतका पान नहीं करके ऊठकर जाते हुए श्रोताओके परस्पर संभाषणसे निकले हुए वचनोंको सुनता है, वह भी उपदेशदानके अयोग्य है। प्रतिपक्षमें-

११ जाहग-जाहक (उन्दिरकी जातिका एक जन्तुविशेष)-जैसे जाहक भाजनमेसे थोडा २ दूध पीकर वाजूके भागको चाटता है और फिर पीता है

ऐसेही जो श्रोता पूर्वश्रुत उपदेशको मननकर फिर पूछता है किन्तु गुरुको खिन्न नहीं करता वह उपदेशश्रवणके योग्य है।

१२ गो-गौः (गाय)-जैसे किसी गृहस्थने चार ब्राह्मणोंको एक गाय दानमें दी, उसको वे लोग एक २ दिन क्रमशः दूहने लगे तथा उसको खिलाने के समयमें ऐसा विचार करने लगे कि कल तो इसका दोहन दूसरा करेगा फिर आज मैं इसका पोषण क्यों करूं? इस विचारसे चारोंने उसको खिलाना छोड दिया। नतीजा यह हुआ कि कुछही दिनोंके बाद भूखसे पीडित हो गाय मरगयी, वे चारों ब्राह्मण लोगोंमें निन्दाके पात्र हुए तथा साथही गाय और दूधसे भी उनको हाथ धोना पडा। इसीप्रकार जो शिष्य आचार्यसे श्रुतग्रहण तो करता है किन्तु सेवा-शुश्रूषाके समय यह समझता है कि जिनको अभी आचार्यसे विशेष लाभ लेना है, वे सेवा करें, मैं क्यों करूं? ऐसा शिष्य बहुत समयतक आचार्यसे लाभ नहीं ले सकता। स्वार्थभावप्रधान होनेसे इस प्रकारका शिष्य भी शास्त्रग्रहणके विषयमें अयोग्य होता है। इसके विपरीत निस्स्वार्थ बुद्धिसे आचार्यकी सेवा-भक्ति करनेवाला शिष्य आचार्यकी मीठी-मता-समाधिसे विशेषरूपमें श्रुतज्ञानकी प्राप्ति करता है और शास्त्रग्रहणमें योग्य अधिकारी होता है।

१३ भेरी-भेरी-श्रीकृष्णके गुणग्राहीपनकी परीक्षासे प्रसन्न होकर किसी देवने उनको अशिवोपशामक-विघ्ननिवारक एक भेरी दी जिसके बजानेपर जहाँ २ उसका शब्द सुनपडे, वहाँ २ छमासपर्यन्त किसीको कोइ रोग नहीं होता तथा पहलेका हुआ रोग नष्ट हो जाता इसप्रकार दिव्य प्रभावयुक्त भेरीकी बात सुनकर दूरदूरसे रोगी आने लगे। एक समय मस्तककी वेदनासे व्याकुल एक धनी वहाँ चला आया, उसको वैद्यने गोशीर्षचन्दन उपचारमें बताया जो कहीं भी न मिला। भेरी छमासमें बजायी जाती थी मगर उसको तो एक दिन भी बिताना कठिन था। ऐसी दशामें उसने भेरीरक्षक पुरुषको गुप्तरूपसे बहुमूल्य पुरस्कार देकर भेरीका कुछ खण्ड (टुकडा) प्राप्त करलिया। भेरी रक्षकने उस टूटे हुए भागपर दूसरा टुकडा लगा दिया। इस प्रकार अन्य २ खण्ड दत्त हुए यह भेरी कन्थासी बन गई। इससे उसका वह गंभीर नाद नहीं होता और रोग भी शान्त नहीं होते। लोगोंमें धक्के हुए रोगोंको जानकर व भेरीका पहले जैसा शब्द नहीं सुनकर श्रीकृष्णने उसका निरीक्षण किया तब पता चला कि भेरी तो छिन्नभिन्न कन्थासम होगई है, तब आवाज कहाँसे आवे? इससे रुष्ट होकर श्रीकृष्णने पहले रक्षकको हटाकर उसके बदलेमें दूसरेको नियुक्त किया तथा अष्टम तपकी आराधनासे नवीन भेरी प्राप्त की। जैसे वह भेरीरक्षक भेरीका रक्षित करनेमें हटा दिया गया और छिन्नभिन्न कन्था बनकर भेरी भी प्रभावशून्य बनगई वैसे जो शिष्य जिनवाणीको खण्डितकर व थोडे वाक्य मिलाकर कन्था बनाता है, वह भी शास्त्रश्रवणमें अयोग्य होनेसे आचार्यके

द्वारा हटा दिया जाता है, प्रतिपक्षमें-जैसे दूसरे भेरीरक्षकने अच्छीतरह भेरीका रक्षण किया, जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसका बहुत सन्मान बढाया व वंशपरम्परातक खा सके, ऐसी जीविका चालू करदी। ऐसे जो शिष्य जिनवाणीका रक्षण करते हैं, वे आचार्यसे सन्मान पाकर जन्मान्तरमें भी सुखके भागी बनते हैं।

१४ आभीरी-आभीरी-जैसे एक आभीरी अपने पतिके साथ नगरमें घी बेचनेको गई। गांवके अन्य आभीर भी अपनी २ गाडी लेकर घी बेचने और कुछ सामान लेनेको साथ आये थे। नगरके बाजारमे आकर आभीरने गाडीपरसे घडे उतारने शुरू किये और आभीरी नीचे लेने लगी, दोनोंकी असावधानीसे एकाएक एक घडा गिरगया, जिससे कुछ घी जमीनपर गिर पडा, इसपर दोनों झगडने लगे, आभीर बोला कि तूने अच्छीतरह घडा नहीं पकडा छोडदिया, आभीरी बोलने लगी कि मैं तो पकडनेपरही थी कि तुमने छोडदिया इसीसे गिरगया। इसतरह दोनों वादविवाद करते रहे, तबतक गिरे हुए घडेका घी कुत्ते चट करगये और दूसरे २ आभीर घी बेचकर अपने २ गांव चले आये। आखिर शामको उन दोनोंने भी बचे हुए घीको बेचा तथा रात हो जानेपर घरकी ओर चले, रास्तेमे चोरोंने घेरलियाऔर साथके पैसे लूट। लिये इसप्रकार घी भी गया और पैसे भी खोये, प्रतिपक्षमें-दूसरी आभीरी जब नगरमे घी बेचनेको पतिके साथ गई तथा असावधानीसे घी गिरगया तो बोली-पतिदेव! तुम्हारा कोई दोष नहीं, मैंने अच्छीतरह घडा नहीं पकडा, इससे गिरगया अतः क्षमा करो, इसप्रकार शान्तभावसे पतिको संतुष्ट कर शीघ्रही गिरे हुए घीको व साथ साथ घडेको सम्हालने लगी और उष्ण पानीसे बालूको तपाकर बहुत कुछ घी भी निकाल लिया तथा बेचकर सबके साथ गांव भी चली गई। इसीप्रकार जो शिष्य सूत्रार्थको अच्छीतरह ग्रहण किये बिना आचार्यके कहनेपर कलह करने लगता है वह भी श्रुतज्ञानरूप घीको खो बैठता है अतएव अयोग्य है। विपरीत-जो सूत्रार्थके ग्रहणमें चूक हो जानेपर आचार्यसे प्रेरणा पाया हुआ अपनी चूक स्वीकार करके क्षमा चाहलेता है, वह आचार्यको सन्तुष्ट कर सूत्रार्थके लाभको प्राप्त करता है इससे वह योग्य कहा जाता है।

"श्रोताओंके समूहको सभा कहते हैं, यह सभा कितनी प्रकारकी है? इसको दिखाते हैं--

मूल—सा समासओ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा-जाणिया, अजाणिया, दुव्वियड्ढा। जाणिया जहा—

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टन्ति इह गुरुगुणसमिद्धा।
दोसे अ विवज्जंती, तं जाणसु जाणियं परिसं ॥ ५२ ॥

अजाणिया जहा—

जा होइ पगइमहुरा, मियछावय-सीह- कुक्कुडयभूआ ।
रयणमिव असंठविआ, अजाणिया सा भवे परिसा ॥ ५३ ॥
दुव्विअड्ढा जहा-
न य कत्थइ निम्माओ, न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं ।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुट्टइ गामिल्लय विअड्ढो ॥ ५४ ॥

छाया-सा समासतस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-ज्ञायिका, अज्ञायिका, दुर्विदग्धा । ज्ञायिका [नाम] यथा-
क्षीरमिव यथा हंसा , ये घुट्टन्ति-इह गुरुगुणसमृद्धा[1] ।
दोषांश्च विवर्जयन्ती, तां जानीहि ज्ञायिकां(का) परिषदम्(द्) ॥५२॥
अज्ञायिका यथा-"
या भवति प्रकृतिमधुरा, मृगसिंहकुर्कुटशावकभूता ।
रत्नमिवाऽसंस्थापिता, अज्ञायिका सा भवेत पर्षद् ॥ ५३ ॥
दुर्विदग्धा यथा-
न च कुत्राऽपि निर्मातः, न च पृच्छति परिभवस्य दोषेण ।
वस्तिरिव वातपूर्णः, स्फुटति ग्रामेयको विदग्धः ॥ ५४ ॥

टीका—यह पर्षद्-सभा संक्षेपमें तीन प्रकारकी है, जैसे-ज्ञायिका अज्ञायिका व दुर्विदग्धा । (१) ज्ञायिका-विज्ञसभा, जैसे-उत्तम हंस पानीको छोड़कर जैसे दूधका पान करते हैं वैसे जो गुणसम्पन्न पुरुष गुणोंको ग्रहण करते और दोषोंको छोड़ते हैं उनको यहाँ पर्षद्के प्रकरणमें ज्ञायिका पर्षद् समझो । (२) अज्ञायिका जैसे-जो श्रोता मृग सिंह और कुर्कुटके बच्चोंके समान प्रकृतिसे भोले-कोमल होते हैं अर्थात् मृग आदिके बच्चोंको जिसप्रकार भद्र या क्रूर जैसा बनाना चाहें इच्छानुसार बना सकते हैं तथा असंस्थापित रत्न जिस-प्रकार जहाँ चाहे बिठा सकते हैं उसीप्रकार जो किसी भी मार्गमें लगाई जा सके वह अज्ञायिका सभा है । स्पष्टीकरण-जो कुमार्गमें नहीं गये और सन्मार्ग के तत्त्वसे भी अनभिज्ञ-अनजान हैं ऐसे श्रोताओंको विना कष्टके समझाया जा सकता है । (३) दुर्विदग्धा सभा जैसे-कोई ग्रामीण पंडित किसी भी विषयमें या शास्त्रमें निपुण नहीं रहता और न अनादरके खयालसे किसी विद्वान्कोही कुछ पूछता है किन्तु केवल वायुसे पूरित मशकके समान लोगोंसे अपने पण्डितपनके प्रवादको सुनकर मानो पेट फूटपड़ा हो इसतरह जो फूला हुआ रहता है, ऐसे लोगोंके समूहको दुर्विदग्धा सभा कहते हैं । इति ।

---

१ वस्तिर्भस्त्रायोग्यम् ।

सूत्रम्-[से किं तं नाणं ?] नाणं पंचविहं पन्नत्तं, तंजहा-आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मण-पज्जवनाणं, केवलनाणं ॥ सू. १ ॥

छाया-[अथ किं तज्ज्ञानं ?] ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-१ आभिनिबोधिकज्ञानं, २ श्रुतज्ञानं, ३ अवधिज्ञानं, ४ मनःपर्य्यवज्ञानं, ५ केवलज्ञानम् ॥ सू १ ॥

टीका--[शिष्य-भगवन् ! वह ज्ञान कौनसा है ?] ज्ञान पांच प्रकारका है, जैसे--१ आभिनिवोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनःपर्य्यज्ञान, और ५ केवलज्ञान ॥ सू १ ॥

मूल--तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-पच्चक्खं च परोक्खं च ॥ सू. २ ॥

छाया-तत्समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च ॥सू. २॥

टीका--इसप्रकार पांच भेदवाला भी वह ज्ञान संक्षेपमें दो प्रकारका है, जैसे-१ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष ॥ सू २ ॥

मूल--से किं तं पच्चक्खं ? पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-इंदियपच्चक्खं, नोइंदियपच्चक्खं च ॥ सू ३ ॥

छाया-अथ किं तत्प्रत्यक्षं ? प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-इन्द्रियप्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षञ्च ॥ सू ३ ॥

टीका--शि०-उस प्रत्यक्षका क्या स्वरूप है ? ,उ.-प्रत्यक्षके दो भेद हैं, जैसे-इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ॥ सू ३ ॥

मूल--से किं तं इंदियपच्चक्खं ? इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा-१ सोइंदियपच्चक्खं, २ चाक्खिंदियपच्चक्खं, ३ घाणिंदियपच्चक्खं, ४ जिब्भिंदियपच्चक्खं, ५ फासिंदियपच्चक्खं, से त्तं इंदियपच्चक्खं ॥ सू. ४ ॥

छाया-अथ किं तदिन्द्रियप्रत्यक्षम् ? इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-(१) श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं, (२) चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षं, (३) घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्षं, (४) जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्षं, (५) स्पर्शेन्द्रियप्रत्यक्षं, तदेतद् इन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥ सू ४ ॥

टीका—शि०-वह इन्द्रियप्रत्यक्ष कितने प्रकारका है? उ०-इन्द्रियप्रत्यक्ष पांच प्रकारका है, जैसे—श्रुत-इन्द्रिय-कानोंसे होनेवाला ज्ञान-श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष (१), आंखसे होनेवाला ज्ञान-चक्षुरिन्द्रिय-प्रत्यक्ष (२), नाकसे होनेवाला ज्ञान-घ्राणेन्द्रिय-प्रत्यक्ष (३), जीभसे होनेवाला ज्ञान-जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष (४), स्पर्शसे होनेवाला ज्ञान-स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष (५), इसप्रकार यह इन्द्रियप्रत्यक्ष हुआ ॥ सू० ४ ॥

मूल—से किं तं नोइन्दियपच्चक्खं? नोइंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं, तंजहा—ओहिनाणपच्चक्खं (१), मणपज्जवनाणपच्चक्खं (२), केवलनाणपच्चक्खं (३) ॥ सू. ५ ॥

छाया—अथ किं तन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं? नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अवधिज्ञानप्रत्यक्षं (१), मनःपर्य्यवज्ञानप्रत्यक्षं (२), केवलज्ञानप्रत्यक्षम् (३) ॥ सू. ५ ॥

टीका—शि०-नोइन्द्रियप्रत्यक्ष किसको कहते हैं? उ०—नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष [बिना किसी इन्द्रिय व मनरूप बाह्य करणकी सहायताके साक्षात् आत्मासे होनेवाला ज्ञान] तीन प्रकारका है, जैसे-अवधिज्ञानप्रत्यक्ष (१) मनःपर्य्यवज्ञानप्रत्यक्ष (२) केवलज्ञानप्रत्यक्ष (३) ॥ सू० ५ ॥

मूल—से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं? ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—भवपच्चइयं च खाओवसमियं च ॥ सू. ६ ॥

छाया—अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्? अवधिज्ञानप्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—भवप्रत्ययिकञ्च क्षायोपशमिकञ्च ॥ सू. ६ ॥

टीका—शि०-वह अवधिज्ञानप्रत्यक्ष किसप्रकार है? उ०-अवधिज्ञान-प्रत्यक्ष दो प्रकारका है, जैसे-भवप्रत्ययिक (१), और क्षायोपशमिक (२) ॥ सू० ६ ॥

मूल—से किं तं भवपच्चइयं? भवपच्चइयं दुण्हं, तंजहा—देवाण य, नेरइयाण य ॥ सू. ७ ॥

छाया—अथ किं तद् भवप्रत्ययिकं? भवप्रत्ययिकं द्वयोः, तद्यथा—देवानाञ्च नैरयिकाणाञ्च ॥ सू. ७ ॥

टीका—शि०—वह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कौनसा है? उ०-भव-प्रत्ययिक-जन्मसे होनेवाला-अवधिज्ञान दोको होता है, जैसे-देवोंका और नारक जीवोंका अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक है ॥ सू. ७ ॥

मूल—से किं तं खाओवसमियं? खाओवसमियं दुण्हं, तंजहा–मणुस्साण य पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाण य। को हेऊ खाओवसमियं? खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू. ८ ॥

छाया–अथ किं तत् क्षायोपशमिकं? क्षायोपशमिकं द्वयोः, तद्यथा–मनुष्याणाञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानाञ्च, को हेतुः क्षायोपशमिकं? क्षायोपशमिकं तदावरणीयानां कर्मणाम्–उदीर्णानां क्षयेण, अनुदीर्णानामुपशमेन, अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू. ८ ॥

टीका—शि०–वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान किसप्रकार होता है? उ०–क्षायोपशमिक अवधि दोको, जैसे–मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यंचोंको होता है। शि०–क्षायोपशमिक अवधिज्ञान इस नाममें क्या हेतु है? उ०–अवधिज्ञानके जो आवरक (आवरण करनेवाले) कर्म हैं उनमें उदयावलिका प्राप्तको क्षय करने, और जो उदयमे नहीं आये हैं उनका उपशमन करनेसे जो अवधिज्ञान उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते हैं ॥ सू. ८ ॥

मूल—अहवा गुणपडिवन्नस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ, तं समासओ छव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–आणुगामियं १, अणाणुगामियं २, वड्ढमाणयं ३, हीयमाणयं ४, पडिवाइयं ५, अप्पडिवाइयं ६ ॥ सू. ९ ॥

छाया–अथवा गुणप्रतिपन्नस्याऽनगारस्याऽवधिज्ञानं समुत्पद्यते, तत्समासतः षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आनुगामिकं १, अनानुगामिकं २, वर्द्धमानकं ३, हीयमानकं ४, प्रतिपातिकं ५, अप्रतिपातिकम् ६ ॥ सू. ९ ॥

टीका—अथवा ज्ञानदर्शनचारित्रके गुणसम्पन्न अनगार–मुनिको जो अवधिज्ञान प्रकट होता है यह भी क्षायोपशमिक है, वह संक्षेपमें ६ प्रकारका है, जैसे–आनुगामिक (१), अनानुगामिक (२), वर्द्धमान (३), हीयमान (४), प्रतिपाति (५), अप्रतिपाति (६) ॥ सू. ९ ॥

आनुगामिक आदिका क्रमश विवरण करते हैं–

मूल—से किं तं आणुगामियं ओहिनाणं? आणुगामियं ओहिनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–अंतगयं च मज्झगयं च। से किं तं अंत-

गयं ? अंतगयं तिविहं पण्णत्तं, तंजहा—पुरओ अंतगयं (१), मग्गओ अंतगयं (२), पासओ अंतगयं (३)।

से किं तं पुरओ अंतगयं ? पुरओ अंतगयं—से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, पुरओ काउं पणुल्लेमाणे २ गच्छेज्जा, से त्तं पुरओ अंतगयं।

से किं तं मग्गओ अंतगयं ? मग्गओ अंतगयं, से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे २ गच्छिज्जा से त्तं मग्गओ अंतगयं।

से किं तं पासओ अंतगयं ? पासओ अंतगयं, से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, पासओ काउं परिकड्ढेमाणे २ गच्छिज्जा से त्तं पासओ अंतगयं, से त्तं अंतगयं।

छाया—अथ किं तद्—आनुगामिकमवधिज्ञानम् ? आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अन्तगतञ्च मध्यगतञ्च। अथ किं तदन्तगतम् ? अन्तगतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—पुरतोऽन्तगतं (१), मार्गतोऽन्तगतं (२), पार्श्वतोऽन्तगतम् (३)। अथ किं तत् पुरतोऽन्तगतं ? पुरतोऽन्तगतं—स यथानामकः कश्चित् पुरुषः—उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पुरतः कृत्वा प्रणुदन् २ गच्छेत्, तदेतत् पुरतोऽन्तगतम्।

अथ किं तन्मार्गतोऽन्तगतं ? मार्गतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मार्गतः कृत्वाऽनुकर्षन् २ गच्छेत्, तदेतन्मार्गतोऽन्तगतम्।

१ मार्गत —पृष्ठतः—पश्चात्। २ अलात—दीपिका । ३ चटुली—पर्यन्तज्वलित-तृणपूलिका। ४ प्रणुदन्—प्रेरयन्—कर्षन्।

अथ किं तत्पार्श्वतोऽन्तगतं ? पार्श्वतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुष उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन् २ गच्छेत्, तदेतत्पार्श्वतोऽन्तगतं, तदेतदन्तगतम् ।

टीका-शि०-गुरुवर! वह आनुगामिक अवधिज्ञान कौनसा है? उ०-आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकारका है, जैसे-अंतगत और मध्यगत, वह अंतगत अवधि किसप्रकार है? उ०-अंतगत अवधिज्ञान तीन प्रकारका कहा गया है, जैसे-पुरतोऽन्तगत (१), मार्गतोऽन्तगत (२), पार्श्वतोऽन्तगत (३)।

अब वह पुरतोऽन्तगत अवधि कैसा है? उ.-जैसे कोई पुरुष दीपिका या चटुली वा तृणाग्रवर्त्ती अग्नि या मणि वा प्रदीप तथा ऐसेही बिजली, बॅटरी आदि किसी तरहकी अग्निको आगे करके बढाता हुआ चला जाता है, [उसके अग्रगामी प्रकाशकी तरह जो ज्ञान आगेके प्रदेशको प्रकाशित करते हुए साथ चलता है] उसे पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान कहते हैं।

वह मार्गतोऽन्तगत अवधि किसप्रकार है? उ०-मार्गतोऽन्तगत, जैसे-कोई पुरुष उल्का-दीपिका, चटुली, अलातक वा मणि या प्रदीप तथा अन्य इसी प्रकारकी अग्निकी ज्योतिको पीछे करके खींचता हुआ जाता है [ऐसेही जो आत्मा पीछेके क्षेत्रको अवधिज्ञानसे प्रकाशित करता-जानता हुआ जाता है] उसका वह पृष्ठगामी-पीछे चलनेवाला अवधिज्ञान मार्गतोऽन्तगत कहाता है।

वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान कौनसा है? उ०-पार्श्वतोऽन्तगत, जैसे-कोई पुरुष दीपिका, चटुली, अलातक वा मणि या प्रदीप आदि पूर्वोक्त प्रकाशकारी पदार्थोंको अपने बगलमें करके साथ ले चलता हुआ बाजूके प्रदेशको प्रकाशित करते जाता है, [ऐसेही जिसका अवधिज्ञान बाजूके पदार्थोंका ज्ञान कराते हुए साथ चलता है] वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान है, इसप्रकार यह अन्तगत अवधिका वर्णन हुआ।

मूल—से किं तं मज्झगयं ? मज्झगयं से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मत्थए काउं समुव्वहमाणे २ गच्छिज्जा, से त्तं मज्झगयं।

छाया-अथ किं तन्मध्यगतं ? मध्यगतं, स यथानामकः काश्चित्पुरुषः-उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मस्तके कृत्वा समुद्वहन् २ गच्छेत्, तदेतन्मध्यगतम्।

टीका—शि०-मध्यगत अवधि किसको कहते हैं? उ०-मध्यगत अवधि-जिसप्रकार कोई पुरुष उल्का, चटुली, अलातक वा मणि व प्रदीप आदि पूर्वोक्त

प्रकाशकारी द्रव्योंको मस्तकपर रखके उठाता हुआ जाता है, [इसप्रकार चारों ओरके पदार्थोंका ज्ञान कराते हुए जो ज्ञान ज्ञाताके साथ चलता है] उसको मध्यगत अवधिज्ञान कहते हैं।

मूल—अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो? [गोयमा!] पुरओ अंतगएणं ओहिनाणेणं पुरओ चेव संखिज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं ओहिनाणेणं मग्गओ चेव संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, पासओ अंतगएणं ओहिनाणेणं पासओ चेव संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मज्झगएणं ओहिनाणेणं सव्वओ समंता संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, से त्तं आणुगामियं ओहिनाणं ॥ सू. १० ॥

छाया—अन्तगतस्य मध्यगतस्य च कः प्रतिविशेषः? [गौतम!] पुरतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पुरतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, मार्गतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन मार्गतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, पार्श्वतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पार्श्वतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, मध्यगतेनाऽवधिज्ञानेन सर्वतः समन्तात् संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, तदेतदानुगामिकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १० ॥

टीका—अन्तगत और मध्यगत अवधिमें क्या विशेषता है? उ०—पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे ज्ञाता संख्यात तथा असंख्यात योजन आगेके पदार्थोंको ही जानता व देखता है, मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे संख्यात या असंख्यात योजन पीछेके द्रव्योंकोही आत्मा जानता व देखता है, ऐसे पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे दोनों बाजूमें रहे हुए पदार्थोंकोही संख्यात वा असंख्यात योजनतक जानता व देखता है, किन्तु मध्यगत अवधिज्ञानसे तो सभी ओरके संख्यात व असंख्यात योजनमध्यवर्ती पदार्थोंको आत्मा जानता व देखता है, [यही दोनोंकी विशेषता है] यह आनुगामिक—आत्मविशेषसे साथ चलनेवाला अवधिज्ञान हुआ ॥ सू. १० ॥

मूल—से किं तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं ? अणाणुगामिअं ओहिनाणं-से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं परिपेरंतेहिं, परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे तमेव जोइट्ठाणं पासइ, अन्नत्थगए न जाणइ न पासइ, एवामेव [अज्जो !] अणाणुगामिअं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अन्नत्थगए ण पासइ, से त्तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं ॥ सू. ११ ॥

छाया—अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ? अनानुगामिकमवधिज्ञानं, स यथानामकः कश्चित्पुरुष एकं महत्–ज्योतिःस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य परिपर्यन्तेषु२ परिघूर्णन्[1]२ तदेव ज्योतिःस्थानं पश्यति, अन्यत्र गतान् न जानाति न पश्यति, एवमेवाऽनानुगामिकमवधिज्ञानं—यत्रैव समुत्पद्यते तत्रैव संख्येयानि वा असंख्येयानि वा सम्बद्धानि वाऽसम्बद्धानि वा योजनानि जानाति पश्यति, अन्यत्र गतान्न पश्यति, तदेतदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ॥ सू ११ ॥

टीका—शि०-वह अनानुगामिक अवधिज्ञान किसप्रकार है ? उ०-अनानुगामिक अवधिज्ञान, जैसे-कोई पुरुष एक बडे अग्निस्थानमें अग्निको प्रदीप्त करके उस अग्निस्थानकेही आजूबाजू घूमता हुआ उसी अग्निस्थानको देखता है, दूसरी जगह रहे हुए पदार्थोंको अन्धकारके कारण वहाँ जाकर भी नहीं जानता व नहीं देखता है, इसीप्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमे उत्पन्न होता है, उसी क्षेत्रमें संख्यात या असंख्यात योजनतक संबद्ध वा परस्पर सम्बन्धरहित (असम्बद्ध) पदार्थोंको जानता व देखता है, उससे बाहरके पदार्थोंको [नहीं जानता व] नहीं देखता है, इसप्रकार यह अनानुगामिक अवधिज्ञान हुआ ॥ ११ ॥

वर्धमान अवधिज्ञान—

मूल—से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ? वड्ढमाणयं ओहिनाणं पसत्थेसु अज्झवसायट्ठाणेसु वट्टमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ,

---

१ परिघूर्णन्–परिभ्रमन्–इत्यर्थ ।

गाहा—५५ जावइआ तिसमया—हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स ।
ओगाहणा जहन्ना, ओहीखित्तं जहन्नं तु ॥ १ ॥

५६ सव्व-बहु—अगणिजीवा, निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु ।
खित्तं सव्वदिसागं, परमोही खित्तनिद्दिट्ठो ॥ २ ॥

५७ अंगुलमावलियाणं, भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा ।
अंगुलमावलिअंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ ३ ॥

५८ हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाउअम्मि बोद्धव्वो ।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ ॥ ४ ॥

५९ भरहम्मि अद्धमासो, जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो ।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्तं च रुयगम्मि ॥ ५ ॥

६० संखिज्जम्मि उ काले, दीवसमुद्दा वि हुंति संखिज्जा ।
कालम्मि असंखिज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥ ६ ॥

६१ काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइअव्वु खित्तवुड्ढीए ।
वुड्ढीए दव्वपज्जव, भइयव्वा खित्तकाला उ ॥ ७ ॥

६२ सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं ।
अंगुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणिओ असंखिज्जा ॥ ८ ॥

से त्त वड्ढमाणयं ओहिनाणं ॥ सू. १२ ॥

छाया—अथ किं तद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ? वर्धमानकमवधिज्ञानं प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्द्धमानचारित्रस्य विशुद्ध्यमानस्य विशुद्ध्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते,

गाथा—५५ यावती त्रिसमया,—ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य ।
अवगाहना जघन्या, अवधिक्षेत्रं जघन्यं तु ॥ १ ॥

५६ सर्वबह्वग्निजीवाः, निरन्तरं यावद् भृतवन्तः ।
क्षेत्रं सर्वदिक्कं, परमावधिः क्षेत्रनिर्दिष्टः ॥ २ ॥

५७ अङ्गुलमावलिकायोः, भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयम् ।
अङ्गुलमावलिकान्तः, आवलिकामङ्गुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥

५८ हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गव्यूते[1] बोद्धव्यः ।
योजनदिवसपृथक्त्वं, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥

५९ भरतेऽर्द्धमासो, जम्बुद्वीपे साधिको मासः ।
वर्षञ्च मनुष्यलोके, वर्षपृथक्त्वञ्च रुचके ॥ ५ ॥

६० संख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः ॥
कालेऽसंख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥

६१ काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्धया (द्धौ) ।
वृद्ध्या(द्धौ) द्रव्यपर्याययोः, भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥

६२ सूक्ष्मश्च भवति कालः, ततः सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम् ।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे, अवसर्पिण्योऽसंख्येयाः ॥ ८ ॥

तदेतद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १२ ॥

टीका—शि०-वर्द्धमान अवधिज्ञानका वह स्वरूप किस प्रकार है? उ०-जो पवित्र-उत्तम विचारोंमें वर्तमान व वर्द्धमान चारित्रवाला है तथा परिणामोंकी विशुद्धिसे जिसका चरित्र विशुद्ध हो रहा है याने जो आत्मविकाशके मार्गमें प्रगति कररहा है, उसके ज्ञानकी चारों ओरसे सीमा बढती है, इसीको वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

गाथार्थ-अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र-जितनी तीन समयके आहारक सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना होती है, उतना जघन्य-सबसे थोडा अवधिज्ञानका क्षेत्र है ॥ १ ॥

अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र दिखाते हैं—जैसे-सर्वबहु अग्निजीवोंने जितना क्षेत्र निरंतर भरा है याने सूक्ष्मबादररूप सर्वबहु-सबसे अधिक अग्निकायिक जीवोंसे विना अन्तरके चारों दिशाका जितना क्षेत्र भरा है, उतना सब दिशामे परमावधिज्ञानका क्षेत्र है, याने इतने क्षेत्रमें रहे हुए रूपी द्रव्यमात्रको परमावधिज्ञानसे जानता है ॥ २ ॥

अवधिज्ञानका मध्यम क्षेत्र कहते हैं—अंगुल-प्रमाणांगुल या उच्छेदांगुल, और आवलिकाके असंख्यातवें भागको [क्षेत्र तथा कालकी दृष्टिसे अवधिज्ञानी इतने क्षेत्रको] जानता है, तथा दोनोंमें याने आवलिका और अंगुलमें

१ जैनागमप्रसिद्ध गाउयशब्दस्य पर्यायो गव्यूतशब्द' कोशार्थेऽस्ति ।

गाहा–५५ जावइआ तिसमया–हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स ।
ओगाहणा जहन्ना, ओहीखित्तं जहन्नं तु ॥ १ ॥

५६ सव्व–बहु–अगणिजीवा, निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु ।
खित्तं सव्वदिसागं, परमोही खित्तनिद्दिट्ठो ॥ २ ॥

५७ अंगुलमावलियाणं, भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा ।
अंगुलमावलिअंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ ३ ॥

५८ हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाउअम्मि बोद्धव्वो ।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ ॥ ४ ॥

५९ भरहम्मि अद्धमासो, जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो ।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्तं च रुयगम्मि ॥ ५ ॥

६० संखिज्जम्मि उ काले, दीवसमुद्दा वि हुंति संखिज्जा ।
कालम्मि असंखिज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥ ६ ॥

६१ काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइअव्वु खित्तवुड्ढीए ।
वुड्ढीए दव्वपज्जव, भइयव्वा खित्तकाला उ ॥ ७ ॥

६२ सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं ।
अंगुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणिओ असंखिज्जा ॥ ८ ॥

से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ॥ सू. १९ ॥

छाया–अथ किं तद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ? वर्धमानकमवधिज्ञानं प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्द्धमानचारित्रस्य विशुद्ध्यमानस्य विशुद्ध्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते,

गाथा–५५ यावती त्रिसमया,–ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य ।
अवगाहना जघन्या, अवधिक्षेत्रं जघन्यं तु ॥ १ ॥

५६ सर्वबह्वग्निजीवाः, निरन्तरं यावद् भृतवन्तः ।
क्षेत्रं सर्वदिक्कं, परमावधिः क्षेत्रनिर्दिष्टः ॥ २ ॥

५७ अङ्गुलमावलिकायोः, भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयम् ।
अङ्गुलमावलिकान्तः, आवलिकामङ्गुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥

५८ हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गव्यूते[1] बोद्धव्यः ।
योजनदिवसपृथक्त्वं, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥

५९ भरतेऽर्द्धमासो, जम्बुद्वीपे साधिको मासः ।
वर्षश्च मनुष्यलोके, वर्षपृथक्त्वश्च रुचके ॥ ५ ॥

६० संख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः ॥
कालेऽसंख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥

६१ काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्ध्या (द्धौ) ।
वृद्ध्या(द्धौ) द्रव्यपर्याययोः, भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥

६२ सूक्ष्मश्च भवति कालः, ततः सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम् ।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे, अवसर्पिण्योऽसंख्येयाः ॥ ८ ॥

तदेतद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू १२ ॥

टीका—शि०-वर्द्धमान अवधिज्ञानका वह स्वरूप किस प्रकार है? उ०-जो पवित्र-उत्तम विचारोंमें वर्तमान व वर्द्धमान चारित्रवाला है तथा परिणामोंकी विशुद्धिसे जिसका चरित्र विशुद्ध हो रहा है याने जो आत्मविकाशके मार्गमें प्रगति कररहा है, उसके ज्ञानकी चारों ओरसे सीमा बढती है, इसीको वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

गाथार्थ-अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र-जितनी तीन समयके आहारक सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना होती है, उतना जघन्य-सबसे थोडा अवधिज्ञानका क्षेत्र है ॥ १ ॥

अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र दिखाते हैं—जैसे-सर्वबहु अग्निजीवोंने जितना क्षेत्र निरंतर भरा है याने सूक्ष्मबादररूप सर्वबहु-सबसे अधिक अग्निकायिक जीवोंसे विना अन्तरके चारों दिशाका जितना क्षेत्र भरा है, उतना सब दिशामे परमावधिज्ञानका क्षेत्र है, याने इतने क्षेत्रमें रहे हुए रूपी द्रव्यमात्रको परमावधिज्ञानसे जानता है ॥ २ ॥

अवधिज्ञानका मध्यम क्षेत्र कहते है—अंगुल-प्रमाणांगुल या उच्छेदांगुल, और आवलिकाके असंख्यातवें भागको [क्षेत्र तथा कालकी दृष्टिसे अवधिज्ञानी इतने क्षेत्रको] जानता है, तथा दोनोंमे याने आवलिका और अंगुलमें

---

१ जैनागमप्रसिद्ध गाउयशब्दस्य पर्यायो गव्यूतशब्द' कोशाऽर्थेऽस्ति ।

संख्येय भाग देखता है अर्थात् अंगुलके संख्येय भागमात्र क्षेत्रको जानता हुआ आवलिकाके भी संख्येय भागतकही जानता है, अंगुलको देखता हुआ कुछ कम आवलिकातक जानता है, यदि कालसे आवलिकाप्रमाण कालको देखता है तो क्षेत्रसे अंगुलपृथक्त्व परिमित क्षेत्रमें देखता है ॥ ३ ॥

हस्तमात्र क्षेत्रके जाननेपर कालसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण देखता है, तथा कालसे कुछ कम एक दिवसको देखता हुआ क्षेत्रसे एक गव्यूतपर्यन्त अवधि ज्ञान होता है, ऐसेही योजनपर्यन्त क्षेत्र देखता हुआ कालसे दिवसपृथक्त्व देखता है, व कुछ कम पक्ष देखता हुआ क्षेत्रसे पचीस योजनतक देखता है ॥४॥

भरतक्षेत्रविषयक अवधिज्ञान होनेपर कालसे अर्धमासतक [भूतभवि ष्यको] अवधिज्ञानी देखता है, जम्बूद्वीपविषयक अवधिके होनेपर साधिक-कुछअधिक एकमास आगेपीछे देखता है, मनुष्यक्षेत्रपरिमित अवधिके होनेपर एक वर्षतक और रुचकद्वीपपरिमित क्षेत्रमें अवधिके होनेपर वर्षपृथक्त्व याने दोसे नव वर्षतक देखता है ॥ ५ ॥

संख्यातकाल याने हजार वर्षसे उपर अवधिके विषय होनेपर क्षेत्रसे संख्यातद्वीपसमुद्र भी अवधिके विषय होते हैं, और अवधिज्ञानके असंख्य कालिक होनेपर द्वीपसमुद्र भजनासे होते हैं अर्थात् संख्यात, असंख्यात वा किसीको द्वीपसमुद्रका एकदेशही अवधिज्ञानका विषय होता है।

[जब किसी मनुष्यको असंख्यकालविषयक अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, तब असंख्य द्वीपसमुद्र उसके ज्ञानके विषय होते हैं, और जब मनुष्यक्षेत्रसे बाहरके किसी समुद्र व द्वीपमें तिर्यंचको असंख्यकालका अवधिज्ञान होता है तब संख्यात द्वीपसमुद्र उसके ज्ञानविषय होते हैं। एवं स्वयम्भूरमण द्वीप वा समुद्रके किसी तिर्यंचको जब असंख्यकालविषयक अवधिज्ञान होता है, तब उसको उस द्वीप या समुद्रके एकदेशका ज्ञान होता है] ॥ ६ ॥

इसप्रकार क्षेत्र और कालकी परस्पर अपेक्षाको रखते हुए वर्द्धमान अव धिका वर्णन किया अब द्रव्य क्षेत्र, काल और भावमें किसकी वृद्धिसे किसकी वृद्धि होती है व किसकी नहीं होती इस विषयको कहते हैं—कालके बढनेपर चारोंकी वृद्धि होती है, क्षेत्रकी वृद्धिमें कालकी भजना समझनी चाहिए, याने कभी तो काल बढता है और कभी १ नहीं बढता है, इसप्रकार विकल्प सम झना चाहिए, द्रव्य और पर्यायकी वृद्धिमें क्षेत्र व काल विकल्पसे कहने चाहिए याने कदाचित् बढते कदाचित् नहीं बढते हैं [क्यों कि क्षेत्रसे भी द्रव्य अति सूक्ष्म है, एक आकाशप्रदेशमें अनन्त स्कन्ध रहते हैं और द्रव्यसे भी पर्याय अत्यन्त सूक्ष्म है] ॥ ७ ॥

कौन किससे सूक्ष्म है इस बातको दिखाते हैं—

---

१ दो से नवतककी संख्याको पृथक्त्व कहते हैं।

काल सूक्ष्म होता है और कालसे क्षेत्र सूक्ष्मतर याने अधिक सूक्ष्म होता है; एक प्रमाण अंगुलमात्र क्षेत्रकी श्रेणिमें श्रेणिरूपसे प्रत्येक क्षेत्रप्रदेशको समयकी गणनासे गिना जाय तो असंख्य अवसर्पिणी पूरी हो जाती हैं [एक प्रमाणांगुलमात्र श्रेणिके आकाशखण्डमे अवसर्पिणीके जितने समय है उतने प्रमाणमे असंख्य आकाश-प्रदेश होते हैं अर्थात् एकसौ उत्पलपत्रके भेदनमें प्रत्येक पत्रके पीछे असंख्य समय लगते हैं, अतः काल सूक्ष्म है; कालसे क्षेत्र असंख्यगुण अधिक सूक्ष्म है, क्षेत्रसे भी द्रव्य अनन्तगुण और द्रव्यसे भी अवधिज्ञान-विषयक पर्यायें संख्यातगुण या असंख्यगुण अधिक सूक्ष्म होती हैं]॥ ८ ॥

यह वर्द्धमान अवधिज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. ११ ॥

मूल—से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ? हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसायट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायइ, से त्तं हीयमाणयं ओहिनाणं ॥ सू. १२ ॥

छाया—अथ किं तद्धीयमानकमवधिज्ञानं ? हीयमानकमवधिज्ञानम्—अप्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्य वर्त्तमानचारित्रस्य संक्लिश्यमानस्य संक्लिश्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते, तदेतद्धीयमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १२ ॥

टीका—शि०—वह हीयमान अवधिज्ञान कौनसा है? उ०—अप्रशस्त-अशुभ विचारस्थानोंमे वर्त्तमान साधु जब संक्लिश्यमान अर्थात् अशुभ विचारोंसे शुभ परिणामके मलिन होनेपर संक्लिश्यमान चारित्रवाला होता है उस समय चारों ओरसे उसके ज्ञानकी अवधि हीन होती है, इसीको हीयमान अवधिज्ञान कहते है ॥ सू. १२ ॥

मूल—से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं ? पडिवाइ ओहिनाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं वा, संखिज्जइभागं वा, बालग्गं वा, बालग्गपुहुत्तं वा, लिक्खं वा, लिक्खपुहुत्तं वा, जूयं वा, जूयपुहुत्तं वा, जवं वा, जवपुहुत्तं वा, अंगुलं वा, अंगुलपुहुत्तं वा, पायं वा, पायपुहुत्तं वा, विहत्थिं वा, विहत्थिपुहुत्तं वा, रयणिं वा, रयणिपुहुत्तं वा, कुच्छिं वा, कुच्छिपुहुत्तं वा, धणुं वा, धणुपुहुत्तं वा, गाउयं वा, गाउयपुहुत्तं वा, जोयणं वा, जोयण-

पुहुत्तं वा, जोअणसयं वा, जोयणसयपुहुत्तं वा, जोयणसहस्सं वा, जोयणसहस्सपुहुत्तं वा, जोयणलक्खं वा, जोयणलक्खपुहुत्तं वा, [जोयणकोडिं वा, जोयणकोडिपुहुत्तं वा, जोयणकोडाकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिपुहुत्तं वा, जोअणसंखिज्जं वा, जोअणसंखिज्जपुहुत्तं वा, जोअणअसंखेज्जं वा, जोअणअसंखेज्जपुहुत्तं वा], उक्कोसेणं लोगं वा पासित्ताणं पडिवइज्जा, से त्तं पडिवाइ ओहिनाणं ॥ सू. १४ ॥

छाया—अथ किं तत्प्रतिपाति-अवधिज्ञानं ? प्रतिपाति-अवधिज्ञानं जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयभागं वा, संख्येयभागं वा, बालाग्रं वा, बालाग्रपृथक्त्वं वा, लिक्षां वा, लिक्षापृथक्त्वं वा, यूकां वा, यूकापृथक्त्वं वा, यवं वा, यवपृथक्त्वं वा, अङ्गुलं वाऽङ्गुलपृथक्त्वं वा, पादं वा, पादपृथक्त्वं वा, वितस्तिं वा, वितस्तिपृथक्त्वं वा, रत्निं वा, रत्निपृथक्त्वं वा, कुक्षिं वा, कुक्षिपृथक्त्वं वा, धनुर्वा धनुःपृथक्त्वं वा, गव्यूतं वा गव्यूतपृथक्त्वं वा, योजनं वा, योजनपृथक्त्वं वा, योजनशतं वा, योजनशतपृथक्त्वं वा, योजनसहस्रं वा, योजनसहस्रपृथक्त्वं वा, योजनलक्षं वा, योजनलक्षपृथक्त्वं वा, [योजनकोटिं वा, योजनकोटिपृथक्त्वं वा, योजनकोटीकोटिं वा, योजनकोटीकोटिपृथक्त्वं वा, योजनसंख्येयं वा, योजनसंख्येयपृथक्त्वं वा, योजनाऽसंख्येयं वा, योजनाऽसंख्येयपृथक्त्वं वा,] उत्कर्षेण लोकं वा दृष्ट्वा प्रतिपतेत्, तदेतत्प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू. १४ ॥

टीका—शि०—वह प्रतिपाति अवधिज्ञान किसप्रकार है ? उ०—जघन्य अंगुलका असंख्यभाग या संख्यातभाग बालाग्र या बालाग्रपृथक्त्व, लीख अथवा लीखपृथक्त्व यूका (जू) या यूकापृथक्त्व, जव या जवपृथक्त्व, अंगुल अथवा अंगुलपृथक्त्व पाँव अथवा २ से ९ पाँव परिमित क्षेत्र, वितस्ति (बेंत) या वितस्ति-पृथक्त्व रत्नि (हाथ) या हस्तपृथक्त्व, कुक्षि—दो हाथ या कुक्षिपृथक्त्व धनुष या धनुषपृथक्त्व, कोस या कोसपृथक्त्व, योजन या योजनपृथक्त्व शतयोजन या शतयोजनपृथक्त्व, योजनसहस्र या योजनसहस्रपृथक्त्व,

१ कोष्ठकमें दिये गये पाठ अर्थ भावसे सन्दर्भमें रहते हैं।

योजनलक्ष वा योजनलक्षपृथक्त्व, यावत् संख्यात, असंख्यात वा उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोकको देखकर जो फिर गिरजाता है वह प्रतिपाति अवधिज्ञान है ॥ सू. १४ ॥

मूल—से किं तं अपडिवाइ ओहिनाण? अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं, से त्तं अपडिवाइ ओहिनाणं ॥ सू १५ ॥

छाया—अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानम्? अप्रतिपात्यवधिज्ञानं येनाऽलोकस्यैकमप्याकाशप्रदेशं जानाति पश्यति तेन परमप्रतिपात्यवधिज्ञानं, तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू. १५ ॥

टीका—वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान कौनसा है? उ०—अप्रतिपाति अवधिज्ञान-जिस अवधिज्ञानसे आत्मा अलोकके एक भी आकाश-प्रदेशको जानता व देखता है, उसके बाद वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है। यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान पूर्ण हुआ ॥ सू १५ ॥

मूल—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ। खित्तओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ। कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवलिआए असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ। भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ ॥सू. १६॥

छाया—तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः (नु) अवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति, उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति। क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाङ्गुलस्याऽसंख्येय-

मागं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसंख्येयान्यलोके लोकप्रमाण-मात्राणि खण्डानि जानाति पश्यति। कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाऽऽवलिकाया असंख्येयभागं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसंख्येया उत्सर्पिणीरवसर्पिणी—अतीतमनागतञ्च कालं जानाति पश्यति। भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाऽनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽपि—अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति ॥ सू० १६ ॥

टीका—पूर्वोक्त वह अवधिज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहागया है, जैसे-द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४), उन चार भेदोंमें द्रव्यसे अवधिज्ञानी जघन्य-कमसेकम अनन्त रूपी द्रव्योंको जानता व देखता है और उत्कृष्ट सभी रूपी द्रव्योंको जानता व देखता है। क्षेत्रसे अवधिज्ञानी जघन्य अंगुलके असंख्यातभागमात्र क्षेत्रको जानता देखता है, उत्कृष्टसे लोकजितने प्रमाणके असंख्यखंडोंको अलोकमें जानता और देखता है। कालसे अवधिज्ञानी जघन्य आवलिकाके असंख्यभागमात्र कालकी बात जानता देखता है, उत्कृष्ट असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप अतीत अनागत [भूत-भविष्य] कालको जानता व देखता है, भावसे अवधिज्ञानी जघन्य अनन्तभावोंको जानता देखता है और उत्कृष्टसे भी अनन्तभावों [पर्याय आदि] को जानता व देखता है, सब भावोंके अनन्तवें भागको जानता देखता है ॥ सू० १६ ॥

मूल—गाथा—६३

ओही भवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वण्णिओ दुविहो।
तस्स य बहूविगप्पा, दव्वे खित्ते अ काले य ॥ १ ॥

६४ नेरइयदेवतित्थकरा य, ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥ २ ॥
से त्तं ओहिणाणपच्चक्खं।

छाया—गाथा—६३

अवधिर्भवप्रत्ययिको,—गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितो द्विविधः।
तस्य च बहुविकल्पा, द्रव्ये क्षेत्रे च काले च ॥ १ ॥

६४ नैरयिकदेवतीर्थंकराश्च, अवधेरबाह्या भवन्ति,
पश्यन्ति सर्वतः खलु, शेषा देशेन पश्यन्ति ॥ २ ॥
तदेतदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्।

टीका—पूर्वोक्त वर्णनका संग्रहगाथासे उपसंहार कहते हैं—भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक इसप्रकार अवधिज्ञान दो प्रकारका वर्णन किया गया है, द्रव्य क्षेत्र और कालके सम्बन्धसे उसके बहुत विकल्प होते हैं ॥ १ ॥ नैरयिक जीव देव और तीर्थकर अवधिज्ञानके अबाह्य होते हैं अर्थात् इनको नियमसे अवधिज्ञान होता है और ये निश्चय सभी ओरसे देखते हैं, शेष जीव एकदेशसे देखते हैं ॥ २ ॥ इसप्रकार यह अवधिज्ञान-प्रत्यक्षका वर्णन हुआ ।

मूल—से किं तं मणपज्जवनाणं ? मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ? गोयमा ! मणुस्साणं नो अमणुस्साणं ।

छाया—अथ किं तन्मनःपर्य्यवज्ञानं ? मनःपर्य्यवज्ञानं नु भदन्त ! किं मनुष्याणामुत्पद्यते, अमनुष्याणां [वा]? गौतम ! मनुष्याणां नो अमनुष्याणाम् ।

टीका—शि०—गुरुजी ! वह मनःपर्यवज्ञान कौनसा है ? मनःपर्य्यवज्ञान क्या मनुष्योंको उत्पन्न होता है या अमनुष्योंको याने मनुष्यभिन्न देव नारक तिर्यञ्चोंको ? उ०—गौतम ! यह ज्ञान मनुष्योंकोही होता है, अमनुष्योंको नहीं ।

मूल—जइ मणुस्साणं किं संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, गोयमा ! नो संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतियमणुस्साणं उप्पज्जइ ।

छाया—यदि मनुष्याणां किं सम्मूर्च्छिममनुष्याणां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां [वा] उत्पद्यते ? गौतम ! नो सम्मूर्च्छिममनुष्याणां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते ।

टीका—यदि मनुष्योंको उत्पन्न होता है तो क्या सम्मूर्छिम मनुष्योंको उत्पन्न होता है या गर्भज मनुष्योंको ? गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्योंको नहीं किन्तु गर्भज मनुष्योंकोही उत्पन्न होता है ।

मूल—जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अंतर-

---

१ गर्भसे उत्पन्न १०१ क्षेत्रके मनुष्योंके मलमूत्र आदि १४ स्थानोंमें सम्मूर्छनरूपसे पैदा होनेवाले मनुष्योंको सम्मूर्छिम-मनुष्य कहते हैं, इनका शरीर अंगुलके असंख्य भागका होता है और अंतर्मुहूर्तके बहुत थोडे समयमें ये मर जाते हैं । देखें । टिप्पण ।

द्दीवग-गब्भवक्कंतियमणुस्साण ?, गोयमा ! कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, नो अंतरद्दीवग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां किं कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणाम्, अकर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अन्तर्द्वीपज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, गौतम ! कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अकर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अन्तर्द्वीपज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है तो क्या कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको या अकर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको अथवा अन्तरद्वीपके गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है ? गौतम ! कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है किन्तु अकर्मभूमि या अंतरद्वीपके गर्भज मनुष्योंको यह मनःपर्यवज्ञान नहीं होता है ।

मूल—जइ कम्मभूमिय गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं संखिज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं असंखिज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साण ।

छाया—यदि कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर कर्मभूमिके गर्भज मनुष्योंको होता है तो क्या संख्यात वर्षकी आयुवालोंको होता है या असंख्यातवर्षकी आयुवालोंको ! गौतम ! संख्यातवर्षकी आयुवालेको होता है किन्तु असंख्यातवर्षकी आयुवालेको नहीं होता ।

मूल—जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं पर्य्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! पर्य्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—यदि संख्यातवर्षकी आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको मनःपर्यवज्ञान होता है तो क्या पर्याप्तकको होता है या अपर्याप्तकको ? गौतम ! पर्य्याप्तकको होता है अपर्याप्तकको नहीं होता है।

मूल—जइ पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, सम्मामिच्छदिट्ठि[1]-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नोसम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

१ सम्ममिच्छ इति पाठान्तरम् ।

छाया—यदि पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [उत्पद्यते], नो मिथ्यादृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, नो सम्यङ्मिथ्यादृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर पूर्वकथित पर्याप्त मनुष्यको होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको होता है या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिकोंको होता है अथवा मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको होता है । गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यको होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि व मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता है ।

मूल—जइ सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [उप्पज्जइ], किं संजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, असंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, संजयासंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! संजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो संजयासंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउयकम्मभूमिय – गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, संयताऽसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्? गौतम! संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो संयताऽसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्।

टीका—अगर सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको यह ज्ञान होता है तो क्या संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है? या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको अथवा संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है? गौतम! पूर्वोक्त ज्ञान संयत (साधु) सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है, असंयत या संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता।

मूल—(जइ संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [उप्पज्जई], किं पमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं?) गोयमा! अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो पमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं।

छाया—यदि संयतसम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [उत्पद्यते], किं प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-

कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो प्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर साधुओंको होता है तो क्या प्रमत्तसंयत (साधु) को होता है, *या अप्रमत्तसंयत (साधु) को ? गौतम ! यह ज्ञान अप्रमत्तसंयत (साधु)*-को होता है प्रमत्त साधुको नहीं होता।

मूल—जइ अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं इड्ढीपत्त–अपमत्त संजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अणिड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! इड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अणिड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू० १७ ॥

छाया—यदि अप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं ऋद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अनृद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! ऋद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अनृद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां मनःपर्यवज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू० १७॥

टीका—यदि अप्रमत्त संयतको यह ज्ञान पैदा होता है तो क्या ऋद्धिमान अप्रमत्त साधुको होता है या अऋद्धिमान–ऋद्धिशून्य अप्रमत्त साधुको

होता है ? गौतम ! ऋद्धि—आमर्षौषध्यादि शक्ति-प्राप्त अप्रमत्त संयतकोही मनः-पर्यवज्ञान होता है, ऋद्धिशून्य अप्रमत्त साधुओंको यह ज्ञान उत्पन्न नहीं होता [मनोवर्गणासे गृहीत मनोयोग्य पुद्गलोंका आश्रयण—अवलम्बन लेकर मानसिक भावोंको जानना इसको मनः पर्यवज्ञान कहते हैं]॥ सू. १७ ॥

मनःपर्यवज्ञानके प्रकार—

मूल— तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा—उज्जुमई य विउलमई य, तं समासओ चउव्विहं पन्नत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ, ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ। खित्तओ णं उज्जुमई य जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तिसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ। कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणावि पलिओवमस्स असंखिज्जय भागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं (कालं) जाणइ पासइ। भावओ ण उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं (भावं) जाणइ पासइ।

गाहा—६५ मणपज्जवनाणं पुण, जणमणपरिचिंतिअत्थपागडणं ।
माणुसखित्तनिबद्धं, गुणपच्चइअं चरित्तवओ ॥ १ ॥
से त्तं मणपज्जवनाणं ॥ सू १८ ॥

छाया—तच्च द्विविधमुत्पद्यते, तद्यथा—ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च, तत समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतो नु ऋजुमतिरनन्तान् अनन्तप्रदेशिकान्

स्कन्धान् जानाति पश्यति, तान् चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरान् विपुलतरान् विशुद्धतरकान् वितिमिरतरकान् जानाति पश्यति। क्षेत्रतो नु ऋजुमतिश्च जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयभागम्, उत्कर्षेणाऽधो यावदस्या रत्नप्रभाया' पृथिव्या उपरितनानधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान्, ऊर्ध्वं यावज्ज्योतिष्कस्योपरितनतलम्, तिर्यग्यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे—अर्द्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, त्रिंशदकर्मभूमिषु, षट्पंचाशदन्तरद्वीपेषु, संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् जानाति पश्यति, तच्चैव विपुलमतिरर्द्धतृतीयैरङ्गुलैरभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं क्षेत्रं जानाति पश्यति। कालतो नु ऋजुमतिर्जघन्येन पल्योपमस्याऽसंख्येयभागमुत्कर्षेणाऽपि पल्योपमस्याऽसंख्येयभागमतीतमनागतं वा कालं जानाति पश्यति, तच्चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं (कालं) जानाति पश्यति। भावतो नु ऋजुमतिरनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति तच्चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति पश्यति।

गाथा—६५ मनःपर्यवज्ञानं पुनः—र्जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनम्।
मानुषक्षेत्रनिबद्धं, गुणप्रत्ययिकं चरित्रवतः॥ १॥
तदेतन्मनःपर्यवज्ञानम्॥ सू. १८॥

टीका—और वह मनःपर्यवज्ञान दो प्रकारका उत्पन्न होता है, जैसे—ऋजुमति और विपुलमति दोनों प्रकारवाला वह मनःपर्यवज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४) से, इनमें द्रव्यकी अपेक्षासे ऋजुमति अनन्तप्रदेशी अनन्त स्कन्धोंको जानता देखता है और उसीको विपुलमति कुछ अधिक विपुल और विशुद्ध तथा अन्धकाररहित जानता व देखता है। क्षेत्रसे ऋजुमति जघन्य अंगुलके असंख्यातभाग और उत्कृष्ट नीचे—इस रत्नप्रभापृथ्वीके उपरी भागके नीचेके छोटे प्रतरोंतक जानता है, उपर ज्योतिष्क विमानके उपरी तलपर्यन्त तथा तिर्यक्—मनुष्यक्षेत्रके भीतर अढाई द्वीपसमुद्रपर्यन्त यानी पन्द्रह कर्मभूमि तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तरद्वीपोंमें रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके मनोगत भावोंको जानता व देखता है, और विपुलमति उसीको अढाई अंगुल अधिक विपुल विशुद्ध

तथा अन्धकाररहित क्षेत्रकी दृष्टिसे जानता व देखता है। कालसे ऋजुमति जघन्य और उत्कृष्टसे भी पल्योपमके असंख्यातवाँ भाग भूत व भविष्यकालको जानता देखता है, और विपुलमति उसीको कुछ अधिक विस्तारयुक्त तथा विशुद्ध जानता व देखता है। भावसे ऋजुमति अनन्त भावोंको जानता देखता है, (विशेष स्पष्ट-) सभी भावोंके अनन्तवें भागको जानता देखता है, और विपुलमति उसीको कुछ अतिविस्तीर्ण तथा विशुद्धतर जानता व देखता है। उपसंहार-गाथार्थ-६५ मनःपर्यवज्ञान सभी जीवोंके मनमें सोचे हुए अर्थको प्रकट करनेवाला है, और मनुष्यक्षेत्रमें सीमित तथा चारित्रयुक्त साधुके क्षयोपशम गुणसे उत्पन्न होनेवाला है। इसप्रकार मनःपर्यवज्ञानका वर्णन हुआ ॥ सू. १८॥

मूल—से किं तं केवलनाणं ? केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—भवत्थकेवलनाणं च सिद्धकेवलनाणं च।

छाया—अथ किं तत् केवलज्ञानम् ? केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—भवस्थकेवलज्ञानञ्च सिद्धकेवलज्ञानञ्च।

टीका—वह केवलज्ञान किस प्रकार है ? केवलज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान।

मूल—से किं तं भवत्थकेवलनाणं ? भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—सजोगिभवत्थकेवलनाणं च अजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

छाया—अथ किं तद् भवस्थकेवलज्ञानम् ? भवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, अयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च।

टीका—वह भवस्थ केवलज्ञान कौनसा है ? उ०- भवस्थ केवलज्ञान (संसारमें रहे हुए अर्हन्तोंका केवलज्ञान) दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-सयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

मूल—से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ? सजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च। अहवा चरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च, से त्तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं।

छाया—अथ किं तत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्? सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च। अथवा चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, तदेतत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्।

टीका—वह सयोगिभवस्थकेवलज्ञान किस प्रकार है? उ०—सयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकारका है, जैसे-प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान। अथवा सयोगिभवस्थ केवलज्ञानके दूसरी तरहसे दो प्रकार हैं, जैसे—चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान इसप्रकार यह सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान हुआ।

मूल—से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं? अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च। अहवा चरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च, से त्तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं, से त्तं भवत्थकेवलनाणं॥ सू० १९॥

छाया—अथ किं तदयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्? अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रथमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानं चाऽप्रथमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च। अथवा चरमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चाऽचरमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, तदेतदयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्, तदेतद् भवस्थकेवलज्ञानम्॥ सू० १९॥

टीका—वह अयोगिभवस्थकेवलज्ञान कौनसा है? उ०—अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (भी) दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-प्रथमसमयका अयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अप्रथमसमयका अयोगिभवस्थ केवलज्ञान, अथवा चरमसमय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरमसमय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (इस प्रकार भी दो भेद होते हैं), यह हुआ अयोगिभवस्थ केवलज्ञान, इसके साथ भवस्थकेवलज्ञान भी पूर्ण हुआ॥ सू० १९॥

मूल– से किं तं सिद्धकेवलनाणं ? सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–अणंतरसिद्धकेवलनाणं च परंपरसिद्धकेवलनाणं च ॥ सू. २० ॥

छाया–अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानम् ? सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्च परम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्च ॥ सू २० ॥

टीका—वह सिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है? सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे–अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान और परम्परसिद्धकेवलज्ञान ॥ सू २० ॥

मूल– से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ? अणंतरसिद्धकेवलनाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा–तित्थसिद्धा (१), अतित्थसिद्धा (२), तित्थयरासिद्धा (३), अतित्थयरासिद्धा (४), सयंबुद्धसिद्धा (५), पत्तेयबुद्धसिद्धा (६), बुद्धबोहियसिद्धा (७), इत्थिलिंगसिद्धा (८), पुरिसलिंगासिद्धा (९), नपुंसगलिंगासिद्धा (१०), सलिंगासिद्धा (११), अन्नलिंगसिद्धा (१२), गिहिलिंगासिद्धा (१३), एगसिद्धा (१४), अणेगसिद्धा (१५), से त्तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ॥ सू. २१ ॥

छाया–अथ किं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ? अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–तीर्थसिद्धाः (१), अतीर्थसिद्धाः (२), तीर्थकरासिद्धाः (३), अतीर्थकरासिद्धाः (४), स्वयंबुद्धसिद्धाः (५), प्रत्येकबुद्धसिद्धाः (६), बुद्धबोधितसिद्धाः (७), स्त्रीलिङ्गसिद्धाः (८), पुरुषलिङ्गसिद्धाः (९), नपुंसकलिङ्गसिद्धाः (१०), स्वलिङ्गसिद्धाः (११), अन्यलिङ्गसिद्धाः (१२), गृहिलिङ्गसिद्धाः (१३), एकासिद्धाः (१४), अनेकसिद्धाः (१५), तदेतदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ॥ सू. २१ ॥

टीका—वह अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है? अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान पन्द्रह प्रकारका कहा गया है, जैसे–तीर्थसिद्ध (१), अतीर्थसिद्ध

(२), तीर्थकरसिद्ध (३), अतीर्थकरसिद्ध (४), स्वयंबुद्धसिद्ध (५), प्रत्येक बुद्धसिद्ध (६) बुद्धबोधितसिद्ध (७), स्त्रीलिङ्गसिद्ध (८), पुरुषलिङ्गसिद्ध (९), नपुंसकलिङ्गसिद्ध (१०), स्वलिङ्गसिद्ध (११), अन्यलिङ्गसिद्ध (१२) गृहिलिङ्गसिद्ध (१३), एकसिद्ध (१४) अनेकसिद्ध (१५), इनका केवल ज्ञान अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान है, यह हुआ अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान ॥ सू २१॥

मूल—से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाणं ? परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—अपढम समयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा, जाव दससमयसिद्धा, संखिज्जसमयसिद्धा, असंखिज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा, से त्तं परंपरसिद्धकेवलनाणं, से त्तं सिद्धकेवलनाणं ।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ । कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ ।

गाहा—६६

अह सव्वदव्वपरिणाम,—भावविण्णत्तिकारणमणंतं ।
सासयमप्पडिवाई, एगविहं केवलं नाणं ॥ सू. २२॥

छाया—अथ किं तत्परम्परसिद्धकेवलज्ञानम् ? परम्परसिद्धकेवलज्ञानमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अप्रथमसमयसिद्धाः, द्विसमयसिद्धाः, त्रिसमयसिद्धाः, चतुःसमयसिद्धाः, यावद्दशसमयसिद्धाः, संख्येयसमयसिद्धाः, असंख्येयसमयसिद्धाः अनन्तसमयसिद्धाः, तदेतत्परम्परसिद्धकेवलज्ञान, तदेतत्सिद्धकेवलज्ञानम् ।

तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः, तत्र द्रव्यतः केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति पश्यति, भावतः केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति पश्यति ।

गाथा—६६

अथ सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणमनन्तम् ।

शाश्वतमप्रतिपाति, एकविधं केवलं ज्ञानम् ॥ सू २२ ॥

टीका—वह परम्परसिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है ? उ०- परंपरसिद्ध-केवलज्ञान अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे-अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमय-सिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत् दशसमयसिद्ध, संख्येयसमय-सिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध, अनन्तसमयके सिद्ध, इस प्रकार इनका केवलज्ञान परम्परसिद्धकेवलज्ञान कहाता है, यह परम्परसिद्धकेवलज्ञान हुआ, साथही भवस्थ व परम्परकेवलज्ञानके वर्णनसे यह सिद्धकेवलज्ञान भी पूर्ण हो चुका।

ऊपर कहा गया वह केवलज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका है, जैसे-द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४), इनमें द्रव्यसे केवलज्ञानी सब द्रव्योंको जानता व देखता है, क्षेत्रसे केवलज्ञानी लोकालोकरूप सब क्षेत्रको जानता व देखता है, कालसे केवलज्ञानी सब काल-तीनों काल-के द्रव्योंको जानता और देखता है, भावसे केवलज्ञानी अनन्तपर्यायात्मक द्रव्योंके सब भावोंको जानता व देखता है। उपसंहार-गाथा-६६ सभी द्रव्योंके परिणाम और भाव-औदयिकादि व वर्णगन्धादिको जाननेका कारण है अर्थात् सब द्रव्योंके परिणाम और भावोंको जाननेवाला है, अन्तरहित तथा शाश्वतसदा-कालस्थायी व अप्रतिपाति-नहीं गिरनेवाला ऐसा यह केवलज्ञान एकप्रकारका है ॥ सू. २२ ॥

मूल—६७

केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे ।

ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुअं हवइ सेसं ॥ १ ॥

से त्तं केवलनाणं, से त्तं नोइंदियपच्चक्खं, से त्तं पच्चक्खनाणं ॥ सू. २३ ॥

छाया—६७

केवलज्ञानेनार्थान्, ज्ञात्वा ये तत्र प्रज्ञापनयोग्याः ।

तान् भाषते तीर्थंकरो, वाग्योगश्रुतं भवति शेषम् ॥ १ ॥

तदेतत्केवलज्ञानं, तदेतन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं, तदेतत्प्रत्यक्षज्ञानम् ॥ सू २३ ॥

टीका—केवलज्ञानसे सब पदार्थोंको जानकर उनमें जो पदार्थ वर्णनयोग्य हैं तीर्थंकर महाराज उनको वर्णन करते हैं, शेषभाव वाग्योगश्रुत होता है यह हुआ केवलज्ञान, इसके साथ ही यह नोइन्द्रियप्रत्यक्ष व प्रत्यक्षज्ञानका भी वर्णन हुआ ॥ सू २३ ॥

मूल—से किं तं परुक्खनाणं ? परुक्खनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–आभिणिबोहियनाणपरुक्खं च, सुयनाणपरुक्खं च, जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थाभिणिबोहियनाणं, दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं, तहवि पुण इत्थ आयरिआ नाणत्तं पण्णवयंति, अभिणिबुज्झइ त्ति आभिणिबोहियनाणं सुणेइत्ति सुयं, मइपुव्वं जेण सुअं न मई सुयपुव्विया ॥ सू. २४ ॥

छाया—अथ किं तत्परोक्षज्ञानम् ? परोक्षज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षञ्च श्रुतज्ञानपरोक्षञ्च, यत्राभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानं, यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानं, द्वे अपि एते अन्योन्यमनुगते, तथापि पुनरत्राऽऽचार्या नानात्वं प्रज्ञापयन्ति–अभिनिबुध्यत इत्याभिनिबोधिकज्ञानम्, शृणोतीति श्रुतम् मतिपूर्वं येन श्रुतं न मतिः श्रुतपूर्विका ॥ सू. २४ ॥

टीका— वह परोक्षज्ञान कौनसा है ? परोक्षज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे–आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्ष और श्रुतज्ञानपरोक्ष जहाँ आभिनिबोधिकज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, और जहाँ श्रुतज्ञान होता है वहाँ आभिनिबोधिकज्ञान होता है, इस प्रकार ये दोनों परस्पर अनुगत हैं, तो भी फिर आचार्य्य यहाँ विशेषता दिखाते हैं–अभिमुख आये हुए पदार्थोंका जो नियमित बोध करता है उस (इन्द्रिय और मनसे होनेवाले) ज्ञानको आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं, सुना जाय वह श्रुतज्ञान है, जिसलिए श्रुतज्ञान (शब्दजन्य ज्ञान) मतिपूर्वक होता है किन्तु मति श्रुतपूर्विका नहीं होती, इसलिए मति श्रुत दोनोंमें मति ज्ञानका ही पूर्वप्रयोग होता है ॥ सू. २४ ॥

मूल—अविसेसिया मई मइनाणं च मइअण्णाणं च । विसेसिया सम्मदिट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स मई मइअन्नाणं । अविसेसियं सुयं सुयनाणं च सुयअन्नाणं च । विसेसिअं सुयं सम्मदिट्ठिस्स सुअं सुयनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुयं सुय अन्नाणं ॥ सू. २५ ॥

छाया—अविशेषिता मतिर्मतिज्ञानञ्च, मत्यज्ञानञ्च, विशेषिता सम्यग्दृष्टे मंतिर्मतिज्ञानं, मिथ्यादृष्टेर्मतिमत्यज्ञानम् । अविशेषितं श्रुतं श्रुत

ज्ञानञ्च श्रुताज्ञानञ्च, विशेषितं श्रुतं सम्यग्दृष्टेः श्रुतं श्रुतज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः श्रुतं श्रुताज्ञानम् ॥ सू २५ ॥

टीका—विना विशेषताकी मति मतिज्ञान और मतिअज्ञान उभयरूप है, विशेषतायुक्त वही माति सम्यग्दृष्टिके लिए मतिज्ञान है व मिथ्यादृष्टिकी मति, मति-अज्ञान कहाती है। विशेषताकी अपेक्षासे रहित श्रुत श्रुतज्ञान और श्रुतअज्ञान उभयरूप कहाता है, एवं विशेषता पाकर वही सम्यग्दृष्टिका श्रुत श्रुतज्ञान तथा मिथ्यादृष्टिका श्रुत श्रुत-अज्ञान कहाता है ॥ सू २५ ॥

मूल—से किं तं आभिणिबोहियनाणं ? आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—सुयनिस्सियं च, असुयनिस्सियं च। से किं तं असुयनिस्सियं ? असुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—

गाहा—६८

उप्पत्तिया १ वेणइआ २, कम्मया[1] ३ परिणामिया ४।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भई ॥ सू २६ ॥

छाया—अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम्, आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—श्रुतनिश्रितञ्च, अश्रुतनिश्रितञ्च। अथ किं तदश्रुतनिश्रितम् ? अश्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

गाथा—६८

औत्पत्तिकी १ वैनयिकी २, कर्मजा ३ पारिणामिकी ४।
बुद्धिश्चतुर्विधोक्ता, पंचमी नोपलभ्यते ॥ सू २६ ॥

टीका—वह आभिनिबोधिकज्ञान किस प्रकार है ? उ०—आभिनिबोधिक ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित। स्वल्प वाच्य होनेसे पहले अश्रुतनिश्रित मतिज्ञानको कहते हैं—वह अश्रुतनिश्रित मति कैसी है ? उ०— अश्रुतनिश्रित मति चार प्रकारकी कही गई है, जैसे—गाथार्थ—औत्पत्तिकी (१) वैनयिकी (२) कर्मजा (३) पारिणामिकी (४) इस तरह बुद्धि चार प्रकारकी कही गई है, पांचवाँ प्रकार नहीं मिलता है ॥ सू २६ ॥

मूल—गाहा—६९[2]

पुव्वमदिट्ठमस्सुय,—मवेइय—तक्खण-विसुद्धगहियत्था।
अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥ १ ॥

१—कम्मिया—इति समितिमुद्रितमलयगिरिवृत्तौ।

२ आ नि गा ९३८—त ५१ पर्यन्ता १४ गाथा बुद्धि-सिद्ध-प्रतिपादके प्रकरणे

छाया—गाथा—६९

पूर्वमदृष्टाऽश्रुताऽवेदिततत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था ।
अव्याहतफलयोगा, बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ १ ॥

औत्पत्तिकी—पहले बिना देखे बिना सुने और बिना जाने पदार्थोंको तत्कालही (उसी क्षणमें) विशुद्ध यथार्थरूपसे ग्रहण करनेवाली तथा अबाधित फलके योगवाली बुद्धि औत्पत्तिकी नामवाली है याने (जो बुद्धि पहले बिना देखे, बिना सुने बिना जाने विषयोंको उसी क्षणमें विशुद्ध यथावस्थित ग्रहण करती है व अबाधितफलके सम्बन्धवाली है वह औत्पत्तिकी नामकी बुद्धि है) अर्थात् शास्त्राभ्यास व अनुभव आदिके बिना केवल उत्पातहीसे जो उत्पन्न होती है वह औत्पत्तिकी बुद्धि कहाती है।

औत्पत्तिकी बुद्धिके विषयमें रोहक कुमारके ११ दृष्टान्तोंका पहला उदाहरण गाथारूपसे कहते हैं—

मूल—गाहा—७०

भरहसिल १ मिंढ २ कुक्कुड ३, तिल ४ वालुय ५ हत्थि ६
अगड ७ वणसंडे ८। पायस ९ अइआ १० पत्ते ११, खाड
हिला १२ पचपियरो य १३ ॥ २ ॥

छाया—गाथा—७०

भरतशिला १ मेण्ढ २ कुक्कुट ३, तिल ४ वालुका ५ हस्त्यगड
६, ७ वनखण्डा ८। पायसाऽतिग ९, १० पत्राणि ११,
खाडहिला १२ पञ्चपितरश्च १३ ॥ २ ॥

टीका-गाथार्थ-७०-भरत शिला-उज्जयिनीके पास नटोंका एक गाँव था जिसमें भरत नामका एक नट रहता था। उसकी स्त्री किसी रोगसे मरगई किन्तु पीछे रोहा नामके एक छोटे बालकको छोड़ गई, तब उस भरत-नटने अपनी व शिशु रोहाकी सेवाके लिए दूसरी शादी की। किन्तु वह सपत्नी माँ रोहकके साथ प्रेमव्यवहार ठीक २ नहीं करती, जिससे दुःखी हो रोहकने एक दिन उसको कहा कि माँ! तू मेरेसे बराबर प्रेमका व्यवहार नहीं करती यह अच्छा नहीं है। इसपर माँ बोली कि अरे रोहक! मैं अगर ठीक नहीं करती तो तू मेरा क्या करेगा? रोहक बोला कि मैं ऐसा करूंगा जिससे तुमको मेरे पाँवपर गिरना पड़ेगा। अरे! पाँवपर गिरानेवाले! बड़ा बने हो, जा तुझसे जो करना हो करलेना ऐसा कहके माँ चुप हो गई। और रोहक भी अपनी बात पूरी करनेका अवसर देखने लगा, एकरात कुछ समयके बाद वह अपने पिताके पास सोया हुआ था अचानक बोलने लगा कि ओ काका! यह देखो गोहा (अन्य पुरुष) दौड़ा जाता है बालककी यह बात सुनकर नटको अपनी स्त्रीके

प्रति शंका हो गई। उसी रोजसे वह स्त्रीके साथ अच्छी तरह संभाषण भी नहीं करता, तथा दूर होकर सोने लगा। इस प्रकार पतिको अपनेसे मुह मोडे हुए देखकर वह समझ गई कि यह सव वालककी ही करामात है, विना इसको प्रसन्न किए काम नहीं चलेगा, ऐसा सोचकर उसने अनुनय पूर्वक भविष्यके सद्व्यवहारका विश्वास दिलाते हुए वालकको संतुष्ट किया, प्रसन्न होकर रोहकने भी पिताकी शकाको दूर करनेके लिए किसी चांदनी रातमें अंगुलीके अग्रभागसे अपनी छायाको दिखाते हुए पितासे वोला कि ओ पिता! देखो यह गोहा (अन्य पुरुष) जा रहा है। सुनते ही उस नटने गोहा (अन्य पुरुष) को मारनेके लिए क्रोधमे आकर म्यानसे तलवार निकाली, और वोला कि कहाँ है वह लंपट गोहा, जो मेरे घरमे धर्म नष्ट करता है? दिखा, अभी उसको इस लोकसे विदा कर देता हू। रोहकने उत्तरमें अंगुलीसे अपनी छायाको दिखाते हुए कहा कि वह गोहा है। छायाको गोहा कहके समझानेकी वालचेष्टा देखते ही भरत तो लज्जित हो गया और सोचने लगा कि अहो! मैंने झूठेही वालकके कहनेसे अपनी स्त्रीके साथ अप्रीतिका व्यवहार किया। इस प्रकार पश्चात्तापके वाद भरत पूर्ववत् ही स्त्रीसे प्रेमव्यवहार करने लगा, तव रोहाने सोचा कि मेरे दुर्व्यवहारसे अप्रसन्न हुई माता कदाचित् मुझे विष आदि देकर मार देगी, इसलिए अव अकेले भोजन नहीं करना चाहिये, ऐसा सोचके वह अपना खाना पीना पिताके साथ ही करता तथा सर्वदा पिताकेही साथ रहता। एक दिन कार्यवश रोहा अपने पिताके साथ उज्जयिनी गया। नगरीको देवपुरीकी तरह देखके रोहा वहुत विस्मित हुआ और अपने मनमें उसका पूर्ण चित्र खींचलिया, पीछे जव पिताके साथ घरकी ओर आने लगा तव नगरीके वाहर निकलते ही भरतको कुछ भूली हुई चीजकी याद आई और उसे लेनेके लिए रोहकको सिप्राके तीरपर विठाके वह फिर शहरमें चला गया। इसी बीचमे रोहाने नदीके किनारेकी वालूपर अपनी वालचचलतासे कोटपूर्ण नगरी लिख डाली। इधर फिरनेको आया हुआ राजा संयोगवश साथियोंके मार्ग भूल जानेसे अकेला होकर उस रास्तेसे चला आया, उसको अपनी लिखी हुई नगरीके बीचसे आते देख रोहा बोला–ऐ राजपुत्र! इस रास्तेसे मत आओ, राजा बोला क्यो क्या है? रोहक बोला–देखते नहीं! यह राजभवन है, जहाँ हरएक प्रवेश नहीं कर सकता। यह सुनते ही कौतुकवश हो राजाने उसकी लिखी हुई सारी नगरी देखी और उस वालकसे पूछा–अरे! पहले भी तुमने कभी यह नगरी देखी है? या नहीं! कभी नहीं, आजही ग्रामसे यहाँ आया हूँ, रोहक वोला। वालककी अपूर्व धारणाशक्ति व चातुरीको देखकर वह राजा चकित हो गया और मनही मन उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगा। कुछ समयके वाद राजाने रोहकसे पूछा–वत्स! तुम्हारा नाम क्या है? और कहाँ रहते हो? वह बोला–राजन्! मेरा नाम रोहक है और मैं इस पासके नटोंके ग्राममें रहता

हूं। इस तरह दोनोंकी बात चलती रही थी कि इसी बीचमें रोहकका पिता आ पहुँचा और दोनों पितापुत्र ग्रामको चलेगए। राजा भी अपने भवन चला आया और सोचने लगा कि मुझको एक कम पाँचसौ मंत्री हैं, यदि मन्त्रिमंडलमें मूर्धन्य अत्यन्त बुद्धिमान् एक बड़ा मन्त्रि और हो जाय तो मेरा राज्य सुखसे चलेगा। क्यों कि अल्प बलके कम रहते भी बुद्धिबली राजा शत्रुसे कष्ट नहीं पाता और खेलही खेलमें शत्रुपर विजय पा लेता है, इसप्रकार विचार कर राजाने कुछ दिनोंतक रोहककी बुद्धिपरीक्षा करनी शुरू की। (१) शिला (शिला)-सर्व प्रथम उस गाँवके लोगोंको राजाने आदेश दिया कि तुम सभी एक राजाके योग्य मंडप बनाओ जिसपर ग्रामके बाहरवाली वह बड़ी शिला बिना उठाये आच्छादनके रूपमें बन जावे। राजाके उपरोक्त आदेशको सुनकर सभी ग्रामवाले आकुल हो उठे, व ग्रामके बाहर सभामें इकट्ठे होकर परस्पर विचार करने लगे कि, अब क्या करना चाहिए ? राजाकी दुराज्ञा हम सबोंपर आ पड़ी है और उसका पालन करना असंभव है, तथा आज्ञा पूरी नहीं करनेपर राजा अवश्य भारी दण्ड देगा। इस तरह चिन्तासे व्याकुल उन सबोंको विचार करते २ मध्यदिन (दोपहर) हो आया। इधर रोहक पिताके बिना नहीं खाता और पिता ग्रामके मेलेमें था। इसलिए वह भूखसे व्याकुल होकर पिताके पास आया व बोला कि पिताजी मैं भूखसे बहुत दुःखी हूँ इसलिए भोजनके लिए जल्दी घर चलो। भरतने कहा-वत्स! तुम सुखी हो जिसलिये कि ग्रामके कुछ भी कष्टको नहीं जानते हो। रोहक बोला-पिताजी! ग्रामको क्या कष्ट है ? इसपर भरतने राजाकी आज्ञा व उसकी कठिनाई कह डाली। सब बात सुन लेनेपर हँसते हुए रोहाने कहा-क्या यही कष्ट है तो मैं अभी दूर कर देता हूँ, इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है आप लोग मंडप बनानेके लिए शिलाके चारों बाजू नीचेकी भूमिको खोदो और फिर यथास्थान आधार खंभोंको लगाकर मध्यवर्ती जमीनको भी खोदकर और चारों ओर अति सुन्दर दिवाल कर दो। मंडप बन जायगा मंडप निर्माणके इस उपायको सुनकर सभी ग्रामके प्रधान पुरुष बोलने लगे, हाँ जी ! यह तो ठीक है, ऐसा ही करना चाहिए। इसप्रकार निर्णय कर सब भोजनके लिए अपने २ घर गए और भोजन कर फिर लौट आए। शिलाके नीचे खोदना काम आरम्भ किया और कुछही दिनोंके बाद मण्डपका काम भी सम्पूर्ण हो गया आदेशके अनुकूल दी शिलाकी छत बना दी गई तब ग्रामके लोगोंने जाकर राजासे निवेदन कर दिया कि श्रीमान्की आज्ञा पूरी कर दी गई है। राजाने पूछा-कैसे ? तब सबने मण्डप बनानेकी सारी कथा कह डाली। राजाने पूछा-यह किसकी बुद्धि है ? सबने कहा कि देव! यह भरत-पुत्र रोहककी बुद्धि है। यह रोहककी उत्पातबुद्धिका प्रथम उदाहरण हुआ १।

मिण्ढ- मेंढिका उदाहरण—कुछ समयके बाद फिर राजाने रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिए एक मेंढा भेजा और साथही यह सूचना भी देदी

कि यह मेढा आज जितना वजनमें है एक पक्षके वाद भी उतना ही रहना चाहिए, न घटे और न वढे ही, बरावर वजनसे पीछे हमको सौंप देना। उपरोक्त हुक्म मिलते ही सब गामवाले व्याकुल हो गए कि यह कैसे हो सकता है? अगर खानेको अच्छा देंगे तो वढेगा और खानेको नहीं देंगे तो घटेगा ही। फिर क्या करना चाहिए? उपाय नहीं दिखनेपर सवोंने रोहकको बुलाया और कहा कि वत्स! पहले भी अपने बुद्धिरूप बांधसे राज-दण्डरूप सागरसे तुमनेही हम सबोंको पार किये थे, आज फिर समय आया है कि तुम अपने उस बुद्धिवलसे गांवको कष्टसे मुक्त कर दो। इसप्रकार भूमिकाके साथ ग्रामवासियोंने जिस आज्ञाको पूर्ण करना उनकी शक्तिके वाहर था वह आज्ञा रोहकको सुना दी। इसपर रोहकने बुद्धिवलसे ऐसा मार्ग निकाला कि जिससे, एक पक्षको कौन गिने, कई पक्षतक मेढा उतनाही वजनमे रहा जितना कि आज है, सव लोग इससे प्रसन्न हो गए और रोहकके कहे मुताबिक व्यवस्था कर दी। मेढेको प्रतिदिन पर्याप्त घास व जव आदि समय २ पर खिलाया जाता और सामने एक वृक (हुरार) भी रख दिया गया जिससे डरता रहे, भोजनकी अधिकता एवं वृकका भय दोनोंने मिलकर उस मेढेको न तो घटने दिया न वढनेही दिया। एक पक्ष बीतनेपर मेढा उसी हालातमे पीछा राजाको लौटा दिया गया। राजाने वजन किया तो पूरा निकला, (घटा वढा कुछ नहीं), यह उत्पातवुद्धिका दूसरा उदाहरण हुआ ॥ २ ॥

कुक्कुट-मुर्गा-कुछ दिनोंके वाद फिर रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिये राजाने ग्रामवालोंके पास एक कुक्कुट भेजा, और उसके साथ ऐसी आज्ञा भेजी कि विना दूसरे कुकुटके इस कुक्कुटको लडाकू वनाकर भेजो। ऐसी राजाज्ञाको सुनकर फिर सभी रोहकके पास आए, तथा सारी वातें उससे कह सुनाई। इसपर रोहकने एक साफ तथा वडा दर्पण मंगवाया, उस दर्पणको कुक्कुटके सामनेमे रखवा दिया, दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको दूसरा कुक्कुट समझकर उसके साथ वह राजकुक्कुट लडने लगा, क्यो कि तिर्यग्जाति जडबुद्धि होती है। इस प्रकार दूसरे कुक्कुटके अभावमे भी राजकुक्कुटको लडते देख ग्रामवासी लोग रोहककी बुद्धिपर मुग्ध हो गए। कुछ कालके बाद राजकुक्कुट राजाको लौटा दिया गया। अकेला ही कुक्कुट लडाकू बना, इस बातकी राजाने परीक्षा की, सच्ची घटना देखकर राजा बहुत खुश हुआ ॥ ३ ॥

तिल-कुछ दिनोंके वाद राजाने फिर रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिए उस गांवके लोगोंको अपने यहां बुलाया, तथा कहा कि तुम सबोंके सामने जो तिलके ढेर पडे हैं उन्हें विना गिने कहो कि ये कितने हैं? मगर देखो इसमें अधिक देर न लगे। इसपर सभी ग्रामीण लोग चिन्तित हो गये तथा उत्तरके लिए रोहकके पास दौड आए। रोहकने कहा कि राजा पगला है, ऐसा भी कहीं प्रश्न होता है? अस्तु, जाओ और उससे बोलो कि महाराज!

हम गणितज्ञ तो नहीं हैं जिससे आपको तिलोंकी एक संख्या कहें। फिर भी आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके उपमासे कहते हैं–गांवके ऊपर इस आकाशमें जितने तारे हैं बस उतनी संख्यामेंही इस ढेरमें तिल हैं। सबोंने राजाके पास आकर ऐसाही कह सुनाया। राजा मनही मन लज्जित हो गया ॥ ४ ॥

वालुक–बालू–कुछ दिनोंके बाद राजाने रोहककी परीक्षाके लिए फिर एक आज्ञा गांववालोंके नाम निकाली कि तुम्हारे गांवके पास सबसे बढ़ियाँ बालू है, इसलिए उस बालूसे एक मोटी डोरी बनाके शीघ्र भेज दो। लोगोंने रोहकसे कहा तब रोहकने अपने बुद्धिबलसे राजाको जवाब भेजा कि हम सब नट हैं, नाचना जानते हैं, किन्तु डोरी बनाना नहीं जानते लेकिन राजाका आदेश अवश्य पालनीय है इसलिए प्रार्थना है कि आपके राज भवनमें कोई पुरानी बालूमय डोरी हो तो नमूनेके तौरपर भेज देवें जिससे कि हम उसके अनुसार नवीन डोरी बनाकर भेज देंगे। गांववालोंने इसी प्रकार रोहककी बात राजासे निवेदन कर दी। राजा भी निरुत्तर हो चुप रह गया ॥ ५ ॥

हस्ती–हाथी–कुछ दिनोंके बाद फिर राजाने एक पुराना मरणप्राय हाथी गांववालोंके पास भेजा तथा ऐसा आदेश दिया कि यह हाथी मरा है ऐसा नहीं कहना तथा उसकी दैनिक वार्त्ता निवेदन करते रहना अन्यथा भारी दण्ड मिलेगा। इस तरह राजाकी आज्ञा सुनकर सभी लोग सभासे बाहर आए और रोहकसे इसका उपाय पूछने लगे। रोहकने जवाब दिया कि इस हाथीको बराबर धान्य खानेको देते रहो पीछे जो होगा उसे मैं समझ लूंगा। इस प्रकार रोहककी बातसे गांववालोंने हाथीको धान्य आदि खिलाया किन्तु वह तो रातको ही सुरपुर सिधार गया। तब रोहकके कथनानुसार सबोंने राजासे आकर निवेदन किया कि देव! आज हाथी न तो बैठता है, न उठता है, न खाना खाता है, न मलत्याग करता है, न श्वासोच्छ्वास ही लेता है, विशेष क्या कहें सचेतनताकी एक भी चेष्टा नहीं करता है। तब राजाने पूछा अरे! क्या तो हाथी मरगया? ग्रामीणोंने जवाब दिया कि देव! श्रीचरण ऐसा कह सकते हैं हम लोग नहीं। इसपर राजा चुप हो गया, और ग्रामीण लोग सहर्ष अपने घर चले आए ॥ ६ ॥

अगड–कूप–कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर आदेश निकाला कि तुम्हारे ग्रामका जो सुस्वादु जलपूर्ण कूप है उसको शीघ्रही यहाँ भेज दो। आदेशको सुनकर सभी चकित हुए, और रोहकसे इसका उपाय पूछने आए। रोहक बोला–राजासे जाकर यह अर्ज करो कि ग्रामीण कूप स्वभावसे ही डरपोक होता है और सजातीयके बिना उसको अन्य किसीपर विश्वास भी नहीं होता। इसलिए एक नागरिक कूप भेज देवें, जिसपर विश्वास कर यह उसके साथ यहाँतक चला आयगा। लेनेके लिये आये हुए राजपुरुषने जाकर राजासे

इसी प्रकार निवेदन करदिया। राजा भी अपने मनमें रोहककी बुद्धिमत्ताको विचारकर चुप रह गया ॥ ७ ॥

वणसंडे-वनखंड-कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर हुक्म दिया कि ग्रामके पूर्व दिशामें वर्त्तमान वनखण्डको पश्चिम दिशामें कर दो। उसी समय रोहकके बुद्धिबलसे ग्रामीण लोग वनखडके पूर्वदिशामे ठहर गए (याने पूर्वकी तरफही गांव बना लिया) फिर तो वनखंड गांवके पश्चिममें हो गया। आदेशको पूरा हुए देखकर राजपुरुषने राजासे निवेदन करदिया ॥ ८ ॥

पायस-खीर-फिर कुछ दिनोंके बाद राजाने आदेश दिया कि विना अग्नि-संयोगके ही पायस (खीर) पकाके भेजो। इस अपूर्व बातको सुनकर सभी ग्रामीण लोक क्षुब्ध हुए और रोहकसे पूछने लगे, तब रोहक बोला कि जलमें अच्छी तरह चावलोंको भींगोके सूर्यकी किरणोंसे खूब तपे हुए कोयले या पत्थरपर चावलोंकी थाली रखदो, इससे कुछ समयमें खीर बनकर तैयार हो जायगी। लोगोंने ऐसाही किया और पायस तैयार कर राजासे निवेदन कर दिया, राजा भी रोहककी बुद्धिमत्ता देखकर बडा विस्मित हुआ ॥ ९ ॥

अइय-अतिग-इसप्रकार रोहककी तीव्र बुद्धि समझकर राजाने उसको अपने पास बुलाया, मगर यह शर्त रक्खी कि मेरे आदेशोंको पूरा करनेवाला बालक न शुक्ल पक्षमे आवे न कृष्णपक्षमे, न रात्रिमे और न दिनमे, तथा छाया व धूपमे भी नहीं आवे, न आकाशसे आवे न पांवसे, न मार्गसे आवे न उन्मार्गसे, न नहाके आवे और न विना नहाए, किन्तु आवे जरूर। उपरोक्त आदेशको सुनकर रोहकने कण्ठस्नान किया और रथके चक्रकी धाराके ऊरणपर बैठकर संध्यासमयमें चालनीका छत्र धारण किए हुए अमावस्या व प्रतिपतके संयोगमे वह राजाके पास चला गया। 'खाली हाथ राजासे नहीं मिलना चाहिए', इस लोकोक्तिको विचारकर रोहकने एक मिट्टीका पिण्ड हाथमे ले लिया और राजाके पास जाकर प्रणामके बाद वह पृथ्वी-पिंड आगे रख दिया। राजाने पूछा-अरे रोहा! यह क्या? तब रोहा बोला-महाराज! आप पृथ्वीपति हैं इसलिए मैं पृथ्वी लाया हूँ। प्रथम-दर्शनमे इसप्रकार मंगल-वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गांवके लोग सब प्रमुदित हो चले गए ॥ १० ॥

अजे-अजा-राजाने प्रसन्न होकर रोहकको रातमें अपने पासही सुलाया और शेष लोग भी बाजूमे सुलाये गये। रातके प्रथम पहर बीतनेपर राजाने रोहकसे पूछा-क्या रे! जगा है या सोया? रोहक बोला-महाराज! जगा हूँ।

---

१ (यद्यपि वृत्तिकारने अजाका उदाहरण १२ वां और पत्रका दृष्टान्त ११ वां दिया है, लेकिन मूलमें पहले अजाका निर्देश किया है, इसलिए यहाँ अजोदाहरणके बाद पत्रका दृष्टान्त दिया जायगा)।

राजा—तब क्या सोचता है? वह बोला देव! अजा—बकरी—के पेटमें चकसे उतरी हुईकी तरह गोल २ गोलियाँ क्यों होती हैं? उसके ऐसा बोलनेपर संशययुक्त हो राजाने कहा—तुमही कहो क्यों होती है? वह बोला—देव! संवर्तनामक वायुविशेषसे वैसा होता है। ऐसा कहकर रोहक सो गया ॥११॥

पत्ते—पत्र—रातको दो पहर बीत जानेपर फिर राजाने कहा कि अरे! सोता है या जगा है? वह बोला—देव! जागता हूँ। तब क्या सोचता है? वह बोला कि देव! पीपलके पत्तेका वृन्तका भाग बड़ा है या आगेका भाग—शिखा? उसके ऐसा कहनेपर संशयाकुल हो राजाने कहा—अच्छा सोचा किन्तु इसमें निर्णय क्या हुआ? तू ही कह। रोहक बोला कि देव! जबतक की आगेका भाग नहीं सूखता है तबतक दोनों समान हैं। इसपर राजाने पासके दूसरे लोगोंसे पूछा उन सबोंने भी कहा ठीक है। इसके बाद रोहक सो गया १२।

खाडहिला—रातके तीसरे पहर बीतनेपर राजाने फिरसे पूछा—क्यों रे! जागता है या सोता? उसने जवाब दिया—महाराज! जागता हूँ। तब क्या सोचता है? वह बोला—देव! खाडहिला जीवको जितना बड़ा शरीर होता है उतना ही बड़ा पुच्छ है या कुछ कम विशेष? इसके निर्णयमें भी अपनेको असमर्थ देख राजाने कहा—अच्छा, तो तुमने क्या निर्णय किया है? वह बोला—देव! दोनों बराबर होते हैं ऐसा कह कुछ समय रोहक सो गया ॥१३॥

पञ्चपियर—पंचपितर—इधर सुबहके मंगलमय वाद्य सुनकर राजा जगा तथा रोहकको पुकारा। वह गाढ निद्रामें लीन होनेके कारण जवाब नहीं दे सका। तब राजाने उसको लीलाकी बेतसे तनिक स्पर्श कर दिया जिससे वह जग उठा। राजाने पूछा—क्या रे! सोता है? वह बोला—नहीं जागता हूँ। अच्छा तो फिर क्या सोचते हुए मौन है? बोल क्या सोचता है? वह बोला कि देव! यही सोचता हूँ कि आप कितनोंसे पैदा हुए हैं। रोहकके ऐसा कहनेपर राजा शर्माकर कुछ समय चुप रहा और फिर बोला कि अच्छा! कह मैं कितनोंसे पैदा हुआ हूँ? वह बोला—आप पाँचसे पैदा हुए हैं। राजाने फिर पूछा—किस किससे? रोहक बोला—देव! एक तो कुबेरसे क्यों कि उसके सदृश ही आपकी दानशक्ति है। दूसरे चांडालसे, क्यों कि वैरीसमूहके प्रति आप चांडालवत् ही क्रूर हैं। तीसरे धोबीसे, क्यों कि धोबीकी तरह दूसरेको पीड़ा पहुँचाके उसका सब धन हर लेते हैं। चौथे बिच्छूसे क्यों कि बिच्छूकी तरह निद्राधीन बालकको भी लीलाके कम्बिकाग्रसे डंक मार आपने जगा दिया। पाँचवें अपने पितासे, क्यों कि पितावत् आपभी न्यायका परिपालन करते हैं। उपरोक्त सहेतुक वार्ता सुनकर राजा चुप हो गया और प्रातःकाल शौचादि कृत्य कर माँको प्रणाम करने गया। प्रणामके बाद माँसे अपनी असलियत के लिए प्रश्न किया व रोहककी कही सारी बात कह डाली। माताने उत्तर दिया कि विकारी इच्छासे देखना यदि तेरे संस्कारका कारण हो तो ऐसा जरूर हुआ है। नहीं तो सकलजनाम

सिद्ध असलियतमें तो तुम्हारे एकही पिता हैं। इसप्रकार मांकी बात पूर्ण हो जानेपर राजा प्रणाम कर रोहककी बुद्धिपर विशेष चकित होता हुआ अपने महलको चला आया और समयपर रोहकको सब मन्त्रियोंमे मूर्द्धन्य बना दिया १४। ये रोहककी औत्पत्तिकी बुद्धिके उदाहरण हैं।

मूल-गाथा-७१

भरहसिल १ पणिय २ रुक्खे ३, खुड्डग ४ पड ५ सरड ६
काय ७ उच्चारे ८। गय ९ घयण १० गोल ११ खंभे १२,
खुड्डग १३ मग्गि १४ त्थि १५ पइ १६ पुत्ते १७ ॥३॥
७२ ॥ महुसित्थ १८ मुद्दि १९ अंके २०, (अ) नाणए २१ भिक्खु
२२ चेडगनिहाणे २३। सिक्खा २४ य अत्थसत्थे २५,
इच्छा य महं २६ सयसहस्से २७ ॥ ४ ॥

छाया-गाथा-७१

भरतशिला १ पणित २ वृक्षाः ३ क्षुल्लक ४ पट ५ सरट ६
काकोच्चाराः ७, ८। गज ९ घयण (भाण्ड) १० गोलक
११ स्तम्भाः १२, क्षुल्लक १३ मार्ग १४ स्त्री १५ पति १६
पुत्राः १७ ॥ ३ ॥
७२ ॥ मधुसिक्थ १८ मुद्रिका १९ अङ्काः २०, ज्ञायक २१ भिक्षु
२२ चेटकनिधानानि २३। शिक्षा २४ च अर्थशास्त्रम् २५,
इच्छा च महत् २६ शतसहस्रम् २७ ॥ ४ ॥

टीका-गाथार्थ ७१-७२ भरतशिला १ पणित (जूआबाजी) २ वृक्ष ३ क्षुद्रक ४ पट-वस्त्र ५ सरट (जन्तुविशेष) ६ काक ७ उच्चार ८ हाथी ९ और घृतभांड १० गोलक ११ स्तम्भ १२ क्षुद्रक १३ मार्ग १४ स्त्री १५ पति १६ और पुत्र १७ ॥ ३ ॥

इन सब उदाहरणोंसे भी औत्पत्तिकी बुद्धिका परिचय दिया गया है, जो इसप्रकार है।

१ भरतशिला—इसका उदाहरण पहले रोहककी बुद्धिके उदाहरणोंमें दे आए हैं।

२ पणित-कोई ग्रामीण किसान अपने ग्रामसे ककडिएँ लेकर नगरमे बेचनेको गया। नगरके द्वारपर जातेही उसे एक धूर्त नागरिक मिल गया। उस धूर्त नागरिकने ग्रामीण किसानको भोला समझकर ठगना चाहा और इसलिए धूर्ततासे बोला कि क्या? एक आदमी इन सब ककडिओंको नहीं खा सकता है? इसपर ग्रामीण बोला-किसकी ताकत है जो इतनी ककडिएँ खा लेगा?

नागरिक बोला—अगर मैं खा जाऊँ तो क्या दोगे ? इस बातको असंभव मानते हुए ग्रामीणने कहा कि अगर खा जाओ तो जो इस द्वारसे नहीं आसके ऐसा बड़ा लड्डू इनाम दूंगा। इसपर उन दोनोंने साक्षी बनाकर प्रतिज्ञा कर ली। बाद उस नागरिकने ग्रामीणकी सारी ककड़ियें जूँठी करके छोड़ दी और ग्रामीणसे कहा कि मैंने सारी ककड़ियें खा ली हैं अतः अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार द्वारसे नहीं आनेलायक बड़ा लड्डू मुझको दो। इसपर ग्रामीण बोला कि तुमने मेरी सारी ककड़ी खाईही नहीं फिर मैं उतना बड़ा मोदक कैसे दूँ ? इसपर नागरिक बोला कि मैंने तुम्हारी सारी ककड़ियें खा डाली फिर भी विश्वास नहीं हो तो बाजारमें रखकर परीक्षा कर लो। इसको ग्रामीणने कबूल किया। तब दोनोंने ककड़ियाँ सजाकर बाजारमें बेचनेके लिए रखदी। खरीदनेवाले आए मगर कहने लगे कि अजी ! ये तो सारी ककड़ियें खाई हुई हैं। इस तरह लोगोंके कहनेपर नागरिकने ग्रामीणको तथा साक्षीको विश्वास उत्पन्न करा दिया। अब ग्रामीण तो क्षुब्ध हो गया कि मैं इसको द्वारमें नहीं आ सके उतने परिमाणका मोदक कैसे दूँ ? तब इसप्रकार व्याकुल हो उस ग्रामीणने नागरिकधूर्तसे पीछा छुड़ानेके लिये भयसे उसको एक रुपया देना चाहा, किन्तु वह धूर्त इतनेपर राजी नहीं हुआ। आखिर ग्रामीणने १०० रुपयातक देना कबूल कर लिया, किन्तु धूर्तको कुछ अधिक मिलनेकी आशा थी, अतः उसने उतनेको स्वीकार नहीं किया। इसपर वह ग्रामीण सोचने लगा कि हाथी हाथीसेही लड़ाया जाता है वास्ते किसी धूर्त नागरिककी शरण लेनी चाहिए। ऐसा सोचकर उस ग्रामीणने नागरिकसे कुछ दिनोंका अवकाश लिया तथा नगरमें घूमकर किसी धूर्त नागरिकसे मित्रता करली एवं अपनी सारी घटना कहकर उससे बचनेकी उचित सम्मति मांगी। उसने ग्रामीणको उस धूर्तसे छूटनेका उपाय बता दिया जिसके अनुसार ग्रामीणने बाजारसे एक लड्डू लेकर नगरके दरवाजेके बीच रख दिया और प्रतिपक्षी नागरिक धूर्त एवं साक्षियोंको बुला लिया तथा उनके सामने बोला कि अरे मोदक ! चले आओ चले आओ, किन्तु मोदक द्वारसे तिलभर भी विचलित नहीं हुआ, तब ग्रामीणने उपस्थित लोगोंसे कहा कि मैंने आप लोगोंके सामने यही प्रतिज्ञा की थी कि अगर पराजित हो जाऊँगा तो ऐसा मोदक दूँगा जो इस द्वारसे नहीं आ सके सो यह मोदक द्वारसे नहीं आता आप भी बुला कर देख सकते हैं। अतः अब मैं प्रतिज्ञासे मुक्त हो गया हूँ साक्षी एवं इतर लोगोंके ऐसा स्वीकार कर लेनेपर वह धूर्त नागरिक भी लज्जित हो घर गया। तथा ग्रामीण भी धूर्तसे पीछा छूट जानेसे प्रसन्न होता हुआ गाँवको चला गया। यह प्रतिद्वन्द्वी धूर्त तथा नागरिक धूर्तकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१ वृक्ष—पुरुष-वृक्षका उदाहरण इस प्रकार है—किसी जंगलमें आम लेनेके इच्छुक कुछ बटोहियोंको एक बन्दर बाधा देने लगा। इसपर बटोहीने स्वबुद्धिसे उपाय सोचा और बन्दरके ऊपर पत्थर फेंकना शुरू किया। बन्दरने

भी बदलेमें रोषयुक्त होकर बटोहीको मारनेके लिये आमके फल तोड़कर फेंकना आरम्भ कर दिया। बटोहियोंके अभीष्ट मनोरथ अनायासही पूरे हो गये। यह पथिककी औत्पात्तिकी बुद्धिका उदाहरण हुआ।

४ खुड्डग—अंगुलीयाभरण-(अंगूठी) इसका उदाहरण इस प्रकार है, अढाई हजार वर्षसे पूर्व राजगृह नगरमे प्रसेनजित नामका राजा राज्य करता था। उसको बहुतसे पुत्र थे। किन्तु उन सबमे केवल एक श्रेणिकही राजाको राजलक्षणसम्पन्न पुत्र मालूम हुआ। श्रेणिकको अधिक आदर व प्यार करनेसे शेष राजकुमार ईर्ष्यावश उसे मार देंगे इसलिये प्रसेनजित उसको न तो कुछ अच्छी वस्तु देता और न बातसे ही लारप्यार करता। केवल अंतरंगरूपसे उसका ध्यान रखता था। पिताके इस व्यवहारसे खिन्न होकर एक दिन श्रेणिक विना कुछ साथ लिएही राजभवनसे निकल पड़ा तथा चलते चलते कुछही समयमे वह वेन्नातट नगरमे जा पहुँचा, और विभवसे क्षीण निर्धन बने हुए एक शेठकी दुकानपर जाके बैठ गया। शेठने उसी रात स्वप्नमें अपनी लड़कीका विवाह किसी रत्नाकरसे होते देखा था। इधर श्रेणिकके पुण्य-प्रभावसे शेठके यहाँ कई दिनोंकी खरीदके रखखी हुई चीजे एकदम बिकने लगी। इससे उस दिन शेठको बहुत आशातीत लाभ हुआ। इसके सिवाय म्लेच्छोंके द्वारा लाये गए कई बहुमूलय रत्न भी अल्प मूलयमे ही मिल गये। सहसा इस प्रकारके अचिन्त्य लाभको देखकर शेठको विस्मय हुआ। उसने इसका कारण सोचा तो मालूम हुआ कि यह जो मेरी दुकानके बाहरी बाजूमे पुण्यवान् पुरुष बैठा है उसीके अतिशय पुण्यका यह प्रभाव है। जबसे यह आके बैठा है, तभीसे मुझको व्यापारमे अधिक लाभ होने लगा है। इसका ललाट एवं भव्याकार भी इसके पुण्यातिशयकी साक्षी देता है। मैंने जो गत रातमें अपनी कन्याका रत्नाकरसे पाणिग्रहण होनेका स्वप्न देखा है वह रत्नाकर वास्तवमे यही है। इस प्रकार विचार करनेके बाद शेठने विनयपूर्वक हाथ जोड़ श्रेणिकसे पूछा कि महाभाग! आप किसके यहाँ पाहुने हैं? व कहांसे पधारे हैं? श्रेणिकने भद्रतासे जबाब दिया कि अभी तो आपहीके यहाँ आया हूं। श्रेणिकके उपरोक्त इष्ट वचनको सुनकर शेठ बहुत प्रसन्न हुआ और बहुमानके साथ श्रेणिकको अपने घर ले गया। तथा अपने भोजनसे भी विशिष्ट भोजनके द्वारा उसका सत्कार किया। शेठके यहाँ प्रतिदिन विशेष धनवृद्धि होने लगी। कुछ दिनोंके बाद प्रसन्न होकर शेठने अपनी लड़की नन्दाके साथ श्रेणिकका सम्बन्धविवाह कर दिया। श्रेणिक भी उस नन्दाके साथ सांसारिक सुखको अनुभव-करता हुआ रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद नन्दाको गर्भाधान हुआ। उधर राजा प्रसेनजित श्रेणिकके चले जानेपर कुछ चिन्तातुर बन गया तथा खोज करते २ प्रसेनजितको ऐसा मालूम हुआ कि श्रेणिकका वेन्नातटके किसी शेठकी कन्यासे विवाह हो गया और वह वहाँ सुखपूर्वक रहता है। जब प्रसेन-

जितको ऐसा मालूम हुआ तब अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर राजाने श्रेणिकको बुलानेके लिये आदमी भेजे। भेजे हुए राजपुरुषोंने वेणातटमें आकर श्रेणिकसे विनती की कि देव। महाराज प्रसेनजित आपको जल्दी बुलाते हैं, अतः आप शीघ्र चलें। श्रेणिक भी पीताकी आज्ञाको शिरोधार्य समझकर व सगर्भा नंदासे पूछकर राजपुरुषोंके साथ राजगृहीको चल दिया। जाते समय अपना परिचय व निवास आदि पत्नीकी जानकारीके लिए भीतके किसी एक भागपर लिख दिया। तीन महिने बीत जानेपर नंदाको ऐसा दोहद-मनोरथ उत्पन्न हुआ कि हाथीपर बैठी हुई सब लोगोंको अभयदान देती हुई मैं अभयदान करूँ अर्थात् भयभीत प्राणियोंको निर्भय करूँ। नंदाके पिताको जब यह बात मालूम हुई तब राजाकी अनुमति लेकर उसने उसका मनोरथ पूर्ण कर दिया। कालक्रमसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए पुत्ररत्नका जन्म हुआ। बारहवें दिन दोहदके अनुसार पुत्रका अभयकुमार यह नाम रक्खा गया। कुमार भी नंदनवनके कल्पवृक्षकी तरह सुखपूर्वक बढने लगा। यथासमय कलाओंका अभ्यास कर कुमार सुयोग्य बन गया। एक दिन उसने अपनी मातासे पूछा कि माँ। मेरे पिता कौन एवं कहाँ हैं? माताने मूलसे लेकर सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा उनका लिखा हुआ वह परिचय लेख भी दिखा दिया। अपना पिता राजगृहमें ही राजा हैं इस प्रकार माताके वचन व लेखसे समझकर अभयकुमार अपनी माँसे बोला कि माँ। हम सब भी साथसे राजगृह चलें तो पिताजीसे मिलना हो जायगा, एक विचार हो जानेपर दोनों माँ बेटे राजगृह चले आए। फिर नगरीके बाहर उद्यानमें माताको छोडकर अभयकुमार नगरीका हाल समझने व पिताको परिचय देने तथा दर्शन करनेके लिए पुर नगरीमें गया। वहाँ जाते ही एक सूखे (निर्जल) कूपके पास अभयकुमारने बहुतसे लोगोंको चारों तरफ इकट्ठे देखा। तब उसने एकसे पूछा कि भाई। यहाँ लोगोंका यह जमाव क्यों है? उत्तरमें किसीने कहा कि राजाका अंगुलीयाभरण (अंगूठी) इस कूपमें गिरा हुआ है। कूपके बाहर खडे रहकर जो इसको निकाल ले उसको राजा बहुत बडी वृत्ति देता है। उसीको निकालनेके उपायोंकी खोजमें ही यहाँ सब लोक खडे हैं। अभयकुमारने पासमें खडे राजपुरुषोंसे विशेष निर्णयके लिए पूछा उन लोगोंने भी ऐसाही कहा तब अभयकुमार बोला कि मैं बाहर खडा रहकेही निकाल लेता हूँ मगर राजाको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी होगी। इसपर राजपुरुष बोले-अच्छा। तुम निकालो, राजा अपनी प्रतिज्ञा जरूर पालन करेगा। अभयकुमारने उस अंगूठीको अच्छीतरह देखकर उसपर गीला गोबर गिरा दिया जिससे अंगुलीका वह आभरण गोबरमें मिलगया और कुछ समयके बाद गोबरके सूख जानेपर कूपको पानीसे भरदिया इससे वह अंगुलीयक भी गोबरके साथ ऊपर आके तिरने लगा। उसी समय अभयकुमारने बाहर खडे २ ही अंगुलीयक निकाल लिया, जिसपर लोगोंमें हर्षजन्य बहुत कोलाहल

होने लगा। तब राजपुरुषोंने भी राजाको निवेदन किया कि देव! एक विदेशी युवकने आपका अंगुलीयक आदेशानुसार ही निकाल लिया है। उत्कण्ठाके साथ राजाने अभयकुमारको अपने पास बुलाया और पूछा कि वत्स! तू कौन है? अभयकुमारने कहा कि महाराज! मै आपहीका पुत्र हूँ। राजाने पूछा कैसे? इसपर कुमारने पहलेका सब वृत्तान्त कह सुनाया, सुनकर राजा बहुत हर्षित हुआ तथा कुमारको हृदयसे लगाकर स्नेहपूर्वक उसके शिरका चुम्बन किया और पूछा कि वत्स! तुम्हारी माता अभी कहाँ है? कुमार बोला कि देव! मेरी माता अभी नगरीके बाहर उद्यानमे है। कुमारकी बात सुनकर उसी समय राजा सपरिवार नन्दा रानीको लानेके लिए उसके सम्मुख गया। अभयने आगे जाकर मातासे पिताके आनेकी सूचना कर दी जब नन्दाने अपने देहको सजाना शुरू किया, तब कुमारने निषेध करते हुए उससे कहा कि माताजी! पतिके विरहवाली कुलकामिनीको अपने पतिके दर्शन किए विना शृङ्गार करना योग्य नहीं होता है। इतनेमे राजा भी वहाँ पहुँच गया और दोनोंका स्नेहपूर्वक वहाँ मीलन हुआ फिर श्रेणिकराजाने बडे समारोहसे नन्दा रानी व अभयकुमारका नगर-प्रवेश कराया, नन्दा रानी सुखपूर्वक श्रेणिक महाराजके साथ रहने लगी। अभयकुमारको भी राजाने प्रधानमन्त्रीपदपर नियुक्त कर दिया। यह अभयकुमारकी औत्पात्तिकी बुद्धि हुई।

५ पड-पट (वस्त्र)-का उदाहरण इस प्रकार है—दो आदमी एक साथ किसी जलाशयपर जाकर स्नान करने लगे, उनमे एकके पास ऊर्णमय वस्त्र-कम्बल ओढनेको था और दूसरेके पास शरीर आच्छादनको सूतका वस्त्र था, कम्बलवाला तत्काल स्नान कर अच्छा होनेसे तुरंत सूतके वस्त्रको लेके चलने लगा, दूसरा पुकारकर मांगने लगा-अजी! तुम्हारा वस्त्र यह है वह मेरा है, अत मुझे दे दो, किन्तु वह इसकी कुछ भी नहीं सुनता हुआ चला गया। गांवमे आकर दोनों अपना न्याय करानेके लिये राजकुलमे पहुँचे। न्यायरक्षकने दूसरी तरहसे निर्णय होना कठिन समझकर बुद्धिबलसे दोनोंके शिरपर कंकतिकासे लेपन कर दिया। उससे कम्बलवालेके शिरसे ऊर्णके केश निकल आए, तब यह निश्चय हो गया कि यह सूतका वस्त्र इसका नहीं है। उसी समय राजपुरुषोंने उसका निग्रह कर वह वस्त्र दूसरेको दिला दिया। यह राजपुरुषकी औत्पत्तिकी बुद्धि है।

६ सरड-सरट-इसपर कथानक इस प्रकार है-कोई एक आदमी जंगलमें मलत्याग करने गया था, उस समय वह किसी बिलके उपर बैठ गया, सहसा एक सरटजंतु बिलमें प्रवेश करते हुए पूंछसे उसके गुदाभागको छू लिया, इतनेहीसे उसको यह शंका होगई कि यह तो मेरे पेटमे चलागया है, इसी शंकासे वह रोगीकी तरह प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। बहुतेरे चिकित्साप्रयोग किये परन्तु सब व्यर्थ हुए। एक दिन वह किसी वैद्यके पास पहुँचकर अपना हाल-

सुनाने लगा। वैद्यने अच्छी तरह परीक्षा की तो मालूम हुआ कि इसको केवल भ्रम हुआ है और कुछ नहीं, ऐसा सोचकर वैद्यने कहा कि मैं तेरा रोग मिटा देता हूँ किन्तु सौ रुपये लूँगा। इसपर उसने स्वीकार करलिया। तब वैद्यने उसको विरेचक दिया और एक मिट्टीके भांडमें लाक्षारससे भरा हुआ सरट रखके उसको मलत्याग करनेको कहा। विरेचन साफ हो जानेपर वैद्यने भांडसे सरट निकालके दिखाया कि देखो यह निकल गया है। तत्कालही उसकी शंका दूर होगई और वह नीरोग तथा कुछही समयमें शरीरसे सबल होगया। यह हुई वैद्यकी औत्पत्तिकी बुद्धि।

७ काग-काक-कौएका दृष्टान्त इस प्रकार है-बेन्नातटमें एक बौद्ध भिक्षुने किसी जैनसे पूछा कि अजी! तुम्हारे देव सर्वज्ञ हैं और तुम उनके भक्त हो तो कहो कि इस गाँवमें काग (कौए) कितने हैं? इसपर वह आर्हतमक्त सोचने लगा कि यह शठ है सरलतासे केवल समझनेवाला नहीं है, वास्ते ऐसाही उत्तर देना चाहिए। इस प्रकार सोचके वह बोला कि साठ हजार काग इस गाँवमें रहते हैं, अगर कभी इनमेंसे कुछ बाहर जाते हैं तो कम हो जाते हैं और जब कुछ बाहरसे मेहमान आते हैं तो बढ़ जाते हैं। बौद्ध भिक्षु इसकी जाँच असाध्य जानके सिर खुजलाता हुआ चुपचाप चला गया। यह हुआ श्रावककी औत्पत्तिकी बुद्धिका दृष्टान्त।

८ उच्चार-मलपरीक्षा—उदाहरण इस प्रकार है-किसी शहरमें एक ब्राह्मण रहा करता था। उसकी स्त्री सुन्दरता व नौजवानीके कारण अधिक तासे काममें उन्मत्त रहा करती थी। एकदिन वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ देशान्तरको जा रहा था रास्तेमें ब्राह्मणको एक धूर्त मिल गया और ब्राह्मणीके साथ कुछ बात करके उसने उसको अपने प्रेममें खींच लिया। कुछ दूर जाकर धूर्तने ब्राह्मणसे विवाद करना शुरू किया और बोलने लगा कि यह स्त्री मेरी है, वास्ते इधर मत आओ। तब ब्राह्मण बोला-अजी! नहीं यह तो मेरी स्त्री है। विवाद बढ़ जानेसे दोनों न्याय करानेके लिए राजकुलमें पहुँचे। अधिकारियोंने दोनोंका मामला समझकर दोनोंको अलग २ कर दिए और उनसे पूछा कि तुमने कल क्या खाया था? ब्राह्मणने कहा-मैं अपनी स्त्रीके साथ कल तिलका मोदक खाया था, धूर्तने कुछ और ही कहा जब विरेचन देकर परीक्षा की गई तो ब्राह्मणका कथन सत्य निकला। तब उसी समय न्यायाधीशने ब्राह्मणको उसकी स्त्री दिला दी और धूर्तको दण्ड देकर निकाल दिया।

९ गय-गज (हाथी)-से बुद्धि परीक्षाका उदाहरण इस प्रकार है-वसंत-पुरके राजाने अतिशयबुद्धिसम्पन्न मन्त्रीको पानेके लिए चतुष्पथ (चौक) में आलानस्तम्भपर एक हाथी बंधवा दिया और साथही यह घोषणा करवाई कि इस हाथीको जो तोल देगा उसको राजा बड़ी वृत्ति (बख्शीस) देगा।

घोषणाको सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुषने उसको तोलना स्वीकार किया। हाथीको नौकापर चढाके एक तालावमें ले गए और हाथीके वजनसे नौका जितनी (जहाँतक) पानीमें डूबी थी वहाँतक रेखा खींच दी गई, फिर हाथीको नौकासे बाहर कर उसमें बडे २ उतने पत्थर भर रक्खे जितनेसे नावका रेखांकित भाग डूब जाय। इतना करनेके बाद उन पत्थरोंको तोललिए और हाथीका भी उसके अनुसारही तोल बता दिया गया। राजा उसकी इस बुद्धिमानीपर बडा प्रसन्न हुआ तथा अपने सब मन्त्रियोंमें उसको प्रधान-मन्त्रीका पद दे दिया।

१० घर्षण-भंडन (अकीर्ति)का उदाहरण इस प्रकार है—जैसे एक आदमी राजाका बहुत मुंहलगा हुआ था, उसके पास राजा अपनी रानीकी तारीफ किया करता। एकदिन राजाने कहा कि मेरी रानी पूर्ण चतुर व आज्ञाकारिणी है। मुंहलगेने कहा-महाराज! आज्ञाकारिणी तो होगी किन्तु अपने मतलबके लिए। आपको यदि शंका हो तो कलही परीक्षा करके देख लीजिए, रानीजीसे कहिए कि मैं एक नवीन रानी बनाना चाहता हूँ और उसीके लडकेको राजपद दूंगा, मेरी यह इच्छा तुमको पसंद हो तो मैं ऐसा करता हूँ। राजाने इसी तरह दूसरे दिन रानीसे कहा। रानीने कहा-देव! अगर आप दूसरा सम्बन्ध करना चाहते हैं तो भले करिये, किन्तु राज्यके उत्तराधिकारी तो वही रहेंगे जो रहते आए हैं, इसमें दखल नहीं हो सकता। इस बातपर राजा कुछ मुस्कुराया। जब रानीने आग्रहपूर्वक मुस्कुराहटका कारण पूछा तो मालूम हुआ कि अमुक मुंहलगेने जो बात कही वह सत्य निकली। सब अपने मतलबकी आज्ञा पालती हैं। रानीने क्रुद्ध होकर उस मुंहलगेको देशनिकालेका दण्ड दे दिया। अब तो वह चिन्तामें पडा और सोचने लगा कि क्या करना चाहिए? आखिर बुद्धिसे एक उपाय निकाला। बहुतसे जूतोंकी एक बडी गठडी बनाली और गठडी लिये रानीसे मिलने गया। वहाँ जाके बोला कि देवि! अब मैं देशान्तर जा रहा हूँ। रानीने कहा-अरे! यह जूतोंकी गठडी किसलिये उठाली है? वह बोला देवि! इन जूतोंसे जहाँतक जा सकूँगा जाऊँगा व आपकी अकीर्ति फैलाऊँगा। रानीने अपवादके भयसे तुरन्तही बहिष्कारके हुक्मको रद्द करवा दिया और उसे रोकलिया। यह उस मुंहलगेकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।[1]

११ गोल-गोलकीका उदाहरण, जैसे-किसी बालकके नाकमें लाखकी एक गोली घुसगई थी। जिससे बालकके मांबाप अत्यन्त आतुर हो गए और उसको एक सुवर्णकारके पास ले गए। सुवर्णकारने अपने बुद्धिबलसे लोहमय एक बारीक शलाकाके अग्रभागको आगमें तपाकर उससे धीरे २

---

१ यहां टीकागत उदाहरण अश्लील होनेसे कुछ परिवर्तनके साथ दिया गया है। -सम्पादक

सावधानीपूर्वक उस गोलीको थोड़ीसी गरम करके सर्वथा निकाल ली। यह सुवर्णकारकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१२ खंभ-स्तम्भ-का उदाहरण, जैसे-किसी योग्य मन्त्रीकी तलाशमें एक राजाने शहरके बड़े तालाबके बीच एक स्तम्भ लगवाया और ऐसी घोषणा करवाई कि जो किनारेपर खड़े होकर इस स्तम्भको डोरीसे बांधदेगा उसको राज्यकी ओरसे लाख रुपये इनाम मिलेंगे। इस प्रकारकी घोषणा सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुषने ऐसा करना कबूल करलिया। उसने किनारेपर एक कील गढ़वादी तथा डोरीको उससे बांधकर चारों किनारे डोरीको लिये हुए घूम आया। इससे वह मध्यका स्तम्भ डोरीसे बंधगया। उसकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न होकर राजा भी उसको अपना मन्त्री बनालिया। यह उस पुरुषकी स्तम्भबन्धनकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१३ खुड्डग-क्षुल्लक (बालक)का उदाहरण जैसे-किसी नगरमें अतिकुशल कर्मा एक परिव्राजिका रहती थी उसने राजाके पास यह प्रतिज्ञा की कि मैं सबकुछ कर सकती हूँ। मुझे कोई भी कलामें पराजित नहीं कर सकता। इस पर राजाने घोषणा करवा दी कि अगर कोई अपनेको श्रेष्ठ कलाकार समझता हो तो कलामें इस परिव्राजिकाको जीत ले मैं उसे बहुत इनाम दूंगा। भिक्षाके लिये घूमते हुए किसी क्षुल्लकने घोषणा सुनी और राजासे निवेदन किया कि यह। मैं परिव्राजिकाको हरा दूंगा। किन्तु अपराधकी क्षमा मिलनी चाहिये। राजाने उसको खुशी इजाजत देदी। इसपर परिव्राजिका मुंह बनाती हुई बोली कि यह छोकरा है मुझे क्षुल्लक क्या जीतेगा! परिव्राजिकाके ऐसा कहनेपर क्षुल्लकने अपनी लंगोट हटाली और समयानुसार नृत्य व अनेकविध अद्भुत आसन कर दिखाये फिर परिव्राजिकासे बोला कि अब आप अपनी कुशलता दिखलाइये इसी तरह सुन्दर आसन आदि होने चाहिए। ऐसा करनेमें असमर्थ परिव्राजिका हार मानकर लज्जित हो घर चली गई। लोगोंने क्षुल्लककी जीत घोषित करदी यह उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१४ मग्ग-मार्ग-का उदाहरण, जैसे—कोई पुरुष अपनी भार्याको लेकर वाहनपर दूसरे गांव जा रहा था। बीचमें किसी जगह शरीरचिन्ताके लिए उसकी स्त्री नीचे उतरी और कुछ दूर जाकर शौचनिवारण करने लगी। इसी बीचमें एक उस वनमें रहनेवाली व्यन्तरी उसके पुरुषके सौन्दर्य आदि पर मुग्ध हुई उसी स्त्रीका रूपधर जल्दीसे आकर वाहनपर आरूढ हो गई। जब वह असली स्त्री शरीरचिन्ता निवारण कर वाहनके पास आई तो अपने सरीखे रूपवाली किसी अन्य स्त्रीको वाहनपर बैठी देखी। व्यंतरीने उसको पास आई देखकर पुरुषसे कहा कि यह कोई व्यंतरी मेरासा रूप बनाकर

---

१ इसमें दूसरा कथानक ऐसा उदाहरण है [illegible] दिया है—सम्पादक

तुम्हारे पास आना चाहती है, इसलिए वाहनको जल्दी चलाओ। पुरुषने वैसाही किया। इधर वह स्त्री रोती चिल्लाती हुई पीछे पीछे आने लगी। उसके आर्त्तस्वरको सुनकर वह पुरुष भी विचारमूढ बनगया और वाहनको धीरे २ चलाने लगा। तब उस मनुष्य स्त्री व व्यंतरीका परस्पर कलह शुरू हो गया, गांवतक दोनों लडती झगडती आईं। गांवमे आकर दोनोंने न्यायालयमें फरियाद की और अभियोग चला। न्यायाधीशने पुरुषसे पूछा कि तुम्हारी स्त्री कौन है? किन्तु वह निर्णय नहीं कर सका, तब न्यायाधीशने अपने बुद्धिबलसे पुरुषको दूर हटाकर स्त्रियोंसे कहा कि तुम दोनोंमेसे जो पहले अपने हाथसे इसका स्पर्श करेगी उसीका यह पुरुष होगा, दूसरीका नहीं। व्यंतरी इस निर्णयपर बहुत प्रसन्न हुई और तुरंतही दिव्य भावसे हाथको फैलाकर पुरुषका स्पर्श करलिया। अधिकारियोंने सत्य समझकर व्यन्तरीसे कहा कि तुम इसकी असली स्त्री नहीं हो, तुमने अपनी दैवी मायासे इस पुरुषको छला है, अब जाओ। यह पुरुष इसी मनुष्य स्त्रीका है। ऐसा कहके उस पुरुषको मनुष्य स्त्रीके साथ करदिया। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि है।

१५ इत्थी–स्त्री–का उदाहरण इस प्रकार है—मूलदेव और कंडरीक नामके दो मित्र कहीं साथ जा रहे थे। इधर कोई अन्य पुरुष अपनी भार्याके साथ उसी मार्गसे जाने लगा। दूरमें रहा हुआ कंडरीक उसकी स्त्रीके रूपको देखकर मुग्ध होगया, उसने मूलदेवसे कहा कि अगर इस स्त्रीसे तुम मुझे मिलाते हो तो मैं जीऊँगा, नहीं तो मैं मरता हूँ। तब मूलदेव बोला कि मित्र! घबराओ मत, मैं जरूर तुमको इससे मिलादूँगा। ऐसा विचारकर दोनों जल्दीसे लक्षित न हो इस प्रकार दूर चले गए। कंडरीकको एक वनकुंजमें बिठाकर मूलदेव स्वयं रास्तेपर आके खडा रहा, पीछेसे जब वह पुरुष स्त्रीके साथ वहाँ आया तब मूलदेवने कहा–भो महापुरुष! इस वनकुंजमें मेरी स्त्रीको प्रसव हुआ है अत· क्षणभरके लिए तुम अपनी स्त्रीको वहाँ भेजो। उसने स्त्रीको जानेके लिए कहदिया वह कंडरीकके पास गई और कुछ समय ठहरके चली आई, यह मूलदेवकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१६ पइ—पतिका दृष्टान्त, जैसे–किसी स्त्रीके दो पति थे, और वह दोनोंपर प्रेम करती थी। लोगोंको आश्चर्य होता था कि यह दोनों पतिको कैसे प्रसन्न रखती है। राजाने भी परम्परासे यह बात सुनी और आश्चर्यपूर्वक मंत्रीसे पूछा। मंत्रीने कहा देव! ऐसा नहीं हो सकता, इसमें कुछ विशेष कारण मालूम पडता है। राजाने कहा–वह कैसे मालूम होगा? मंत्री बोला–महाराज! इसका रहस्य जिस प्रकार जल्दी मालूम हो सके ऐसा यत्न करूँगा। एक दिन मंत्रीने उस स्त्रीको लेख भेजा, उसमें लिखा था कि तुम्हारे दोनों पतियोंको दो गाँवमें भेजो। एकको पूर्वकी ओर व दूसरेको पश्चिमकी तरफ अमुक गांवमें, साथही उनको यह कह देना कि उसी दिन पीछे घर चले आवें।

मंत्रीका हुक्म पाकर उस स्त्रीने जो अपना अधिक प्रिय था उसको पश्चिमकी ओर भेजा और कम प्रेमवालेको पूर्वकी ओर। उसके आते आते दोनों समय सूर्य सामने होता था। मंत्रीने इसपरसे निर्णय किया कि पश्चिमकी ओर भेजा गया अधिक प्रेमपात्र है और पूर्वकी ओर भेजा हुआ इससे कम प्रिय है। राजासे जब उक्त निर्णय सुनाया तो उसने स्वीकार नहीं किया तथा बोला कि किसी एकको पूर्वमें और दूसरेको पश्चिममें भेजना अनिवार्य था क्यों कि हुक्म ऐसाही था इसलिये इससे कुछ विशेषता नहीं समझी जा सकती। तब मंत्रीने फिर खत भेजकर कहलाया कि तुम्हारे दोनों पतिको एकसाथ उन गाँवोंमें भेजो। स्त्रीने वैसाही किया। मंत्रीने फिर दो आदमी उस बाईके पास रक्खे जो एकसाथ दोनोंका कुशल समाचार उस बाईको आकर सुना दिये, थोड़ी दूर जाकर दोनों एकसाथ आए और तुम्हारे दोनों भर्तारोंको कुछ पीड़ा होती है ऐसा कहके बाईको बुलाने लगे तब वह मंडपके अनुकूल निवेदक पुरुषसे बोली अजी। यह तो सदाही ऐसे रहते हैं, दूसरे बहुत कोमल प्रकृतिक होनेसे आतुर होंगे इसलिए मैं उनकी तरफ जाती हूं ऐसा कहके वह उधर गई। खबर पाकर मंत्रीने राजासे सारा हाल निवेदन करदिया जिससे राजा उसकी बुद्धिमत्तापर बहुत खुश हुआ। यह मंत्रीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१७ पुत्ते-पुत्र-का दृष्टान्त इस प्रकार है—एक महाजनके दो स्त्रियाँ थीं जिनमें एक पुत्रवती और दूसरी अपुत्रा थी। किन्तु उस बालकका वह भी अच्छा प्यार करती थी इससे उस बालकको यह निश्चय नहीं हो सका कि मेरी असली माँ कौन है। कुछ कालके बाद जब वह महाजन दोनों स्त्रियें तथा पुत्रको लेकर परदेश गया और जातेही मरगया तब दोनों स्त्रियोंमें पुत्रके लिये कलह होने लगा, एक बोली कि यह लड़का मेरा है अतः घरकी स्वामिनी मैं हूं। दूसरी बोली-अरी। तू कौन है। यह लड़का तो मेरा है, इसलिए गृहस्वामिनी मैं हूं। इस प्रकार दोनोंमें कलह करते २ बात राजकुलमें गई मंत्रीने बुद्धिबलसे इसका निर्णय करना चाहा, और अपने आदमीको बुलाकर कहा कि इनके सब धनको लाकर दो भागमें बांट दो वैसेही करवतसे लड़के के भी दो हिस्से करदो फिर दोनोंका आधा २ दे देना। मंत्रीकी इस बातको सुनकर पुत्रकी सच्ची माँ मरनेपर जैसे किसीने वज्रप्रहार किया हो उस तरह व्याकुल होकर बोली कि महाराज। मुझे पुत्र नहीं चाहिए यह उसका है उसीको दे दो किन्तु काटो (मारो) मत भले यही दूसरी बाई घरकी मालिकन हो मुझे कुछ दुःख नहीं है मैं तो दूसरेके यहाँ नौकरी करती हुई भी इस बालकको जीवित देखकर अपने मनमें संतोष मानूंगी, किन्तु बिना बच्चेके घरमें मैं नहीं रह सकती। दूसरीने कुछ नहीं कहा। इसपर मंत्रीने पुत्रदुःखसे दुःखी उस बाईको सच्ची माता समझकर निर्णय दिया कि यह पुत्र इसीका है अतः घरकी स्वामिनी यही होगी। तथा दूसरीको तिरस्कार कर निकाल दी यह अमात्यकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

टीका गाथार्थ ७२—मधुच्छत्र १७ मुद्रिका १८ अङ्क १९ नाणक २० भिक्षुक २१ चेटक (बालक) २२ और निधान २३ शिक्षा २४ अर्थशास्त्र २५ बडी इच्छा २६ सौ हजार २७। इन सबोंके दृष्टान्त निम्नप्रकार हैं, जैसे—

१७ महुसिक्थ-मधुसिक्थ-मधुच्छत्र—किसी पहाडी छोटी नदीके दोनों किनारेपर कुछ धीवर (मछुए) रहते थे। दोनों (किनारेवालो) में जातीय सम्बन्ध होनेपर भी आपसमे मनमुटाव था। इसलिए दोनों किनारेवालोंने अपनी २ स्त्रीको पर तीर जानेकी मनाई करदी थी। किन्तु धीवरलोग जब अपने २ व्यवसायके लिए बाहर चले जाते तब उनकी स्त्रियाँ एक दूसरेके यहाॅ आती जाती थी। एक धीवरीने एकदिन उस पारसे अपने घरके पास कुंजमें मधुच्छत्र देखा। दूसरे दिन उसका पति जब मधु खरीदने लगा, तब उसकी स्त्रीने कहा कि मधु मत खरीदो चलो, मैं तुम्हे अपने घरके पासही मधुच्छत्र दिखा देती हूँ। ऐसा कहकरके वह अपने पतिको साथ लेकर छत्र दिखाने गई। किन्तु ढूंढनेपर भी उसे मधुच्छत्र दिखाई नहीं पडा, तब वह विस्मितसी होकर बोल उठी कि सामनेके तीरसे बराबर दिखता है वहां चलो देख आवे। धीवर भी उसके साथ दूसरे किनारे गया, वहां उस स्त्रीने निषिद्ध घरके पासही खडी रहकर मधुच्छत्र दिखाया। धीवरने अनायासही यह समझ लिया कि मेरी स्त्री इस निषिद्ध घरमें आती जाती है। यह उस धीवरकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१८ मुद्दिय-मुद्रिका-का दृष्टान्त-किसी नगरमे एक पुरोहित सर्वत्र सत्यवादीके नामसे प्रसिद्ध था, लोगोंको विश्वास था कि यह समय बीत जाने पर भी दूसरोंका निक्षेप (ठेव) नहीं पचाता किन्तु पीछे दे देता है। इसी विश्वासपर एक गरीब आदमी उसके पास अपनी ठेव रखकर देशान्तर चला गया। विदेशमे बहुत समय बिताकर जब वह अपने घर जाने लगा तो पुरोहितजीसे अपनी ठेव मांगी। किन्तु पुरोहितने एकदम अस्वीकार कर दिया व कहने लगा कि तुम कौन हो? तुम्हारी ठेव कौनसी व कैसी थी? इस पर वह गरीब अपनी ठेव गुम होते देख बहुत चिन्तातुर हुआ। दूसरे दिन राजाका प्रधान कहीं बाहर जा रहा था। उसको जाते देखकर उसने कहा कि महानुभाग! मेरी हजार रुपयोंकी नोली पुरोहितके पास रक्खी हुई है, कृपया वह मुझे दिलादो। बडा उपकार होगा। सारा हाल समझकर प्रधानको उसपर दया होगई। उसने राजासे कह दिया, तब राजाने ठेव रखनेवाले पुरोहितको बुलाया और कहा कि तुम्हारे यहाँ इसकी जो ठेव रक्खी हुई है, वह पीछे इसे लौटा दो। पुरोहितने जबाब दिया कि राजन्! मैंने इसका कुछ लियाही नहीं तो देऊँ क्या? इसपर राजा चुप रहगया। पुरोहितके घर लौट जानेपर राजाने उस ठेव रखनेवाले गरीबको पूछा कि सचसच बोल तूं उसके यहाँ किसके सामने व कब ठेव रक्खी थी? इसपर उसने देनेका स्थान समय व साक्षी बता दिए।

तब राजाने निर्णय करना चाहा और एकदिन उस पुरोहितके साथ खेल खेलना शुरू किया। धीमाकमसे अपनी और पुरोहितकी अंगूठी अदलबदल करली। पुरोहितसे छिपकर उसकी अंगूठी एक आदमीको दी और उसके द्वारा पुरोहितानीको कहलाया कि पुरोहितजीने उस गरीबकी ठेवमें रक्खी हुई नोली (थैली) मांगी है और सबूतके लिए यह अपनी अंगूठी भेजी है। इसपर विश्वास कर पुरोहितानीने नोली भेजदी। राजाने दूसरी अनेक नोलियोंके बीच उस थैलीको रखकर ठव रखनेवालेसे अपनी नोली लेनेको कहा। उसने पहचानकर अपनी नोली उठाली। तब राजाने उसे सच्चा समझकर देश निकाली आज्ञा दी और पुरोहितको कठोर दण्ड दिया। यह राजाकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१९ अंक-अङ्क-का दृष्टान्त, जैसे-एक आदमीने किसी सेठके पास हजार रुपयोंसे भरी एक नोली रक्खी। उस सेठने नोलीके नीचेका कुछ भाग काट कर उससे असली रुपये निकाल लिए तथा बदलेमें नकली रुपये उसमें भरके रखे मामको सिलाकर ज्योंका त्यों रखदिया। पीछे जब ठेव रखनेवालेने अपनी चीज मांगी तो सेठने उसे नोली देदी। उसने जब खोलकर देखी तो पता चला कि असल रुपये गुम हैं। आखिर उसने राजाके पास अभियोग चलाया। न्यायाधीशने पूछा कि तुम्हारी नोलीमें कितने रुपये रखे जा सकते हैं? उसने जवाब दिया-हजार रुपये। न्यायाधीशने परीक्षा की तो जितना भाग उस नोलीका कटा था उतनेही रुपये बाकी बचे थे शेष सभी समामए। इसपर न्यायाधीशको उसकी बात सच्ची मालूम पड़ी। अभियुक्तसे अनुशासनपूर्वक उसके रुपये दिलादिए। वह खुशी २ घर चला गया। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२० नाण-नाणक-दृष्टान्त निम्न प्रकार है-कोई वणिक् किसी सेठके पास अपनी मोहरोंसे भरी हुई एक थैली रखके देशान्तर गया। कुछ समय बीतनेपर थैली रखनेवाले उस सेठने थैलीसे उत्तम सुवर्णमय मुद्राओंको निकालकर उतनीही संख्यामें हलके कमकीमती-सोनेकी मुद्राएं उसमें भरदी और थैली उसी तरह सीदी। कई दिनोंके बाद वह थैली रखनेवाला वणिक् विदेशसे घर आया और सेठसे अपनी थैली मांगी। सेठने भी उसको थैली देदी। उसने भी अच्छीतरह देखा तो थैली वही मालूम हुई, किन्तु घर आकर जब उसको खोला तो पता चला कि इसमें असली सुवर्णमुद्राएँ नहीं हैं, जो मेरी पहले थीं उनकी जगह नकली मुद्राएँ रक्खी हुई हैं। उसने सेठसे आकर कारण पूछा तो सेठने जवाब दिया कि तुमने जो मुझे रखनेको दी थी यही थैली हमने पीछे दी है। असली नकली हम नहीं जानते। इसपर उसने न्यायालयमें फरियाद की। न्यायाधीशने दोनों अभियोक्ता व अभियुक्त-को बुलाकर उनके बयान सुने। सुननेके बाद न्यायाधीशने उस वणिक्से पूछा

कि तुमने शेठके पास थैली किस वर्ष व किस दिन रक्खी थी ? उसने वह वर्ष व वह दिन बता दिया। फिर मुद्राओंपर बननेका काल देखा तो उसके बादका निकल आया। उसी समय न्यायाधीशने शेठसे कहा कि ये मोहरे इसकी नहीं हैं क्योंकि नवीन डाली हुई हैं, अतः इसकी मोहरे जो असली हैं वे इसे देदो। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२१ भिक्खु-भिक्षु-दृष्टान्त भावना जैसे—किसी साहुकारने एक मठाधिपति भिक्षुकके पास एक हजार मोहरे ठेवरूपमे रक्खीं। कालान्तरमे जब वह भिक्षुकके पास मांगनेको गया तो भिक्षुक आजकल्हका बहाना करने लगा। तब साहुकारने कुछ जुआरियोंसे मैत्री की और भिक्षुकसे अपनी ठेव लेनेकी बात कही। जुआरियोंने कहा कि हम तुम्हें भिक्षुकसे सब रुपये दिलादेंगे। ऐसा कहकर वे लोक किसी गेरुए वस्त्रवाले साधुका वेष बनाकर एक बडी सोनेकी खूंटी लिए उस भिक्षुकके पास गए और बोले कि हम लोग यात्रामे जाते हैं, आप बडे विश्वासपात्र हैं इसलिए यह सुवर्ण खूंटी हम आपके पास रखजाते हैं। इसप्रकार ये कह रहे थे इसी बीचमे वह साहुकार आगया और बोला महाराज! मेरी रकम दे दीजिए। भिक्षुकने सुवर्ण खूंटीकी लालचसे उसी समय उसकी ठेव-रकम देदी। वे जुआरी कुछ समय विचारकर बोले-महाराज! कुछ यहाँका जरूरी काम आगया है इसलिए अभी हमको नहीं जाना है ऐसा कहके वे सुवर्ण खूंटी लिए चले गये। यह जुआरीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२२ चेडगनिहाणे-चेटक और निधान-दृष्टान्त इस प्रकार है-किसी गांवमें परस्पर भिन्न स्वभाववाले दो पुरुष रहते थे। संयोगवश दोनोंकी विशेष परिचयसे मैत्री होगई। एकदिन एकको किसी जगह निधान प्राप्त हुआ। उसी समय मायावी मित्रने उससे कहा कि मित्र ? आजका मुहूर्त ठीक नहीं है कल्ह शुभमुहूर्तमें अपने इस निधानको लेगे। दूसरेने सरल मनसे वैसा स्वीकार करलिया। इधर मायावी मित्रने रातमे उस जगह आकर निधान लेलिया और वहाँ कोयले डालदिए। दूसरे दिन दोनों साथ आकर देखते हैं तो निधानकी जगह कोयले मिले। तब मायावी कपटपूर्वक रोने लगा, और बोला कि हा! हम भाग्यहीन हैं जिसलिए कि देवने निधान की जगह हमको कोयले दिखाये। एक तरहसे उसने आंखे देकर हमसे छिनली हैं। ऐसा कहते हुए वह वारंवार दूसरेकी ओर देखने लगा। दूसरेने उसकी नकली चिन्तासे असलियत समझ ली और आकारको बदलकर कहा-मित्र! कुछ चिन्ता मत करो, गया हुआ निधान कुछ दुःख करनेसे नहीं आता, चलो अपने भाग्य ऐसेही हैं। इस प्रकार शान्त होकर दोनों अपने २ घर गए। इधर सच्चाईको प्रकट करनेके लिये बुद्धिबलसे दूसरेने उस मायावीकी लेप्यमय प्रतिमा बनाई और दो पालतू बन्दर भी रक्खे। प्रतिदिन प्रतिमाके हाथ शिर व स्कन्ध आदि अंगोंपर उन बन्दरोंके खाने योग्य वस्तुएँ रख देता और खानेके लिये बन्दरोंको छोड देता।

भूख प्यासले पीड़ित बन्दर भी वहाँ आकर उस प्रतिमाके देहपरसे भक्ष्य पदार्थ खाया करते। कई दिनोंसे उनकी यह शैली बन गई। एकदिन किसी पर्वको लेकर दूसरे मित्रने मायावीके दोनों पुत्रोंको अपने यहाँ भोजनके लिए निमन्त्रण दिया और बड़े प्रेमसे दोनोंको अच्छीतरह भोजन कराके छलपूर्वक यहीं कहीं दूसरी जगह छिपादिए। दूसरे दिन जब बालक नहीं आए तब मायावी मित्र उनकी खोज करते मित्रके यहाँ आया और पूछा—दोनों लड़के कहाँ हैं? यह बोला—मित्र! बड़ा खेद है कि वे तुम्हारे दोनों पुत्र बन्दर हो गए। मायावी घरमें गया तब दूसरे मित्रने उन पालतू बन्दरोंको छोड़ दिये वे किलकिलाहट करते आए और इसके अंगोंपर आ लगे व कुछ चाटने लगे। इसपर दूसरा बोला—मित्र! देखिए ये आपके प्रति अपना प्रेम पुत्रवत्ही दिखा रहे हैं। तब मायावी बोला—मित्र! क्या मनुष्य भी तत्कालमें बन्दर हो सकते हैं? दूसरा बोला—भाई! जैसे अपने कर्मके फेरसे निधान कोयला होगया ऐसेही तुम्हारे कर्मकी प्रतिकूलतासे तुम्हारे पुत्र बन्दर हो गए हैं। मायावीने सोचा कि अहो! इसने जरूर मेरा निधान जान लिया है अब अगर चिल्लाता हूँ तो राजकुलमें झगड़ा होगा और पुत्र भी नहीं मिलेंगे, ऐसा समझकर उसने निधानका सब हाल कहकर उसको आधा हिस्सा दे दिया। दूसरेने भी उसके पुत्र मिला दिये। यह चेटक और निधान विषयक उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

११ शिक्षा व–शिल्प–शिष्यका दृष्टान्त जैसे—धनुर्वेदमें कुशल एक आचार्य किसी नगरमें आया और कुछ धनियोंके पुत्रोंको पढ़ाने लगा। बालकोंसे उस कलाचार्यने बहुतसा धन प्राप्त करलिया। इसपर सेठने सोचा कि बालकोंने इसको बहुतसा धन दिया है, अतः जब यह यहाँसे जावेगा तो इसको मारके सब धन ले लेना चाहिये। कलाचार्यने किसी तरह यह हाल जानलिया और दूसरे गाँवमें रहे हुए अपने बन्धुओंको एसी खबर दी कि अमुक रातको मैं गोबरके पिण्डोंको नदीमें फैंकूँगा (गिराऊँगा), तुम उनको ले लेना। उनके स्वीकार कर लेनेपर कलाचार्यने द्रव्यके साथ गोबरके पिण्ड धूपमें सुखालिये। फिर शठक लड़कोंसे कहा कि अमुक तिथिपर्वमें हम स्नान व मंत्रके साथ नदीमें गोबरके पिण्डको गिराते हैं, ऐसी हमारी कुलविधि है। इसपर बालकोंने भी कहा ठीक है, जैसी आपकी इच्छा हो। फिर कलाचार्यने उन बालकोंके सहयोगसे उस रातमें मन्त्रपूर्वक गोबरके पिण्डोंको नदीमें फेंकदिये। उधर वे गोबर पिण्ड बन्धुओंने लेलिए। फिर कुछ दिनोंके बाद उन बालकों व सेठ आदिको कहकर सिर्फ देहरक्षाके वस्त्रमात्र लिए हुए कलाचार्य अपने गाँवको चला। सेठने भी देखा कि इसके पास तो कुछ नहीं है, फिर क्यों मारना? इसप्रकार उस कलाचार्यने तन व धन बचा लिए। यह कलाचार्यकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२४ अत्थसत्थे–अर्थशास्त्रका दृष्टान्त, जैसे–एक शठको दो स्त्रियाँ थी, उनमें एकको पुत्र नहीं था और दूसरीको था, किन्तु विना पुत्रवाली भी उस लडकेको वहुत प्यार करती थी, जिससे वह बालक दोनों मांमें कुछ भेद नहीं समझता। एकवार वह शेठ व्यवसायके लिए घूमता हुआ श्रीसुमतिनाथ स्वामीकी जन्मभूमि हस्तिनापुरमें पहुँचा और संयोगवश वहीं मरगया तव दोनों पत्नियोंमें सम्पत्तिके लिए कलह होने लगा, एक कहती कि यह मेरा पुत्र है अतः गृहकी स्वामिनी मैं हूँ। दूसरी बोलती–नहीं गृहस्वामिनी मैं हूँ क्यो कि यह मेरा पुत्र है। विवाद वढते २ राजकुलमें गया। महारानी मङ्गला-देवीको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने दोनोंको अपने पास बुलाकर कहा कि कुछ दिनोंके वाद मुझको पुत्र होगा और वह वडा होकर इस अशोकवृक्षके नीचे बैठा हुआ तुम्हारा न्याय करेगा, तबतक तुम दोनों सुख-पूर्वक यहाँ रहो। और अपने पुत्रको हमारे अधीन कर दो, न्याय होनेके बाद जिसका होगा देदिया जावेगा। जिसका पुत्र नहीं था उसने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे महारानीजी सत्य समझ गई और पुत्रवालीको पुत्र दे दिया तथा गृहस्वामिनी वना दी। झूठा वाद करनेसे दूसरी तिरस्कारपूर्वक हटा दी गई। यह महारानीजीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२५ इच्छा य महं–इच्छा महत्–का दृष्टान्त, जैसे–एक शेठानीके पतिका देहान्त हो गया। जब व्याज आदिपर दिए हुए उसके रूपये लोगोंने देने बन्द कर दिये, तब उसने अपने पतिके मित्रसे रूपये वसूल करानेको कहा। उसने जवाव दिया कि यदि प्राप्त द्रव्यमेसे मुझे भी कुछ दो तो मैं वसूल करा सकता हूँ। शेठानीने कहा–जैसी तुम्हारी मर्जी हो मैं वैसाही करूँगी। इसपर उसने लोगोंसे सब रकम वसूल कर ली और उसका थोडा भाग शेठानीको देना चहा। किन्तु शेठानी इसपर राजी न हुई और उसने राजकुलमें फरियाद की। तब अधिकारियोंने वसूल किया हुआ सब द्रव्य मँगाकर दो भागोंमे विभक्त कर दिया, एक भाग बडा और दूसरा छोटा। फिर वसूल करनेवालेसे पूछा कि तूं कौनसा भाग लेना चाहता है? वह बोला–बडा भाग। तब न्यायाधीशने अक्षरार्थका विचारकर कहा कि बडा भाग इसका भी दूसरा हिस्सा तुम्हारा है, इस प्रकार न्यायाधीशने मामला निपटा दिया। यह अधि-कारिओंकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२६ सयसहस्से–शतसहस्रका दृष्टान्त इसप्रकार है–किसी परिव्राजकके पास चांदीका एक वडा भांड था और साथही उस परिव्राजकमें यह भी खुबी थी कि जिसको वह एकवार सुनलेता उसे धारण किये विना नहीं छोडता। इससे बुद्धिका उसे अहंकार होगया और उसने ऐसी घोषणा करदी कि जो कोई मुझे कुछ अश्रुतपूर्व बात सुना दे उसको मैं आपना यह रजतभांड दे दूँगा। किन्तु उसको कोई भी अपूर्व बात नहीं सुना सका क्यों कि सुन

लेनेके बाद अपनी धारणाशक्तिके बलपर वह सुनानेवालेको ज्योंका त्यों सुना देता और कहता यह तो मैंने पहले ही सुनी है। किसी सिद्धपुत्रने यह प्रतिज्ञा सुनी और कहा कि मैं परिव्राजकजीको अपूर्व बात सुना दूंगा, बशर्ते कि यह प्रतिज्ञापर दृढ़ रहें।

यह बात राजाके कानतक पहुँची और निर्णयके लिए राजभवनही स्थान चुना गया। हजारों आदमी दर्शकके रूपमें इकट्ठे होगए, परिव्राजकजी भी वहाँ आए और राजाके सामने कार्यक्रम चालू हुआ। सिद्धपुत्रने आनेका श्लोक पढ़ा—

गाहा—तुज्झ पियामह पिउणो, धारेइ अणूणयं सयसहस्सं।
जइ सुयपुव्व दिज्जउ, अह न सुयं खोरयं देसु॥ १॥

जिसका भाव यह है कि—तेरा पिता मेरे पिताके एक लाख रुपये धारता है, अगर पहले सुना है तो वह द्रव्य चुकाओ अगर नहीं सुना है तो प्रतिज्ञाके अनुसार मुझे चाँदीका माँड दो। इसपर परिव्राजकको पराजित होकर वह माँड देना पड़ा। *यह सिद्धपुत्रकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।*

ये औत्पत्तिकी बुद्धिके उदाहरण समाप्त हुए। अब आगे आकर शास्त्रकार वैनयिकी बुद्धिकी चर्चा करते हैं—

मूल—गाहा—७३

भरनित्थरणसमत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला।
उभओलोगफलवई, विणयसमुत्था हवइ बुद्धी॥ १॥

छाया—गाथा—७३

भरनिस्तरणसमर्था, त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतपेयाला (प्रमाणा)
उभयलोकफलवती, विनयसमुत्था भवति बुद्धिः॥ १॥

टीका—कठिन कार्यभारके निस्तरण-निर्वाह करनेमें समर्थ, तथा धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गके वर्णन करनेवाले सूत्र और अर्थका प्रमाण या सार ग्रहण करनेवाली तथा जो इस लोक और परलोक दोनोंमें फलदायिनी है वह विनयसे होनेवाली बुद्धि है। अर्थात् विनयसे उत्पन्न हुई बुद्धि कठिनसे कठिन प्रसंगको भी सुलझानेवाली और नीतिधर्म व अर्थशास्त्रके सारको ग्रहण करनेवाली होती है। इसीलिए यह दोनों लोकोंमें सुखदायिनी है। इसपर कुछ उदाहरण दिखाते हैं—

मूल—गाहा—७४

निमित्ते[1] १ अत्थसत्थे २ अ, लेहे ३ गणिए ४ अ कूव ५

---

1 स-भा. व.

अस्से ६ य। गद्दभ(ह) ७ लक्खण ८ गंठी ९ अगए १०
रहिऐ ११ य गणिया १२ य ॥ २ ॥

छाया-गाथा-७४

निमित्त १ अर्थशास्त्रे २ च, लेखे ३ गणिते च ४ (उदाहरणानि) कूपाश्वौ च ५, ६ गर्दभ ७ लक्षण ८ ग्रन्थ्य गदाः ९।१०, रथिकश्च ११ गणिका १२ च ॥ २ ॥

टीका—गाथार्थ-७४ निमित्त १, अर्थशास्त्र २, लेख ३, गणित ४, कूप ५, अश्व ६, गर्दभ ७, लक्षण ८, ग्रन्थि ९, अगद १०, रथिक और गणिका ११-१२ इन सब उदाहरणोंका कथारूपसे विशेष स्पष्टीकरण नीचे करते है—

१ निमित्ते-निमित्त का दृष्टान्त जैसे-किसी नगरमें एक सिद्धपुत्र अपने दो शिष्योंको निमित्तशास्त्र पढा रहा था। शिष्योंमें एक जो विनयसम्पन्न था वह गुरुके उपदेशको यथावत् बहुमानपूर्वक स्वीकार करता और बाद अपने चित्तमें विचार करते हुए जहाँ भी सन्देह हुआ तत्काल गुरुके पास जाकर विनयपूर्वक पूछ लेता। इस प्रकार निरन्तर विनय और विवेकके साथ शास्त्र पढते हुए उसने तीव्र बुद्धि प्राप्त कर ली। दुसरा इन गुणोंसे रहित होनेके कारण केवल शब्दज्ञानही मिला सका। एक दिन दोनों गुरुके आदेशसे किसी पासके गाव में जा रहे थे। मार्गमें किसी बडे जन्तुके चरण चिन्ह दिखाई देते थे। विनयी शिष्यने दुसरेसे पूछा कि बन्धु! ये किसके पाँव है? उसने कहा इसमें क्या पूछना? ये साफ हाथीके पाँवके चिन्ह दिखते है। विनयीने कहा-नहीं ऐसा नहीं हो सकता, ये हथिनीके चरणचिन्ह है, और वह हथिनी बांयी आंखसे काणी है तथा उसपर किसी बडे घरकी सधवा स्त्री बैठके जा रही है व एक दो दिनमेंही उसको बालक पैदा होगा क्योंकि उसके मास अब पूरे हो गये हैं। विनयीके ऐसा कहनेपर दूसरेने पूछा-अजी! यह किसपरसे समझते हो? विनयी बोला-ज्ञानका सारही विश्वास होना है, चलो आगे इसका निर्णय हो जायगा। ऐसा कहके दोनों उस गांवमें पहूँचे। जातेही देखते हैं कि गांवके बाहर तालावके किनारे किसी रानीका डेरा है। और हथिनी भी बॉयी आंखसे काणी है। इसी बीचमें एक दासीने आकर मंत्रीसे कहा कि स्वामिन्! राजाको पुत्रलाभ हुआ है, बधाई दीजिए। विनयीने ऐसा सुनकर दूसरेसे कहा कि क्यों बन्धु? दासीका वचन सुना? उसने कहा-हाँ, तेरी सब बात सच्ची है। फिर तालावमें हाथ पाँव धोकर दोनों विश्रामके लिए एक वटवृक्षके नीचे बैठे। उधरसे मस्तकपर पानीका घडा रक्खे हुए एक बुढिया जा रही थी उसने इन दोनोंकी आकृति व प्रकृति देखकर सोचा कि ये दोनों कोई विद्वान् है। अतः इनसे पूछना चाहिए

१ गणिया य रहिए य-त्ति-आ. म. वृत्ती।

कि मेरा देशान्तरमें गया हुआ पुत्र कब लौटेगा। ऐसा सोचकर पास गई और नम्रतापूर्वक पूछने लगी। उसी समय मस्तकसे गिरकर घड़ा फुकड़ी १ होगया तुरन्त दूसरा यह देखके बोल उठा-माँ! तेरा पुत्र घड़ेकी तरह मरगया है। इसपर विनयीने कहा-मित्र! ऐसा मत कहो! इसका पुत्र अभी घरपर आया हुआ है और बुढ़ियासे भी बोला कि माँ! घर जाओ अपने चिरबिछुड़े पुत्रका मुंह देखो।

विनयीकी बातसे प्रसन्न हुई बुढ़िया उसको आशीर्वाद देती हुई घर गई और उसी समय घरपर आए हुए पुत्रको देखा। पुत्रके प्रणाम करनेपर आशीर्वाद देकर बुढ़ियाने नैमित्तिकका कहा हुआ सब वृत्तान्त पुत्रसे कह सुनाया। फिर पुत्रको पूछकर कुछ रुपये व वस्त्रयुगल बुढ़ियाने विनयीको अर्पण किये। तब दूसरा सोचने लगा कि-अहो! गुरुने मुझे अच्छा नहीं पढाया है, अन्यथा जैसा यह जानता है, वैसा मैं क्यों नहीं जानता!। कार्य हो जानेपर दोनों गुरुके पास आए। गुरुके दर्शन करतेही विनयीने अञ्जलि जोडे हुए शिरको नमाकर आनन्दाश्रुपूर्वक गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया। दूसरा शैलस्तम्भकी तरह थोडा भी बिना नमे मात्सर्य धरता हुआ गुरुके सामने खडा रहा। तब उससे गुरु बोले-अरे! क्या आज प्रणाम भी नहीं करता? वह बोला-जिसको अच्छीतरह सिखाये हो वह प्रणाम करेगा हम पक्षपाती गुरुको प्रणाम नहीं करते। गुरु बोले-क्या तुमको अच्छा नहीं पढाया? इसपर उसने पहलेका सब हाल कह सुनाया। तब गुरुने विनयीसे पूछा-वत्स! तुमने यह सब कैसे जाना? कहो। वह बोला-गुरुदेव! मैंने आपकी कृपासे विचार करना शुरू किया कि हाथी के तो पाँव दिखतेही हैं किन्तु विशेष क्या है? फिर उसकी लघुशंकाको देखकर निश्चय किया कि ये हथिनीके पाँव हैं। दक्षिण बाजूके सब वृक्ष खाये हुए थे किन्तु बाँयी बाजूके नहीं, इससे यह समझा कि बाँयी आँखसे वह काणी है। साधारण मनुष्य हाथीकी सवारी नहीं कर सकता इससे निश्चय किया कि इसपर राजकीय मनुष्य है। वृक्षपर लगे हुए रंगीन वस्त्रके भागसे सधवा रानी और भूमिपर लघुशंका करनेका बाद हाथ टेकके उठनेसे गर्भवती है तथा दक्षिणचरण और हाथपर अधिक भार पड़नेसे अल्पसमयमेंही पुत्रोत्पत्ति होगी ऐसा समझा। उस वृद्धाके प्रश्न करतेही जब घडा गिरकर टूटगया तब मैंने सोचा कि जैसे घडेका मिट्टीभाग मिट्टीमें और पानी पानीमें मिलगया है वैसे वृद्धाको भी इसका पुत्र मिलना चाहिए। विनयीके इसप्रकार विवेकपूर्वक ज्ञानको सुन कर आचार्यने प्रेम प्रकट किया और उसका समझकी तारीफ की, फिर दूसरेको बोले वत्स! इसमें हमारा दोष नहीं यह तेराही दोष है कि तू विचार नहीं करता हम तो शास्त्र समझानेके अधिकारी हैं विमर्श करना तो तुम्हारा कार्य्य है। विनयी शिष्यकी यह निमित्त विषयमें वैनयिकी बुद्धि हुई।

१ आपत्तय-अर्थेरात्राके विषय में कल्पक मंत्रीका दृष्टान्त है।

३-४ लेहे-लिपिज्ञान और गणिए-गणितज्ञान में कुशलता भी विनयजा बुद्धि है।

५ कूव-कूप भूमि विज्ञानमें कुशल ऐसे पुरुषका उदाहरण, जैसे-किसी खोदकार्यमें कुशल पुरुषने एक किसानको कहा कि यहाँ इतनी दूरमें पानी है। जब उतनी जमीन खोदलेनेपर भी पानी नहीं निकला तब किसानने उससे कहा पानी तो नहीं निकला! तब उसने कहा-बाजूकी भूमिपर जरा (थोडा) एडीसे प्रहार करो। किसानके ऐसा करतेही पानी निकल आया। यह उसकी वैनायिकी बुद्धि है।

६ अस्से-अश्व-के ग्रहणमें वासुदेवकी बुद्धिका उदाहरण, जैसे-किसी समय बहुतसे घोडेके व्यापारी घोडे बेचनेको द्वारिका गये। उस समय यदुवंशी राजकुमारोंने सब आकार प्रकारसे बडे घोडे खरीदे, वासुदेवने लक्षणसम्पन्न एक दुर्बल घोडा खरीदा। कुछही दिनोंमें वह घोडा सब हृष्ट-पुष्ट घोडोंको पीछे चलानेवाला और कार्यक्षम सिद्ध हुआ। यह वासुदेवकी विनयजा बुद्धि थी।

७ गद्दभ-गर्दभका दृष्टान्त, जैसे-किसी राजपुत्रको युवावस्थाके प्रारम्भ मेंही राज्यपद मिला था, इससे वह सभी कार्योंमें युवावस्थाकोही समर्थ मानता था। इसीलिये उसने अपने सैन्यमें भी सब युवकोंकोही भर्ती किये, तथा वृद्धोंको निकाल दिये। एक दिन सैन्य लेकर राजा कहीं युद्धको गया हुआ था, जब कि अकस्मात् मार्ग भूलजानेसे किसी अटवीमें पड गया और पानी नहीं होनेसे साथके सभी लोग प्यासके मारे व्याकुल होगए। तब राजा भी किंकर्त्तव्यविमूढ बन गया। उस समय एक सेवकने कहा-देव! वृद्ध पुरुषकी बुद्धिरूप नौकाके सिवाय यह दुःखसागर पार नहीं किया जा सकता। अतः आप किसी वृद्ध पुरुषकी तलाश करें। इसपर राजाने सब कटकमें वृद्धकी तलाश की व घोषणा करवाई। वहाँ एक पितृभक्त सैनिकने छिपाकर अपने पिताको रक्खा था। वह बोला-देव! मेरा पिता वृद्ध है, सुनकर राजाने उसे बुलाया और आदरसे पूछा-महाभाग! मेरे सैन्यको इस अटवीमें पानी कैसे मिलेगा! कहो, वृद्धने कहा-स्वामिन्! कुछ गदहोंको स्वतन्त्र छोड दीजिए और जहाँ वे भूमिको सूंघे वहीं आसपासमें पानी है यह समझ लेवे। वैसाही किया गया जिससे कटकको पानी मिलगया और सभी लोग स्वस्थ होगये। यह स्थविरकी विनयजा बुद्धि थी।

८ लक्खण-लक्षण का दृष्टान्त, जैसे—पारसदेशीय एक गृहस्थ बहुतस घोडोंका मालिक था। उसने किसी योग्य आदमीको घोडोंके रक्षणके लिए रक्खा और उससे कहा कि इतने वर्षतक तुम काम करोगे तो दो घोडे तुमको परिश्रमके बदले दिये जायेगे। उसने भी यह स्वीकार करलिया। रहते २ स्वामीकी लडकीके साथ उसका बडा स्नेह होगया। एक दिन उसने कन्यासे

पूछा—इन सब घोड़ोंमें कौन २ घोड़े सबसे अच्छे हैं। स्वामिकन्याने कहा कि यों तो सभी घोड़े विश्वासपात्र हैं, किन्तु दो घोड़े जो वृक्षोंसे गिराए हुवे बड़े पत्थरोंके शब्दोंको सुनकर भी नहीं डरते वे उत्तम हैं। उसने उसी प्रकार परीक्षा की और उन घोड़ोंको पहचान लिया। फिर वेतन लेनेके समयमें स्वामीसे बोला कि मुझे अमुक २ दो घोड़े दीजिए। स्वामी बोला—अरे! दूसरे अच्छे २ घोड़े हैं। उनको ले इन दोको लेकर क्या करेगा? ये अच्छे भी नहीं हैं। लेकिन उसने यह बात नहीं मानी। तब सेठने सोचा—इसको घरजमाई बनालेना चाहिए, नहीं तो इन उत्तम घोड़ोंको लेके यह चला जायगा। लक्षणसम्पन्न घोड़ेसे कुटुम्ब व अश्वसम्पत्तिकी भी वृद्धि होगी। ऐसा सोचकर कन्याकी अनुमतिसे उन दोनोंका विवाह करादिया। उसको घरजमाई बनानेसे लक्षणसम्पन्न घोड़े बचालिए गये। यह अश्वस्वामीकी विनयजा बुद्धि थी।

९ गंठि—ग्रन्थि के द्वार समझनेमें पादलिप्ताचार्यकी बुद्धिका दृष्टान्त इस प्रकार है—किसी समय पाटलिपुरमें मुरुंड नामका राजा राज्य करता था। परराष्ट्रके राजाने एकदिन कौतुकके लिए उसके पास तीन चीजें भेजी। १ गूढसूत्र—छिपी गांठवाला सूत, २ समयष्टि—समभागवाली लकड़ी, व ३ लाखसे चिपकाया हुआ छिपे द्वारका डब्बा। राजाने अपने सभी दरबारियोंको ये चीजें दिखाई किन्तु कोई भी नहीं समझ सका। तब राजाने पादलिप्त नामके आचार्यको बुलाकर पूछा—भगवन्! आप इनके ग्रन्थिद्वार जानते हो? आचार्यने कहा—हां जानता हूँ। ऐसा कहके उसी समय सूतको गरमपानीमें डाला तो उष्ण पानीके संयोगसे सूतका मल छूट गया और अन्त—ग्रन्थिका भाग—दिख पड़ा। लकड़ी को भी पानीमें गिराया जिससे मालूम हुआ कि मूल भारी है और भारी भागपरही ग्रन्थि होती है। फिर डब्बेको भी गरम करवाया जिससे लाखका सब भाग गल जानेपर द्वार प्रकट होगया। राजा आदि सभी दर्शक इस कौतुकको देखकर खुश हुए, फिर राजाने आचार्यसे कहा—महाराज! आप भी कोई ऐसा दुर्ज्ञेय कौतुक करिए जिसको मैं वहाँ भेज सकूँ। तब आचार्यने किसी तुम्बीके एकप्रदेशमें एक खण्ड हटाकर वहाँ रत्न भर दिए तथा उस खण्डको इस प्रकार सीदिया कि किसीको लक्षित ही नहीं हो। फिर पर राष्ट्रके राजपुरुषोंको सूचना करदी कि इसको भांग (फोड़) कर इससे रत्न ले लवें। किन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी उनको रत्नोंका पता नहीं चला।

यह आचार्यकी विनयजा बुद्धि थी।

१० अगए—अगद वैद्यकी विषापहारणबुद्धिका दृष्टान्त जैसे—किसी राजाके राज्यको शत्रुपक्षके राजाओंने चारों ओरसे घेर लिया। छोटे सैन्यसे उनका मुकाबला करना अशक्य है, ऐसा सोचकर राजाने पानीमें विषयोग करवाना शुरू किया। सभी लोग अपने २ पासका विष लाने लगे। एक वैद्य यवमात्र

विष लेकर राजाको भेंट किया। बहुत थोडा विष देखकर राजा वैद्यपर बहुत क्रुद्ध हुआ। तब वैद्य बोला–महाराज! यह विष सहस्रवेधी है, थोडा देखकर आप नाराज न होवें। इसपर राजाने पूछा कि इसके सहस्रवेधी होनेमें क्या सबूत है? वैद्य बोला–देव! किसी पुराने हाथीको मंगवाइये में प्रयोग करके दिखाता हूँ। उसी समय एक बूढा हाथी लाया गया और वैद्यने उसकी पुच्छका एक बाल उखाडकर उस बालसे हाथीके भिन्न २ अंगोंमें विषप्रयोग किया। जिस २ अंगमें विष फैलता गया उन २ अंगोंको नष्टसा करदिया। तब वैद्य बोला–देव! हाथी विषमय होगया है अब जो भी इसको खायगा वह भी विषमय हो जायगा। इसप्रकार यह विष क्रमशः हजारतक पहुँचता है। हाथीकी मृत्युसे राजा कुछ उदास होकर बोला–क्या अब हाथीको जिलानेका भी उपाय है? वैद्य बोला–जरूर। उसी बालके रन्ध्र–(खड्डे)में एक औषध दिया गया जिससे कुछही समयमें वह विषविकार शान्त होगया। हाथी अच्छा बनगया और राजा भी वैद्यपर सन्तुष्ट हुआ। यह वैद्यकी विनयजा बुद्धि हुई।

११–१२ रहिए अ गणिआ–रथिक और गणिकाकी वैनयिक–बुद्धिमें उदाहरण–स्थूलभद्रकी कथामें एक रथिकका आम्रफलोंकी लुम्बी तोडना और गणिकाका सर्षपकी राशिपर नाचना। ये भी विनयजा बुद्धिके क्रमशः उदाहरण बताए गए हैं।

मूल—गाहा–७५

सीआ साडी दीहं च तणं, अवसव्वयं च कुंचस्स १३।
निव्वोदए[1] १४ य गोणे, घोडग पडणं च रुक्खाओ १५ ॥ ३ ॥

छाया–गाथा–७५

शीता साटी दीर्घञ्च तृणम्, अपसव्यञ्च क्रौञ्चस्य १३।
नीव्रोदकं १४ च गौः, घोटक–(मरणं) पतनञ्च वृक्षात् १५ ॥३॥

टीका—गाथार्थ–७५ सूखी साडीको ठंडी कहने और तृणको लम्बा कहने, एवं क्रौंचका वामभागमें घूमनेसे आचार्यका बोध १३। विषमय पानीसे जारमरण १४, व बैलका चोरी जाना, घोडेका मरण और वृक्षसे पतन १५ इनका भाव दृष्टान्तसे समझें।

१३ साटी आदिका दृष्टान्त, जैसे– कुछ राजकुमारोंको एक कलाचार्य शिक्षण दे रहा था। राजकुमारोंने भी उपकारके बदलेमें बहुमूल्य द्रव्योंसे समय २ पर आचार्यका सन्मान किया। इसप्रकार अपने पुत्रोंके बहुमूल्य द्रव्य देनेपर

१ 'निचोदए'–इत्यपि पाठान्तरम्।

क्रुद्ध होकर राजाने आचार्यको मरवाना चाहा। किसीतरह राजपुत्रोंको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने सोचा कि विद्यादाता होनेसे आचार्य भी हमारे पिता हैं, अतः इनको विपत्तिसे बचा लेना हमारा कर्तव्य है। थोड़ी देरके बाद आचार्य भोजनके लिये आए और धोती माँगने लगे। इसपर कुमारोंने सूखी धोते हुए भी कहा-साटी गीली है, तथा द्वारके सामने एक छोटा तृण लम्बा करके बोले-तृण बहुत दीर्घ-लम्बा है। वैसेही क्रौंचशिष्य पहले सदा आचार्यकी दक्षिण ओरसे प्रदक्षिणा करता किन्तु अभी वह वामभागसे घूमने लगा। इसप्रकार कुमारोंके विपरीत कथन और क्रौंचके वामभ्रमणसे आचार्य समझगये कि सभी मेरेसे विरुद्ध (उलटे) हैं, केवल ये कुमारही भक्ति जतारहे हैं ऐसा सोचकर राजाको लक्षित न हो इसप्रकारसे आचार्य चले गए। यह आचार्य और कुमारोंकी विनयजा बुद्धि हुई।

१४ निव्वोदए-नीव्रोदक-कोतवालकी मृतकपरीक्षाका दृष्टान्त जैसे-बहुत दिनोंसे किसी वणिक् स्त्रीका पति विदेशमें गया हुआ था। एक दिन उस वणिक् वधूने कामातुर होकर अपनी दासीसे किसी पुरुषको लानेके लिये कहा। दासी भी एक युवावस्थासम्पन्न पुरुषको ले आई। फिर नाईसे उसके नख केश आदिका संस्कार करवाया गया। रातमें उस पुरुषके साथ सेठानी दूसरे मंजिलपर गई। कुछ समयके बाद उस पुरुषको प्यास लगी। उसने तत्काल बरसा हुआ मेघका पानी पीलिया। पानी स्थानमें विषवाले सर्पसे छूआ गया था अतः पानी पीनेके दूसरेही क्षण वह पुरुष मरगया। इस आकस्मिक घटनासे भयभीत हो उस वणिग्वधूने रातके पिछले भागमें किसी शून्य देवकुलमें वह शव लेजाकर रखवा दिया। प्रातःकाल होतेही लोगोंकी दृष्टि पड़ी तो तुरन्त कोतवालको सूचना दीगई। उसने आकर देखा तो मालूम हुआ कि इस मृतपुरुषके नखकेशादि थोड़ेही समय पहले बनाए गये हैं। इसपर नाइयोंसे पूछा गया उनमेंसे एकने कहा कि स्वामिन्! अमुक सेठकी दासीके कहनेसे इसके नख आदि मैंने बनाए हैं। दासीसे भी इस बातकी जाँच करके भेद खुलवा लिया। यह नगररक्षककी विनयजा बुद्धि हुई।

१५ गोणे घोडग-(मरणं), पडणं च रुक्खाओ-बैलकी चोरी दोनों प्रकारसे घोड़ेका मरण और पुराने वृक्षके टूटनेके कारण वृक्षसे गिरना इसका अभिप्राय निम्न दृष्टान्तसे समझें जैसे किसी गाँवमें एक पुण्यहीन पुरुष रहता था। एक दिन वह अपने मित्रसे बैल माँगकर हल चलाने गया। कार्य हो जानेपर सायंकाल समय बैलको बाड़ेमें लाकर छोड़ दिया। मित्र भोजन कररहा था अतः वह उसके पास नहीं गया केवल मित्रने बैलको देखलिया है, इसलिए मित्रको बिना कहेही वह घर चला गया। बैल असावधानीके कारण बाड़ेसे निकलकर कहीं चला गया और चोरोंने मौका पाकर उसको चुरा लिया। मित्र बाड़ेमें बैलको न देखकर उससे माँगने लगा किन्तु वह कहाँसे देता? क्योंकि

वह तो चोरी हो गया था। तब न्याय करानेके लिए वह मित्र पुण्यहीनको राजकुलमें ले चला। मार्गमें घोडेपर चढा हुआ एक आदमी सामनेसे आ रहा था, अकस्मात् घोडेके चौंकनेसे वह उसपरसे गिर गया और घोडा भागने लगा। ये लोग सामने आ रहे थे वास्ते उसने कहा कि घोडेको जरा मारके वहीं रोक रखना। पुण्यहीनने उसकी बात सुनतेही घोडेके मर्मस्थलपर एक प्रहार करदिया, घोडा कोमल प्रकृतिका होनेसे प्रहार लगतेही मरगया, अब तो घोडावाला भी पुण्यहीनपर अभियोग चलानेको साथ हो गया, जबतक ये लोग नगरके पास आये तबतक सूर्य्य अस्त हो गया, इसलिए रातमे तीनोंही नगरके बाहर ठहर गये। वहाँ बहुतसे नट सोये हुए थे। उसी समय वह पुण्यहीन सोचने लगा कि इस प्रकारके दुःखसे तो गलेमे पाश डालके मर जाना अच्छा है, जिससे कि सदाके लिए विपत्तिका पिण्डही छूट जाय। ऐसा सोचकर अपने वस्त्रका वृक्षपर पाश बांधके गलेमें डाल लिया। अत्यन्त जीर्ण होनेसे वह वस्त्र भार पडतेही टूट गया, इससे वह बेचारा नीचे सोये हुये एक नटके मुखियेपर जा गिरा, जिससे वह नट मरगया।

नटोंने भी उस पुण्यहीनको पकडा और सुबह होतेही तीनों पुण्यहीनको लिए हुए राजकुलमें पहुँचे। राजकुमारने उन सबोंकी बाते सुनकर पुण्यहीनसे पूछा। उसने दीनताके साथ कहा कि महाराज! इन सबका कहना सच्चा है। तब राजकुमार इसपर दया करके उसके मित्रसे बोले कि यह तुमको बैल देगा किन्तु तुम्हारी आंखें उखाड लेगा, क्योंकि जिसी समय तुमने अपने सामने बैल देखलिया उसी समय यह ऋणमुक्त हो गया। अगर तुम नहीं देखे होते तो यह भी अपने घर नहीं जाता, क्यों कि जो जिसको कुछ देनेके लिए आता है वह विना उसको समझाये अपने घर नहीं जा सकता। इसने तुम्हारे सामने लाकर बैल छोडा था अतः यह निर्दोष है। फिर घोडेवालेको बुलाया और कहा कि हम तुम्हारा घोडा दिलायेंगे, किन्तु तुमको अपनी जीभ काट-कर इसको देनी होगी, क्यों कि तुम्हारे कहनेपरही इसने घोडेपर प्रहार किया है, विना कहे नहीं, अतः तुम्हारी जीभही पहले दोषी होती है, उसको उखाड-कर अलग कर देना चाहिये। इसी प्रकार नटोंको बुलाकर कहा–देखो, इसके पास कुछ भी नहीं जो तुमको दण्डमें दिलायें, इन्साफ इतनाही कहता है कि जैसे गलेमे पाश डालके यह वृक्षसे तुम्हारे स्वामीपर गिरा, इसी प्रकार तुम्हारे-मेंसे कोई प्रधान इसपर वृक्षसे गिरें यह नीचे सो जायगा। कुमारकी ऐसी बातें सुनकर सभी चुप हो गये और वह पुण्यहीन अभियोगसे मुक्त हो गया। यह राजकुमारकी वैनयिकी बुद्धि हुई।

कर्मजा बुद्धिका विवरण––

मूल––गाथा–७६

उवओगदिट्ठसारा, कम्मपसंगपरिघोलणविसाला।
साहुक्कारफलवई, कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ १ ॥

गाथा—७७

हेरण्णिए १ करिसए २, कोलिअ ३ डोवे ४ य मुत्ति ५ घय ६ पवए ७।
तुन्नाए ८ वड्ढइ ९ य पूयइ १० घड ११ चित्तकारे १२ य ॥ २॥

छाया—गाथा—७६

उपयोगदृष्टसारा, कर्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला ।
साधुकारफलवती, कर्मसमुत्था भवति बुद्धिः ॥ १ ॥

७७ हैरण्यकः १, कर्षकः २, कौलिकः ३, डोवः (दर्वीकारश्च) ४,
मौक्तिक—घृत—प्लवकाः ५।६।७। तुन्नागो ८ वर्द्धकिश्च ९
आपूपिक १० घट—चित्रकारौ च ११।१२ ॥ २ ॥

टीका—गाथार्थ ७६— अब कर्मजा बुद्धिका लक्षण कहते हैं— एकाग्र चित्तसे उपयोगसे कार्यके परिणामको देखनेवाली, तथा अनेक कार्योंके अभ्यास और विचार-चिन्तनसे विशाल एवं विद्वानोंसे की हुई प्रशंसारूप फलवाली ऐसी कर्मसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि कर्मजा कहाती है ॥ १ ॥

कर्मजा बुद्धिके विषयमें दृष्टान्त— १ सुवर्णकार, २ कर्षक, ३ कौलिक, ४ डोव-दर्वी आदि बनानेवाला यानी लोहकार, ५ मणिकार, ६ घृतविक्रयी, ७ प्लवक-उछलनेवाला, ८ तुन्नाग-सीनेवाला ९ वर्द्धकि-बढई, १० आपूपिक-हलवाई, ११ कुम्भकार, १२ चित्रकार आदि ॥ २ ॥

इन दृष्टान्तोंका विशेषरूपसे स्पष्टीकरण—

१ हैरण्यक-सुवर्णकार-जिस सुवर्णकारने अपने विज्ञानमें अत्यधिक अनुभव प्राप्त कर लिया है वह समय पाकर हस्तस्पर्श तथा देखनेमात्रसेही सोनेचांदीकी यथार्थ परीक्षा कर लेता है, यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

२ कर्षक-किसी चोरने रातमें एक धनीके यहाँ पद्मके आकारकी सेंध खोदी। प्रातःकाल वहाँ बहुतसे लोग जमा हुए और चोरके सेंध खोदनेकी प्रशंसा करने लगे। छिपेरूपसे चोर भी सुन रहा था। उसी समय एक किसान बोला कि जिसने जिस कार्यका अधिक अभ्यास किया है वह उसमें कुशल होताही है, इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं। किसानकी बात सुनकर चोरको बहुत क्रोध हुआ। उसने एक आदमीसे पूछा कि यह कौन है तथा कहाँ रहता है? पता लगाकर कुछ देरके बाद किसानके पास खेतमें पहुँचा और बोला-अरे! आज मैं तुझे मारता हूँ। किसान बोला-क्यों? चोरने कहा-तूने लोगोंके सामने मेरी सेंधकी प्रशंसा नहीं की इसलिये। वह बोला-

१ तुन्नाग ८ वड्ढई ९ पूयए १ अ-वि भा म. इ. नि गा. ९४७ ।

प्रशंसा नहीं करनेका कारण ठीक है, जो जिस कार्यमें सदा अभ्यास करता है, वह उस विषयमें कुशल होता है, देखो, मैंही उसमें दृष्टान्त हूँ। हाथमें लिए हुए इन मूंगोंको अगर कहो तो सब उल्टे मुंह डालूं और कहो तो ऊर्ध्व-मुख-ऊपरमुख से, या बाजूसे गिराऊँ। इसपर चोर बहुत विस्मित हुआ और बोला कि सभीको नीचे मुखसे गिराओ। किसानने भूमिपर एक कपडा फैलाकर सभी मूंग अधोमुख-नीचे मुंह-से गिरादिये। चोरको बडा विस्मय हुआ। किसानकी कुशलताको वारवार सराहता हुआ वह चला गया। कर्षकके प्राण बच गये। यह कर्षककी कर्मजा बुद्धि हुई।

३ कोलिय-कौलिक-तन्तुवाय-कपडा बुननेवाला अपनी मुष्टिमें तन्तुओं-(सूतों)-को लेकर जान लेता है कि इतने कंडोंसे इतना वस्त्र बनेगा। यह तन्तुवायकी कर्मजा बुद्धि है।

४ दर्वी-डोव बनानेवाला-लोहकार यह सहजमें जान जाता है कि इसमे इतनी वस्तु समायेगी यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

५ मौक्तिक-मणिकार अपने अभ्याससे मोतीको आकाशमे उछालकर नीचे युक्तिसे रक्खे हुए शूरके बालमें उसे इस प्रकार धरते हैं कि वह मोती बालमें पिरोलिया जाता है। यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

६ घय-घृत-विक्रयी-घी वेचनेवाला अधिक अभ्याससे ऐसा कुशल बन जाता है कि चाहे तो गाडीमें रहा हुआ भी नीचेकी कुण्डीकी नालमें घी डाल देता है।

७ प्लवक-कूदनेवाला भी अपनी क्रियाके अनुभवसे आकाशमें अनेक प्रकारके खेल दिखा देता है।

८ तुन्नाग—सीनेवाला अपने क्रिया-कौशलसे वैसा सीलेता है जो किसीको लक्षित भी न हो।

९ वर्द्धकि-कुशल रथकार विना मापे ही रथ आदिमे लगने वाली लकडीका प्रमाण जान लेता है।

१० आपूपिक-निपुण हलवाई विना तोले अपूप-मालपूए आदिका माप जान लेता है और आदेशानुसार वस्तु बना देता है।

११ घड-घटकार-अनुभवी कुम्भार विना वजन कियेही घडे बनाने जितने मृत्पिण्ड ले लेता है।

१२ चित्रकार-कुशल चितारा चित्रकी भूमि विना मापेही चित्रका प्रमाण जान लेता है और कूंचीमे उतना ही रंग लेता है जितनेका उसको प्रयोजन होता है।

तन्तुवायसे लेकर चित्रकारतक ये सब कर्मजा बुद्धिके उदाहरण हैं।

मूल—गाहा–७८

अणुमाण–हेउ–दिट्ठंत–साहिया वयविवागपरिणामा।
हियनिस्सेयसफलवई, बुद्धी परिणामिया नाम॥ १॥

७९ अभए १ सिट्ठि २ कुमारे ३, देवी ४ उदिओदए हवइ राया ५।
साहू य नंदिसेणे ६, धणदत्ते ७ सावग ८ अमच्चे ९॥ २॥

छाया—गाथा–७८

अनुमानहेतुदृष्टान्त–साधिका, वयोविपाकपरिणामा।
हितनिःश्रेयसफलवती, बुद्धिः पारिणामिकी नाम॥ १॥

७९ अभयः १ श्रेष्ठिकुमारौ २।३, देवी ४, उदितोदयो भवति राजा ५।
साधुश्च नन्दिषेणः ६, धनदत्तः ७, श्रावकोऽमात्यः ८।९॥ २॥

टीका—गाथार्थ–७८–७९ अनुमान हेतु और दृष्टान्तसे विषयको सिद्ध करनेवाली अवस्थाके परिपाकसे पुष्ट तथा उन्नति और मोक्षरूप फलवाली बुद्धि पारिणामिकी है अर्थात् जो स्वार्थानुमान हेतु और दृष्टान्तसे विषयको सिद्ध करती है तथा लोकहित व लोकोत्तर मोक्षको देनेवाली है ऐसी अवस्थाके परिपाकसे होनेवाली बुद्धि पारिणामिकी है॥ १॥

अभयकुमार १ सेठी २ कुमार ३ देवी ४ उदितोदय राजा ५ मुनि और नंदिषेण कुमार ६ धनदत्त ७ श्रावक ८ अमात्य ९॥ २॥ ये पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं।

१ अभयकुमार–चंडप्रद्योतसे अभयकुमारने चार वर मांगे और चंडप्रद्योतको बांधकर रोते हुए अभयकुमार नगरमें ले आया था। यह अभयकुमारकी पारिणामिकी बुद्धि है।

२ सिट्ठि–सेठी, जैसे–किसी सेठने अपनी भार्याके दुराचारको देखकर दीक्षा स्वीकार की। उधर उस स्त्रीको परपुरुषके समागमसे गर्भ रह गया तब राजपुरुष उसको राजाके पास ले आए। उसी समय एक मुनि भी विहारक्रमसे घूमते हुए उस गांवसे निकले। स्त्रीने उनको देखकर राजपुरुषोंके सुनते हुए कहा कि हे मुनि! यह गर्भ तुम्हारा है और तू इसको छोडकर दूसरे गांव जा रहा है फिर इसका क्या होगा? मुनिने यह सुनकर विचारा कि असत्य भाषणसे यह स्त्री जिनशासन और सुसाधुओंकी अपकीर्ति करेगी अतः इसका

१ सेट्ठि–इति पाठान्तरम्।
२ स्पष्ट समझनेके लिये परिशिष्ट देखें। सम्पादक

निवारण करना चाहिए। ऐसा सोचकर मुनिने उस स्त्रीको शाप दिया कि यदि यह गर्भ मेरा किया हो तो पूर्ण समयपर योनिसे निकले, अगर हमारा नहीं हो तो पेट फाडकरही निकले, इस शापसे समय पूर्ण होनेपर भी गर्भ नहीं निकला, इससे उस स्त्रीको भयङ्कर कष्ट होने लगा, तब उस स्त्रीने राजकर्मचारिओंके सामने मुनिराजसे प्रार्थना की कि महाराज! यह गर्भ आपका किया हुआ नहीं है, मैंने झूठा आपको कलङ्क दिया, अब फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूंगी, उसके असह्य कष्टको देखकर कारुणिक मुनिने अपना शाप हटालिया, इस-प्रकार धर्मका मान और उस स्त्रीके प्राण दोनों बचालिये, यह उनकी पारिणा-मिकी बुद्धि हुई।

३ कुमार– एक राजकुमारको मिष्टान्न बहुत प्रिय था, एक दिन उसने भरपेट मोदक खा लिया, अधिक खानेसे अजीर्ण हो गया, अजीर्णके कारण मुखसे दुर्गन्धि निकलने लगी। दुःखी होकर राजकुमारने सोचा कि इस अशुचि शरीरसे संयोग पाकर मधुर जैसा मनोहर पदार्थ भी विगड गया। इसी शरीरके लिये लोग अनेक पाप करते हैं, अवश्य यह धिक्कारने योग्य है। ऐसा सोचकर वह विरक्त हो गया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

४ देवी–पुष्पवती नामकी देवीने अपनी पुष्पचूला नामक पुत्रीको स्वर्ग-नरक दिखाकर प्रतिवोध दिया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

५ उदितोदय राजाका दृष्टान्त, जैसे–पुरिमताल नगरमे उदितोदय नामका राजा था, श्रीकान्ता नामकी उसकी विशेप रूपवती रानी थी, जिसके लिये वानारसीके धर्मरुचि नामक राजाने अपने सैन्यसे पुरिमताल नगरको घेर लिया। कुछ समय तक घेरे रहा तो उदितोदयने निष्कारण जनक्षय होगा ऐसा सोचकर तपोवलसे वैश्रमण देवका आवाहन किया। देवने धर्मरुचि राजाको उसके नगरमे साहरण कर दिया। इसप्रकार विना जनक्षयके उदितो-दय राजाने अपना व प्रजाजनोंका रक्षण कर लिया यह राजाकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

६ साधु और नंदिपेण कुमारका दृष्टान्त, जैसे– भगवान् महावीरके समवसरणमे एक साधु चित्तकी चंचलतासे साधुव्रत छोडना चाहता था। उसी समय प्रभुको वंदन करनेके लिये राजकुमार नंदिपेण अपने अंतःपुरके साथ आया था। रूपलावण्यसे उसका अंतःपुर अप्सरावृन्दको भी जीतनेवाला था, फिर भी प्रभुके उपदेशसे नंदिपेणने विरक्त होकर उन सबोंको छोड दिया। यह देखकर वह साधु भी विशेषरूपसे संयममे स्थिर हो गया। यह उस साधुकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

७ धनदत्तका दृष्टान्त, जैसे–किसी समय चिलातीपुत्र चोरने धनदत्तकी पुत्री सुसुमाको द्रव्यलोभसे जंगलमे ले जाके मार गिराया। शेठ भी खोजते

१ बड़ी कठिनाईसे उस अटवीमें पहुँचा और लड़कीको मरी पड़ी एक खड्डेमें देखा। भूखसे बहुत व्याकुल होकर फल खोजने लगा किन्तु फलोंके नहीं मिलनेसे उसीसे देह निर्वाह किया-प्राण बचाया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

८ सावग-श्रावक-भार्यामें पत्नीकी बुद्धि, जैसे-किसी श्रावकने परस्त्री गमनका त्याग किया था। एक दिन अपनी स्त्रीकी सखीको देखकर वह कामातुर हो गया। स्त्रीने उसकी चिंताके कारणको समझ लिया और सोचा कि ऐसे कुविचारोंमें यदि इसकी मृत्यु हो गई तो यह दुर्गतिमें चला जायगा। इसलिए कोई उपाय करूँ जिससे इसकी रक्षा हो ऐसा सोचकर वह पतिसे बोली-स्वामिन्! चिन्ता मत करो मैं संध्या होनेपर उसको लानेका उपाय करती हूँ। श्रावकने मंजूर किया। इधर संध्या होतेही वह स्त्री अपनी सखीके वस्त्राभूषण पहनकर उसी रूपमें श्रावकके पास एकान्तमें गई। उसने भी अपनी स्त्रीकी सखी समझकर उसके साथ संभोग किया फिर कुछ समयके बाद कामका ज्वर उतरा तब खिन्न व शोकके वशसे व्याकुल होता हुआ बोलने लगा कि हाय! मेरा तो व्रत खण्डित कर दिया। अब संसारमें किस मुँहसे बोलूँगा! उस स्त्रीने श्रावकजीको अधिक चिन्तातुर देखकर सभी बात कह दी, जिससे वह कुछ स्वस्थ हुआ। प्रातःकाल गुरुके पास जाकर मानसिक कुविचार व परस्त्रीके संकल्पसे विषयसेवनके लिए प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ। उस श्रावकपत्नीने अपने पतिका व्रत और प्राण दोनोंकी रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

९ अमात्य-मंत्रीका उदाहरण जैसे-वरधनु मंत्रीने स्वामिपुत्र ब्रह्मदत्तकी रक्षाके लिए सुरंग खुदाकर ब्रह्मदत्तको उससे निकाल लिया यह मंत्रीकी पारिणामिकी बुद्धि है।

मूल—गाथा—८०

समए १० अमच्चपुत्ते ११, चाणक्के १२ चेव थूलभद्दे १३ य।
नासिक्कसुंदरिनंदे १४, वइरे १५ परिणामिया बुद्धीए ॥ ३ ॥

८१ चलणाहण* १६ आमंडे १७, मणी १८ य सप्पे १९ य खग्गि २०
थूभिंदे २१।२२। परिणामियबुद्धीए एवमाई उदाहरणा ॥ ४ ॥
से त्तं अस्सुयनिस्सियं।

---

१ व थेरो नंदे आ. नि. गा. ९४९। २ परिणामिया बुद्धी-नि. ९५।
* चलणाहय (पा)।

छाया—गाथा–८०

क्षपकोऽमात्यपुत्रः १०।११, चाणक्यश्चैव १२ स्थूलभद्रश्च १३।
नासिक्ये सुन्दरीनन्दः १४, वज्रः १५ परिणामबुद्ध्याः ॥ ३ ॥

८१ चलनाहत १६ आमलके १७ मणिश्च १८ सर्पश्च १९ खड्ग २० स्तूपेन्द्रः २१। पारिणामिक्या बुद्ध्या एवमादीनि उदाहरणानि ॥ ४ ॥

तदेतदश्रुतनिश्रितम्।

टीका—गाथार्थ–८०–८१ खमए–साधु १० अमात्यपुत्र–मंत्रिपुत्र ११ चाणक्य १२ और स्थूलभद्र १३ तथा नासिकपुरमे सुदरीपति नंद १४ वज्र-स्वामी १५ ये पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ॥ ३ ॥

चलणाहण–चलनाहत याने चरणाहतको क्या दण्ड देना? (राजाका प्रश्न) १६ आमलक १७ मणि १८ सर्प १९ खड्ग (गेंडा) २० स्तूप २१, इत्यादिक पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ॥ ४ ॥

१० क्षपक–साधुका दृष्टान्त, जैसे–कोई साधु क्रोधके आवेशमें मरनेके कारण सर्प हो गया था, वहाँसे मरकर शुभकर्मोदयसे एक राजाके यहाँ जन्म लिया और मुनियोंके उपदेशसे विरागी होकर फिर साधु बन गया तथा नम्र भावसे गुरुजनोंकी सेवा करने लगा। भिक्षाके समय एक दिन साधुओंने उसके पात्रमे थूँक गिरा दिया, फिर भी वह अपने ही दुर्गुणोंकी निन्दा करता रहा कि मैं पापी हूँ, सदा खाते रहता हूँ व आपलोग धन्य हैं, जो तपस्यामें अपने देहका बल लगा रहे हैं। इस प्रकार प्रतिकूल संयोगमें शान्त रहके केवलपद मिला लिया। यह उसकी परिणामिकी बुद्धि है।

११ अमात्यपुत्र—मंत्रीके लडकेकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे–ब्रह्मदत्तके विषयमें दीर्घपृष्ठ राजाने वरधनु मंत्रीसे बहुत प्रश्न किए, उन सबोके उत्तर और वैसे अन्य प्रसंगोंमें मंत्री वरधनुने इस प्रकारसे काम लिया कि दीर्घपृष्ठको भी मालुम नहीं हो सका कि यह मेरा विरोधी है और साथ २ ब्रह्मदत्तकी भी रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

१२ चाणक्यकी बुद्धिके बहुतसे उदाहरण हैं, उनमेंसे एक यहाँ दिया जाता है, जैसे—चन्द्रगुप्तके राज्य करते हुए जब भंडार समाप्त होने लगा तो चाणक्यने एक दिनके उत्पन्न हुए अश्व आदिकी याचना की और भंडारकी पूर्ति की। यह चाणक्यकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१३ स्थूलभद्रकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे–स्थूलभद्रके पिताको मार

देने पर नंदनने मंत्रिपदके लिए स्थूलभद्रको बहुत कुछ कहा, किन्तु उन्होंने भोगभावनाको नाशका कारण और संसारके सम्बन्धको दुःखकर मानकर मुनि-दीक्षा ले ली, यह स्थूलभद्रकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१४ नासिक्ये सुन्दरीनंद, जैसे—नासिकपुरके सुंदरीपतिको उसके भाई साधुने मेरुके शिखरपर ले जाके देवदेवी दिखाये। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

१५ वज्र—वज्रस्वामीकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे—वज्रस्वामीने बालकपनमें भी माताके प्रेमकी उपेक्षा करके संघका बहुमान किया, याने संघके दिखाये हुए रजोहरण—मुखवस्त्रिकारूप साधुवेशको लिया। किन्तु माताकी ओरसे दिए जाते हुए खिलौने आदि नहीं लिए।

१६ चरणाहत याने मस्तकपर चरण—प्रहार करनेवालेको क्या दण्ड देना चाहिए। इस विषयमें राजा और वृद्धोंकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे—कुछ तरुण सेवकोंने एक राजासे कहा कि देव! पके हुए केश और जीर्ण शरीरवाले वृद्धों को न रखकर तरुणोंको ही अपनी सेवामें रक्खें। वे आपके सभी काम कर सकेंगे। इसपर परीक्षाके लिए राजाने युवकोंसे पूछा कि यदि कोई मेरे शिरपर पाँवका प्रहार करे तो क्या दण्ड देना चाहिए। तरुणोंने कहा—महाराज! तिल जितने छोटे २ टुकडे कर उसको मरवा देना चाहिए। राजाने यही प्रश्न फिर वृद्धोंसे पूछा। वृद्धोंने कहा—स्वामिन्! हम विचार करके कहेंगे, ऐसा कहके वृद्ध एकान्तमें चले गए और विचारने लगे कि रानीके सिवाय अन्य राजाके मस्तकपर कौन पाँवका प्रहार कर सकता है। और रानी तो विशेष सम्मान करनेके लायक होती है इस प्रकार सोचके वृद्ध राजाके पास आकर बोले देव! उसका विशेष सत्कार करना चाहिए। इसपर राजा वृद्धोंकी बुद्धिपर बहुत प्रसन्न हुआ और सदा उनकोही अपने पासमें रखता। यह राजा और वृद्धोंकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१७ आमंडे—आमलक फलका दृष्टान्त, जैसे—किसी कुम्भकारने एक आदमीको एक बनावटी आँवला दिया। रंग रूप समान होनेपर भी उसने अतिशय कठिन स्पर्श और आँवलेके फलनेकी यह ऋतु नहीं इससे समझ लिया कि यह असली नहीं है। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१८ मणि—एक सर्प वृक्षपर चढके सदा पक्षियोंके बच्चे खाया करता था। किसी दिन वह सर्प चूककर वृक्षसे नीचे गिर गया और मणि वृक्षके ही किसी प्रदेशपर रह गई। मणिके प्रकाशमें घूमनेवाला वह सर्प मणिके छूट जानेपर अपने मार्गको बराबर नहीं सँभाल सका। वृक्षके नीचे एक कूप था उसमें जा पडा ऊपर रहे हुए मणिकी किरणोंके कारण उस कूपका सारा जल लाल दिखने लगा। खेलते हुए किसी बालकने एकाएक यह आश्चर्यकी बात

देखी व आकर अपने पितासे निवेदन की, उस बुड्ढेने भी वहाँ आकर अच्छी तरह देखा और कारणका पता लगाकर मणिको प्राप्त कर लिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१९ सर्प-चंडकौशिककी बुद्धि, जैसे-भगवान् महावीरके अलौकिक रक्तके आस्वादको विचारपूर्वक देखकर चंडकौशिकने ज्ञान प्राप्त करलिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

२० खड्ग-गेंडा-(अरण्य पशु विशेष)-की बुद्धि, जैसे-किसी श्रावकने युवावस्थाके मदमे व्रतोंकी विना आलोचना किये ही प्राणत्याग किया। जिससे वह एक जंगलमें खड्ग-पशुके रूपमे उत्पन्न हुआ। और अटवीमें आने-वाले मनुष्यको मारकर खाने लगा। किसी समय उस मार्गसे कुछ साधु चले आ रहे थे, उसने साधुओंपर आक्रमण करना चाहा किन्तु उनके आत्मवलसे वैसा नहीं कर सका, फिर विचार करते १ जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा अनशन करके देवलोग गया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

२१ स्तूपका दृष्टान्त, जैसे-विशाला नगरीके नाशके लिए कुलवालुक मुनिने कहा कि मुनिसुव्रत स्वामीके पादुकायुक्त स्तूपको उखडवा दिया जाय तो नगरीका भंग हो सकता है। यह मुनिकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

यह उपरोक्त स्वरूपवाला अश्रुत निश्रित मतिज्ञान हुआ।

मूल—से किं तं सुयनिस्सियं? सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—उग्गहे १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४ ॥ सू. २६ ॥

छाया—अथ किन्तत्—श्रुतनिश्रितम्? श्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४ ॥ सू. २६ ॥

टीका—प्र०-अब श्रुतनिश्रित मतिज्ञान कौनसा है? उ०-श्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकारका है, जैसे-अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ और धारणा ४।

स्पष्टीकरणरूप आदिकी विशेषतारहित पदार्थके सामान्यरूपका ज्ञान करना अवग्रह कहलाता है। अवग्रहसे गृहीत पदार्थमे क्या है, क्या नहीं, इस प्रकार विचारक तर्कको ईहा कहते हैं। विचारके उत्तर क्षणमें जो पदार्थका निश्चय होता वह अवाय कहाता है। अवग्रहसे निर्णीत अर्थका कुछ कालतक अविच्छिन्न उपयोग रहना अविच्युति, और उससे जो संस्कार धारण हुआ वह वासना कहाती है, यह संख्यात या असंख्यात काल तक रहती है, फिर कालान्तरमे किसी वैसे पदार्थको देखने आदिसे ऐसा ज्ञान होना कि यह वही पदार्थ है जो मैंने पहले देखा था इसको स्मृति कहते हैं, अविच्युति, वासना

---

१ चलते हुए जिसके दोनों बाजूके चमडे लटकते रहते हैं।

और स्मृति ये तीनों धारणाके अवान्तर भेद हैं, अर्थात् अवायसे निर्णीत अर्थमें उपयोग स्मरण और वासनाको धारणा कहते हैं ॥ सू. २६ ॥

मूल—से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थुग्गहे य वंजणुग्गहे य ॥ सू. २७ ॥

छाया—अथ कः सोऽवग्रहः ? अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अर्थावग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च ॥ सू. २७ ॥

टीका—प्र०—वह अवग्रह कौनसा है ? उ०—अवग्रह दो प्रकारका कहा गया है, जैसे—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह ॥ सू. २७ ॥

मूल—से किं तं वंजणुग्गहे ? वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियवंजणुग्गहे, घाणिंदियवंजणुग्गहे, जिब्भिंदियवंजणुग्गहे, फासिंदियवंजणुग्गहे, से तं वंजणुग्गहे ॥ सू. २८ ॥

छाया—अथ कः स व्यञ्जनावग्रहः ? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स एष व्यञ्जनावग्रहः ॥ सू. २८ ॥

टीका—प्र०—वह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है ? उ०—व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारका है, जैसे—१ श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, २ घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, ३ जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ४ स्पर्शेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, यह हुआ व्यञ्जनावग्रह। श्रोत्र आदि पाँच उपकरणेन्द्रियोंका शब्द गन्ध आदि पुद्गलोंके साथ सम्बन्ध होनेको व्यञ्जन कहते हैं, उस सम्बन्धसे शब्द आदि पदार्थोंका जो अव्यक्त ज्ञान होता है वह व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। अथवा इन्द्रियोंसे प्राप्त शब्द आदि द्रव्योंका अस्पष्ट ज्ञान भी व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। अर्थात् शब्द आदिके साथ उपकरणेन्द्रियके सम्बन्ध-क्षणसे लेकर अर्थावग्रहसे पूर्वतक जो सुप्त मत्त या मूर्च्छित पुरुषकी तरह केवल शब्द गंध रस और स्पर्श कुछ है, ऐसा जो अव्यक्त ज्ञान होता है, वह व्यञ्जनावग्रह है। चक्षु और मनरूप आदिका सम्बन्ध किये बिना ही ज्ञान करते हैं अतः इनसे व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है। इसलिए व्यञ्जनावग्रहके चारही प्रकार हैं ॥ सू. २८ ॥

मूल—से किं तं अत्थुग्गहे ? अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदिय-अत्थुग्गहे, चक्खिंदिय-अत्थुग्गहे, घाणिंदिय-अत्थु

ग्गहे, जिब्भिंदिय-अत्थुग्गहे, फासिंदिय-अत्थुग्गहे, नोइंदिय-अत्थुग्गहे ॥ सू २९ ॥

छाया-अथ कः सोऽर्थावग्रहः ? अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः, जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः, नोइन्द्रियार्थावग्रहः ॥ सू. २९ ॥

टीका-प्र०-वह अर्थावग्रह किसप्रकार है? उ०-अर्थावग्रह छ प्रकारका कहा गया है, जैसे-१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह, ३ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, ४ रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, ५ स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह, ६ नोइन्द्रिय(मन) अर्थावग्रह। पांच इन्द्रिय और मनसे पदार्थोंके सामान्य ज्ञान करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, आश्रयके भेदसे वह छ प्रकारका है, जैसे-मार्गमें जल्दीसे चलते हुए कुछ दिख पडता है तो दर्शक यही कहता है कि मैंने कुछ देखा था, इसे अर्थावग्रह कहते हैं ॥ सू. २९ ॥

मूल—तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा-ओगेण्हणया, उवधारणया, सवणया, अवलंबणया, मेहा, से त्तं उग्गहे ॥ सू. ३० ॥

छाया-तस्येमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा-अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता, अवलम्बनता, मेधा-स एषोऽवग्रहः ॥ सू ३० ॥

टीका-उस अवग्रहके ये पांच नाम अनेकविध घोष और अनेक व्यञ्जन-युक्त होते हैं, जैसे-१ अवग्रहणता, २ उपधारणता, ३ श्रवणता, ४ अवलम्बनता, और ५ मेधा। यह अवग्रहका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू ३० ॥

१ प्रथमसमयमें आए हुए शब्द आदि पुद्गलोंका ग्रहण करना अवग्रह कहाता है। २ व्यञ्जनावग्रहके दूसरे आदि समयोंमे नवीन २ शब्द आदि पुद्गलोंका प्रतिसमय ग्रहण करना और पूर्वगृहीतका धारण करना यही उपधारणता है। ३ एक समयमें होनेवाला सामान्यरूपसे अर्थग्रहणरूप बोध श्रवणता है। ४ अर्थग्रहणही अवलम्बनता है। ५ मेधा स्पष्ट ही है।

मूल—से किं तं ईहा ? ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदिय-ईहा चक्खिंदिय-ईहा, घाणिंदिय-ईहा, जिब्भिंदिय-ईहा, फासिंदिय-ईहा, नोइंदिय-ईहा, तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावं-

जणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा—आभोगणया, मग्गणया, गवेसणया, चिंता, विमंसा, से त्तं ईहा ॥ सू. ११ ॥

छाया—अथ का सा ईहा ? ईहा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा, चक्षुरिन्द्रियेहा, घ्राणेन्द्रियेहा, जिह्वेन्द्रियेहा, स्पर्शेन्द्रियेहा, नोइन्द्रियेहा, तस्या इमानि—एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—आभोगनता, मार्गणता, गवेषणता, चिन्ता, विमर्श (मीमांसा) सा—एषा ईहा ॥ सू ११ ॥

टीका—प्र०—हे भगवन्! वह ईहा क्या है? उ०—ईहा छ प्रकारकी कही गई है, जैसे—१ श्रोत्रेन्द्रिय ईहा २ चक्षुरिन्द्रिय ईहा, ३ घ्राणेन्द्रिय ईहा, ४ रसनेन्द्रिय ईहा ५ स्पर्शेन्द्रिय ईहा ६ नोइन्द्रिय ईहा। यह ईहारूप श्रुत-निश्रित मतिज्ञान हुआ।

इन्द्रियोंके पांच विषय और हर्ष विषाद आदि मानसिक भावके सम्बन्धमें ईहा—निर्णयार्थ विचार होता है अतएव इसके छ भेद किये गये हैं। उस ईहाके भी भिन्न घोष और नाना व्यंजनवाले ये एकार्थक पांच नाम होते हैं, जैसे कि १ आभोगनता २ मार्गणता ३ गवेषणता, ४ चिन्ता और ५ विमर्श। सामान्यरूपसे एकार्थक होते हुए भी विशेषमें ये भिन्नार्थक हैं, जैसे—अर्थावग्रहके बाद ही सद्भूत अर्थ-विशेषका आलोचन करना आभोगनता है। अन्वय व व्यतिरेक धर्मका अन्वेषण करना मार्गणा, और व्यतिरेक अर्थात् विरुद्ध धर्मके त्यागपूर्वक अन्य धर्मकी आलोचना करना गवेषणा है। सद्भूत अर्थका वारंवार चिन्तन करना चिन्ता और स्पष्ट विचार करना विमर्श ये पांचों ईहाके नामान्तर हैं, यह हुआ ईहाका वर्णन ॥ सू. ११ ॥

मूल—से किं तं अवाए ? अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदिय-अवाए, चक्खिंदिय-अवाए, घाणिंदिय-अवाए, जिब्भिंदिय-अवाए, फासिंदिय-अवाए, नोइंदिय-अवाए, तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा—आउट्टणया, पच्चाउट्टणया अवाए, बुद्धी, विण्णाणे, से त्तं अवाए ॥ सू. १२ ॥

छाया—अथ कः सोऽवाय ? अवाय षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियावायः १, चक्षुरिन्द्रियावायः २, घ्राणेन्द्रियावायः ३,

जिह्वेन्द्रियावायः ४, स्पर्शेन्द्रियावायः ५, नोइन्द्रियावायः ६, तस्य इमानि-एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यंजनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा-आवर्त्तनता १, प्रत्यावर्त्तनता २, अवायः (अपायः) ३, बुद्धिः ४, विज्ञानं ५, स एषोऽवायः ॥ सू. ३२ ॥

टीका-प्र०-भगवन्! वह अवायज्ञान कौनसा है? उ०-अवायज्ञान छ प्रकारका है, जैसे कि श्रोत्रेन्द्रिय अवाय १, चक्षुरिन्द्रिय अवाय २, घ्राणेन्द्रिय अवाय ३, रसनेन्द्रिय अवाय ४, स्पर्शेन्द्रिय अवाय ५, नोइन्द्रिय अवाय ६। श्रोत्रेन्द्रियके अर्थावग्रहको लेकर जो निश्चय किया जाता है वह श्रोत्रेन्द्रिय अवाय है, ऐसे आगे भी समझें, इस अवायके ये एकार्थक पांच नाम नाना-घोष और नानाव्यंजनवाले होते हैं, जैसे कि १ आवर्त्तनता-ईहासे हटकर अवायके सम्मुख रहनेवाला ज्ञान, २ प्रत्यावर्त्तनता, ३ अवाय-सर्वथा ईहासे निवृत्त पदार्थका ज्ञान, ४ बुद्धि-उसी निर्णीत अर्थको स्थिरतासे वारंवार स्पष्ट-रूपमें जानना, ५ विज्ञान-विशिष्टज्ञान। यह अवायज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू ३२ ॥

मूल--से किं तं धारणा? धारणा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदिय-धारणा, चक्खिदियधारणा, घाणिंदियधारणा, जिब्भिंदिय-धारणा, फासिंदियधारणा, नोइंदियधारणा, तीसे णं इमे एग-ट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा-धरणा, धारणा, ठवणा, पइट्ठा, कोट्ठे, से त्तं धारणा॥सू. ३३॥

छाया-अथ का सा धारणा? धारणा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा १, चक्षुरिन्द्रियधारणा २, घ्राणेन्द्रियधारणा ३, जिह्वे-न्द्रियधारणा ४, स्पर्शेन्द्रियधारणा ५, नोइन्द्रियधारणा ६, तस्या इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यंजनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा-धरणा, धारणा, स्थापना, प्रतिष्ठा, कोष्ठः, स एषा धारणा ॥ सू ३३ ॥

टीका-प्र०-गुरुदेव! वह धारणा कौनसी है? उ०-धारणा छ प्रकारकी है, जैसे कि १ श्रोत्रेन्द्रियधारणा, २ चक्षुरिन्द्रियधारणा, ३ घ्राणेन्द्रियधारणा, ४ रसनेन्द्रियधारणा, ५ स्पर्शेन्द्रियधारणा, ६ नोइन्द्रियधारणा। उस धारणाके ये एकार्थक पांच नाम-नामान्तर होते हैं, जो नानाघोष और नाना-

व्यञ्जनवाले हैं, जैसे कि-१ धरणा-जाने हुए अर्थको अविच्युतिपूर्वक अंतर्मुहूर्ततक धरे रहना, २ धारणा-जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्य कालके बाद भी स्मरण (रखना), ३ स्थापना-हृदयमें उसको स्थापन करना, ४ प्रतिष्ठा-धृत अर्थको ही भेदोंके साथ हृदयमें स्थापन करना, ५ कोष्ठ-कोठेकी तरह धारण किये अर्थको सुरक्षित रखना, यह धारणारूप मतिज्ञान सम्पूर्ण हुआ॥ सू. ३३॥

मूल—उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं॥ सू. ३४॥

छाया—अवग्रह एकसामयिकः, आन्तर्मुहूर्तिकीहा, आन्तर्मुहूर्तिकोऽवाय, धारणा संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्॥सू. ३४॥

टीका—अब अवग्रह आदिका कालमान कहते हैं-अवग्रहज्ञान एक समय तक रहता है। ईहा अंतर्मुहूर्त स्थितिवाली है और अवाय भी अंतर्मुहूर्तकी स्थितिवाला है। धारणा संख्यात काल या युगलिक आदिकी अपेक्षा असंख्य-कालतक भी रहती है॥ सू. ३४॥

मूल—एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य। से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं? पडिबोहगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा अमुगा अमुगत्ति, तत्थ चोयगे पन्नवगं एवं वयासी-किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? एवं वयंतं चोयगं पण्णवए एवं वयासी-नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, से त्तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं।

छाया—एवमष्टाविंशतिविधस्य-आभिनिबोधिकज्ञानस्य व्यञ्जनावग्र-

हस्य प्ररूपणं करिष्यामि प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च । अथ किं तत्प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ? प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः कंचित्पुरुषं सुप्तं प्रतिबोधयेत् अमुक-अमुक ! इति, तत्र चो(नो)दकः प्रज्ञापकमेवमवादीत्-किमेकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? एवं वदन्तं नोदकं प्रज्ञापक एवमवादीत्-नो एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, यावन्नो दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, तदेतत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ।

टीका-(अर्थावग्रहके चार प्रकार, व्यञ्जनावग्रहके छह, ईहाके छह, अवायके छह, और धारणाके भी छह, इसप्रकार ये सब मिलकर मतिज्ञानके २८ भेद होते हैं) इस तरह अट्ठाइस प्रकारका आभिनिबोधिक ज्ञान है। उस मतिज्ञानके व्यञ्जनावग्रहकी प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे प्ररूपणा करूंगा । प्र०-प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे वह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है ? उ०-प्रतिबोधक-जगानेवालेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा इस प्रकार है-जैसे कोई पुरुष किसी अनिर्दिष्टनामवाले सोये हुए पुरुषको ओ अमुक ! ओ अमुक ! ऐसा कहकर जगावे; इस विषयमे शिष्य गुरुको ऐसा पूछता है-भगवन् ! क्या एक समयके प्रविष्ट (कर्णमें गए हुए) पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं ? या यावत् दश समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते है ? या संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या असंख्येय समयके कानमें पडे हुए पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? इसप्रकार पूछते हुए शिष्यको आचार्य उत्तर फरमाते हैं-एक समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें नहीं आते, न दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते, यावद्दश समयतकके पुद्गल भी ग्रहणमें नहीं आते है, न संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहणमे आते, किन्तु असंख्यसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहण करनेमे आते है, यह प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप हुआ ।

मूल—से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं ? मल्लगदिट्ठंतेण से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खेविज्जा से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होही से उदगबिंदू जे ण तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं पवाहेहिति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरियं होइ, ताहे 'हुं' ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के एस सद्दाइ ? तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं ।

छाया—अथ किं तत् (प्ररूपणं) मल्लकदृष्टान्तेन ? मल्लकदृष्टान्तेन स यथानामकः कश्चित्पुरुषः आपाकशीर्षतो मल्लकं गृहीत्वा तत्रैक मुदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, अन्योऽपि प्रक्षिप्तः, सोऽपि नष्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं रावेहिति—आर्द्रयिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं भरिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं प्रवाहयिष्यति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः २ अनन्तैः पुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति तदा हुमिति करोति, नो चैव जानाति क एष शब्दादिः ? तत ईहां प्रविशति ततो जानाति अमुक एष शब्दादिः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ।

टीका—प्र०— मल्लक दृष्टान्तसे वह व्यञ्जनावग्रह कैसा है ? उ०—शरावेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप इस प्रकार है जैसे—यथानाम किसी पुरुषने किसी आपाकशीर्ष यानें कुम्भारोंके भाण्ड पकानेके स्थानमें लगी हुई भाण्डराशि में से एक मल्लक—शरावा लेकर उसपर पानीकी एक बूंद डाली वह नष्ट हो गई, दूसरी बूंद डाली तो वह भी नष्ट हो गई,

इस प्रकार विंदुओंके गिराते २ एक वह जलविंदु होगा जो उस शरावेको गीला कर देगा, फिर इसीप्रकार विंदुओंके गिरनेसे दूसरा वह जलविंदु होगा जो उस शरावेपर ठहरेगा, फिर निरन्तर विन्दुओंके डालनेसे एक वह जल-विन्दु होगा जिससे वह शरावा भरजायगा, ऐसेही एक वह जलविन्दु होगा जो उस शरावेसे वाहर वह निकलेगा, इसी प्रकार (शरावेपर जलविन्दुकी तरह) कर्णेन्द्रियपर शब्दयोग्य अनन्त पुद्गलोंके वारंवार निरन्तर गिराते २ जव वह व्यञ्जन (इन्द्रिय अथवा उपकरणेन्द्रिय और पुद्गलोंका सम्बन्ध) पूर्ण हो जाता है याने भर जाता है तव वह श्रोता 'हुं' ऐसा करता है याने अर्थावग्रहसे शब्द आदिका ग्रहण करता है, फिर भी नहीं जानता कि यह शब्द आदि कैसा है व किसका है ! (अर्थावग्रहसे पूर्वका सामान्यमात्रग्राही ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है।) यही मल्लकदृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा हुई। फिर जव पदार्थोंका सामान्यग्रहणरूप अवग्रह हो गया तव ईहा-विचारणा-में प्रवेश करता है अर्थात् यह क्या ? इसका विचार करने लगता है, उसके फलस्वरूप जानता है कि यह अमुक शब्द आदि है, तव अवायमें प्रवेश करता है, फिर अवायके वाद अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त वह शब्दादि ज्ञान उपगत-आत्मामे परिणत रहता है, उसके वाद धारणामे प्रवेश करता है, फिर संख्यात काल या असंख्यात कालपर्यन्त हृदयमें धारण करता है-धारे रहता है।

उपरोक्त अवग्रह आदिका क्रम जागृत अवस्थामें कैसे घटित होगा ? क्योंकि जगे हुए प्राणीको शब्दश्रवणके समकालही अवग्रह ईहाके विना अवाय-ज्ञान होता दिखता है, इस शंकाके निवारणार्थ—

अवग्रह ईहा अवाय और धारणाका छ भेदोंमें उदाहरणके साथ -वर्णन करते हैं—

मूल—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रूवे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ ण धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घा-

इज्जा तेणं गंधत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस गंधेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस गंधे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा तेणं रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रसोत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रसे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा तेणं फासेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस फासओत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस फासे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा तेणं सुमिणोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सुमिणेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सुमिणे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं, से त्तं मल्लगदिट्ठंतेणं ॥ सू० ३५ ॥

छाया—अथ यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं शब्दं शृणुयात् तेन शब्द इत्यवगृहीतम्, नो चेव जानाति को वैष शब्दादिः ? तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति—अमुक एष शब्दः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । अथ यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं रूपं पश्येत् तेन रूपमित्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति किं वैतद् रूपमिति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति—अमुकमेतद्रूपम्, ततोऽवायं प्रविशति, ततस्तदुपगतं भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा

कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं गन्धमाजिघ्रेत्-तेन गन्ध इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति को वैष गन्ध इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति—अमुक एष गन्ध इति, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्। स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं रसमास्वादयेत तेन रस इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष रस इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति—अमुक एष रसः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं स्पर्शं प्रतिसंवेदयेत्, तेन स्पर्श इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति—को वैष स्पर्श इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति—अमुक एष स्पर्शः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं पश्येत्, तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति—को वैष स्वप्न इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष स्वप्नः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्, सैषा (प्ररूपणा) मल्लकदृष्टान्तेन ॥सू. ३५॥

टीका—श्रुत इन्द्रियसे अवग्रह आदिका स्वरूप कहते हैं-यथानामक किसी जागृत पुरुषने अव्यक्त शब्दको सुना और कुछ शब्द है ऐसा उसने ग्रहण किया, किन्तु जाति आदिसे नहीं जानता कि यह शब्द क्या है ! फिर ईहा—तर्कमें प्रवेश करता है तब जानता है कि यह अमुक शंख आदिका शब्द है, इसके बाद अवाय—निश्चयज्ञानमें प्रविष्ट होता है तब वह सुना हुआ शब्द उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है तब संख्येय-काल वा असंख्येयकालपर्यन्त हृदयमें धारण किये रहता है । चक्षुरिन्द्रियसे अवग्रहादि, जैसे—यथानामक किसी पुरुषने अव्यक्तरूपको देखा और कोई रूप है ऐसा उसने ग्रहण किया, फिर भी यह रूप कौनसा है ? ऐसा नहीं जानता, तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक मनुष्य आदिका

रूप है, बाद अवाय-निश्चयमें प्रवेश करता है, तब यह ऐसा हुआ रूप उपगत होता है, फिर धारणामें प्रविष्ट होता है, उसके बाद संख्येयकाल या असंख्येयकालतक उस रूपको हृदयमें धारण किये रहता है। घ्राणेन्द्रियसे अवग्रह आदि, जैसे-यथानामक कोई पुरुष अव्यक्त-जाति आदिसे अज्ञात गंधको सूंघता है उससमय सामान्य रूपसे उसने गंध ऐसा ग्रहण किया, किन्तु कौनसा गंध है? ऐसा नहीं जानता तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक गंध है, फिर अवायको प्राप्त करता है, तब यह गंधज्ञान उपगत-प्राप्त होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, बाद संख्येयकाल या असंख्येयकालतक उसको धारण किये रहता है। रसनेन्द्रियसे अवग्रह आदि जैसे-कोई यथानामक पुरुष पहलेपहल अव्यक्त रसका आस्वाद करता है, उससमय उसने कोई रस है ऐसा ग्रहण किया फिर भी यह कौनसा रस है? ऐसा नहीं जानता तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे अमुक रस है ऐसा जानता है, तब अवायमें प्रवेश करता है उसके बाद यह रसज्ञान उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है तब संख्येयकाल या असंख्येय कालपर्यन्त उस रसज्ञानको धारण किये रहता है। अब स्पर्शेन्द्रियसे अवग्रह आदिका स्वरूप दिखाते हैं, जैसे-अज्ञात नामवाला कोई पुरुष अव्यक्तस्पर्शका प्रतिसंवेदन-अनुभव करता है, उससमय कोई स्पर्श है ऐसा उसने ग्रहण किया, किन्तु ऐसा नहीं जानता कि यह कौनसा स्पर्श है? तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक स्पर्श है, फिर अवाय-निश्चयमें प्रवेश करता है, बाद वह स्पर्शज्ञान उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, तब संख्येयकाल अथवा असंख्येयकालतक उसको धारण कर रखता है। नोइन्द्रिय-मनसे अर्थावग्रह आदि ज्ञान इसप्रकार है, जैसे-किसी सामान्यनामा पुरुषने अव्यक्त स्वप्न देखा प्रारम्भमें उसने कुछ स्वप्न है ऐसा ग्रहण किया फिर भी ऐसा नहीं जानता कि यह कौनसा स्वप्न है? तब ईहामें प्रवेश करता है उससे ऐसा जानता है कि यह अमुक स्वप्न है, फिर अब अवायमें प्रवेश करता है, तब यह स्वप्न उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, तब संख्येयकाल या असंख्येयकालतक उसको धारण किए रहता है, यह मल्लक दृष्टान्तसे अवग्रह आदिका स्वरूप पूर्ण हुआ॥ सू० ३५॥

मूल—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ, न पासइ। खेत्तओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ, न पासइ। कालओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ, न पासइ। भावओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ।

छाया—तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतो नु—आभिनिबोधिकज्ञानी—आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न पश्यति। क्षेत्रत आभिनिबोधिकज्ञानी—आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति। कालत आभिनिबोधिकज्ञानी—आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति। भावतो नु—आभिनिबोधिकज्ञानी—आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति, न पश्यति।

टीका—वह आभिनिबोधिकज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भावसे। इनमें द्रव्यसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु देखता नहीं, क्षेत्रसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सर्वक्षेत्रको जानता है किन्तु देखता नहीं, कालकी अपेक्षासे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब कालको जानता है परन्तु देखता नहीं, भावसे मतिज्ञानी सब भावोंको सामान्य प्रकारसे जानता है किन्तु देखता नहीं।

मतिज्ञानका उपसंहार—

मूल—गाहा—८२

उग्गह ईहाऽवाओ, य धारणा एव हुंति चत्तारि।
आभिणिबोहियनाण,—स्स भेयवत्थू समासेणं ॥ १ ॥

८३ अत्थाणं उग्गहणं,—मि उग्गहो तह वियालणे ईहा।
ववसायम्मि अवाओ, धरणं पुण धारणं बिंति ॥ २ ॥

८४ उग्गह इक्कं समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु।
कालमसंखं संखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥ ३ ॥

८५ पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।
गंधं रसं च फासं, च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥ ४ ॥

८६ भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ।
वीसेढी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ५ ॥

८७ ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ॥ ६ ॥
से त्तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं, से त्तं मइनाणं ॥ सू. २६ ॥

छाया—गाथा—८२

अवग्रह ईहाऽवायश्च, धारणा—एवं भवन्ति चत्वारि।
आभिनिबोधिकज्ञानस्य, भेदवस्तूनि समासेन ॥ १ ॥

८३ अर्थानामवग्रहणे, अवग्रहस्तथा विचारणे-ईहा ।
व्यवसायेऽवाय', धरणं पुनर्धारणां ब्रुवते ॥ २ ॥

८४ अवग्रह एकं समयम्, ईहावायौ मुहूर्तमर्द्धं तु ।
कालमसंख्यं संख्येय(यम)च, धारणा भवति ज्ञातव्या ॥ ३ ॥

८५ स्पृष्टं शृणोति शब्दं, रूपं पुनः पश्यत्यस्पृष्टन्तु ।
गन्धं रसञ्च स्पर्शञ्च, बद्धस्पृष्टं व्यागृणीयात् ॥ ४ ॥

८६ भाषा समश्रेणीत', शब्दं यं शृणोति मिश्रितं शृणोति ।
विश्रेणिं पुन शब्दं, शृणोति नियमात्पराघाते ॥ ५ ॥

८७ ईहाऽपोहविमर्श', मार्गणा च गवेषणा ।
संज्ञा, स्मृति', मति', प्रज्ञा, सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥ ६ ॥

तदेतदाभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षम्, तदेतन्मतिज्ञानम् ॥ सू २६ ॥

टीका-गाथार्थ-१ अवग्रह, २ ईहा ३ अवाय है तथा ४ धारणा इसप्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानके संक्षेपसे चार भेद होते हैं ॥ ८२ ॥

अर्थोके ग्रहण होनेपर अवग्रहज्ञान तथा उनके पर्यालोचन-विचारमें ईहाज्ञान होता है, अर्थोके निश्चय होनेपर अवायज्ञान होता है तथा वासना आदिरूपसे धारण करनेको धारणा कहते हैं ॥ ८३ ॥

अवग्रह आदिका स्थिति-मान कहते हैं—

अवग्रह एक समयतक रहता है, (विशेष एवं सामान्य अर्थावग्रह पृथक् अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है,) ईहा और अवाय अर्द्धमुहूर्ततक होते हैं (परमार्थसे अन्तर्मुहूर्त समझना चाहिए), धारणा संख्यातकाल और असंख्यातकालतक वासनारूपसे होती है, ऐसा समझना चाहिए ॥ ८४ ॥

शब्द स्पृष्ट-छुआ गया-(प्राप्त)-सुना जाता है और रूपको मनुष्य अस्पृष्ट-अप्राप्त यानी इंद्रियसे बिना छूए देखता है, रस और गंध व स्पर्शको (घ्राण आदि इन्द्रियोंके साथ) स्पृष्ट व बद्ध-आत्मप्रदेशोंसे गृहीत होनेपर ही प्राणी निश्चय करता है अर्थात् जानता है ऐसा कहना चाहिए ॥ ८५ ॥

भाषाकी समश्रेणिमें रहा हुआ-शब्दरूपसे छोड़ा जाता हुआ पुद्गलसमूह भाषा कहाता है उसके प्रचारार्थ क्षेत्रप्रदेशोंकी पंक्तियाँ समश्रेणि हैं जो हरएक वक्ताके छहों दिशाओंमें होती हैं, उनमें छोड़ी गई भाषायें प्रथमसमयमेंही लोकान्ततक चली जाती है, उन श्रेणियोंमें रहा हुआ जो सुनता है वह मिश्रणीके शब्दद्रव्योंसे मिश्रित शब्दको सुनता है, और विश्रेणिमें नियमसे परद्रव्योंसे अभिहत उत्कृष्ट शब्दद्रव्योंके अभिघातसे वासित होनेपर ही शब्दको सुनता है ॥ ८६ ॥

ईहा, अपोह, विमर्श और मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति व प्रज्ञा ये सब आभिनिबोधिक ज्ञान हैं, अर्थात् मतिज्ञानके पर्याय नाम हैं ॥ ८७ ॥

स्पष्टीकरण–सदर्थकी पर्यालोचनाको ईहा और निश्चय करनेको अपोह कहते हैं, अन्य भी काल व सूक्ष्मताकृत–भेदसे भिन्नार्थक नाम होते हैं, जो सुगम हैं। यह आभिनिबोधिक परोक्षज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ, यह पांच ज्ञानोंमें पहला मतिज्ञान पूर्ण हुआ ॥ सू. ३६ ॥

अब श्रुतज्ञानका वर्णन करते हैं।

मूल—से किं तं सुयनाणपरोक्खं? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पण्णत्तं, तं जहा–अक्खरसुयं १, अणक्खरसुयं २, सण्णिसुयं ३, असण्णिसुयं ४, सम्मसुयं ५, मिच्छासुयं ६, साइयं ७, अणाइयं ८, सपज्जवसियं ९, अपज्जवसियं १०, गमियं ११, अगमियं १२, अंगपविट्ठं १३, अणंगपविट्ठं १४ ॥ सू. ३७ ॥

छाया–अथ किं तच्छ्रुतज्ञानपरोक्षम्? श्रुतज्ञानपरोक्षं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–१ अक्षरश्रुतम्, २ अनक्षरश्रुतम्, ३ संज्ञिश्रुतम्, ४ असंज्ञिश्रुतम्, ५ सम्यक्-श्रुतम्, ६ मिथ्याश्रुतम्, ७ सादिकम्, ८ अनादिकम्, ९ सपर्यवसितम्, १० अपर्यवसितम्, ११ गमिकम्, १२ अगमिकम्, १३ अङ्गप्रविष्टम्, १४ अनङ्गप्रविष्टम् ॥सू. ३७॥

टीका–प्र०–वह श्रुतज्ञानरूप परोक्षज्ञान किस प्रकार है? उ०–श्रुतज्ञानरूप परोक्षज्ञान चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे कि–१ अक्षरश्रुत २ अनक्षरश्रुत ३ संज्ञिश्रुत ४ असंज्ञिश्रुत ५ सम्यक्श्रुत ६ मिथ्याश्रुत ७ सादिश्रुत ८ अनादिश्रुत ९ सपर्यवसितश्रुत १० अपर्यवसितश्रुत ११ गमिकश्रुत १२ अगमिकश्रुत १३ अङ्गप्रविष्ट और १४ अनङ्गप्रविष्ट ॥ सू. ३७ ॥

क्रमशः श्रुतज्ञानके प्रत्येक भेदोंका स्वरूप सूत्रकार स्वयं कहते हैं—

मूल—से किं तं अक्खरसुयं? अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–सन्नक्खरं, वंजणक्खरं, लद्धिअक्खरं। से किं तं सन्नक्खरं? सन्नक्खरं अक्खरस्स संठाणागिई, से त्तं सन्नक्खरं। से किं तं वंजणक्खरं? वंजणक्खरं–अक्खरस्स वंजणाभिलावो, से त्तं वंजणक्खरं। से किं तं लद्धिअक्खरं? लद्धिअक्खरं–अक्खरलद्धियस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तं जहा–सोइंदियलद्धिअक्खरं, चक्खिदियलद्धिअक्खरं, घाणिंदियलद्धिअक्खरं,

रसणिंदियलद्धिअक्खरं, फासिंदियलद्धिअक्खरं, नोइंदियलद्धिअक्खरं, से त्तं लद्धिअक्खरं, से त्तं अक्खरसुयं ।

से किं तं अणक्खरसुयं ? अणक्खरसुए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–

गाहा–८८

ऊससियं नीससियं, निच्छूढं खासियं च छीयं च ।
निस्सिंघियमणुसारं, अणक्खरं छेलियाईयं ॥ १ ॥

से त्तं अणक्खरसुयं ॥ सू. ३८ ॥

छाया–अथ किं तदक्षरश्रुतम् ? अक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–संज्ञाक्षरं १, व्यञ्जनाक्षरं २, लब्ध्यक्षरम् ३ । अथ किं तत् संज्ञाक्षरम् ? संज्ञाक्षरम्–अक्षरस्य संस्थानाऽऽकृति, तदेतत्संज्ञाक्षरम् । अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम् ? व्यञ्जनाक्षरम्–अक्षरस्य व्यञ्जनाभिलाप', तदेतद् व्यञ्जनाक्षरम् । अथ किं तल्लब्ध्यक्षरम् ? लब्ध्यक्षरम्–अक्षरलब्धिकस्य लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, घ्राणेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, रसनेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, स्पर्शेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, नोइन्द्रियलब्ध्यक्षरम् ६, तदेतल्लब्ध्यक्षरम्, तदेतदक्षरश्रुतम् ।

अथ किं तदनक्षरश्रुतम् ? अनक्षरश्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–

गाथा–८८

उच्छ्वसितं निःश्वसितं, निष्ठ्यूतं काशितञ्च क्षुतञ्च ।
निस्सिङ्घितमनुस्वार,–मनक्षरं सेंटितादिकम् ॥ १ ॥

तदेतदनक्षरश्रुतम् ॥ सू. ३८ ॥

टीका–प्र०–यह अक्षरश्रुत कौनसा है ? उ०–अक्षरश्रुत तीन प्रकारका कहा गया है, जैसे–संज्ञाक्षर १ व्यञ्जनाक्षर २ लब्ध्यक्षर ३ । प्र०–यह संज्ञाक्षर क्या है ? उ०–आकार आदि–अक्षरकी पट्टी आदिपर बनाई हुई संस्थानाकृति–रचना विशेषको संज्ञाक्षर कहते हैं, यह हुआ संज्ञाक्षर । प्र०–अब यह व्यञ्जनाक्षर किस प्रकार है ? उ०–अक्षरके व्यञ्जनाभिलापको व्यञ्जनाक्षर कहते हैं, अर्थात् अकार आदि अक्षरोंके अर्थका स्पष्ट बोध हो उस तरह उच्चारण करना व्यञ्जनाक्षर है,

१ ज्ञान आत्मासे कभी नहीं हटता इसलिये यह अक्षर है सर्वजीवोंमें ज्ञानका अनन्तवाँ भाग भी सदा उघाड़ा रहता ही है इस प्रकारके कारण अकारादि वर्ण भी उपचारसे अक्षर कहाते हैं । आगमरूप श्रुतको अक्षरश्रुत कहते हैं ।

यह हुआ व्यञ्जनाक्षर। प्र०–वह लब्धि–अक्षर क्या है? उ०–अक्षरलब्धिवाले जीवको लब्धिअक्षर–भावश्रुत उत्पन्न होता है, वह छह प्रकारका है, जैसे–श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षर १, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षर २, घ्राणेन्द्रियलब्ध्यक्षर ३, रसनेन्द्रियलब्धि–अक्षर ४, स्पर्शेन्द्रियलब्धि–अक्षर ५, नोइन्द्रियलब्धि–अक्षर ६, यह लब्ध्यक्षरका वर्णन हुआ यह पूर्वोक्त अक्षरश्रुत पूर्ण हुआ। स्पष्टीकरण–श्रोत्रेन्द्रियसे शब्द सुननेपर यह शङ्खका शब्द है इत्यादि अक्षरानुविद्ध जो शब्दार्थकी पर्यालोचनाका विज्ञान होता है वह श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तक होनेसे श्रोत्रेन्द्रिय–लब्धिअक्षर कहाता है, इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये,

प्र० अव वह अनक्षरश्रुत किस प्रकार है? उ०–अनक्षरश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे कि–उच्छ्वसित–ऊर्ध्वश्वास लेना, निःश्वसित–नीचा श्वास लेना, निष्ठ्यूत–थूँकना, काशित–खांसना, और छींकना नाक निसंघना और अनुस्वारयुक्त चेष्टा करना इसप्रकार सेण्टितादिक अनक्षरश्रुत हैं। यह अनक्षरश्रुतका वर्णन हुआ। स्पष्टीकरण ये उच्छ्वसित आदि ध्वनिमात्र भावश्रुतके कारण होनेसे द्रव्यश्रुत कहाते हैं, अभिप्रायपूर्वक कुछ विशेषताके साथ किसीको कुछ अर्थ समझानेके लिए जब उच्छ्वास आदिका प्रयोग किया जाता है, तब चेष्टाएँ प्रयोगकर्ताके भावश्रुतकी फलरूप और श्रोताके भावश्रुतकी कारण होती हैं और सुनी जाती हैं, इसलिए इनको अनक्षरात्मक श्रुत कहते हैं। हस्त आदिकी चेष्टाएँ इसप्रकार सुनी नहीं जाती अतः इनका अनक्षरश्रुतमें ग्रहण नहीं होता है॥ सू. ३८॥

मूल––से किं तं सण्णिसुयं? सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालिओवएसेणं, हेऊवएसेणं, दिट्ठिवाओवएसेणं, से किं तं कालिओवएसेणं? कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ, से त्तं कालिओवएसेणं। से किं तं हेऊवएसेणं? हेऊवएसेणं जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं असण्णीति लब्भइ, से त्तं हेऊवएसेणं। से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं? दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ, से त्तं दिट्ठिवाओवएसेणं, से त्तं सण्णिसुयं, से त्तं असण्णिसुयं॥ सू. ३९॥

छाया–अथ किन्तत् संज्ञिश्रुतम् ? संज्ञिश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवादोपदेशेन, अथ कोऽयं कालिक्युपदेशेन (संज्ञी) ? कालिक्युपदेशेन यस्याऽस्ति ईहा, अपोह', मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्श', स संज्ञीति लभ्यते, यस्य नास्ति ईहा, अपोह', मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्श', सोऽसंज्ञीति लभ्यते, सोऽयं कालिक्युपदेशेन। अथ कोऽयं हेतूपदेशेन (संज्ञी) ? हेतूपदेशेन यस्याऽस्ति–अभिसन्धारणपूर्विका करणशक्ति' स संज्ञीति लभ्यते, यस्य नास्ति–अभिसन्धारण पूर्विका करणशक्तिः, सोऽसंज्ञीति लभ्यते, सोऽयं हेतूपदेशेन। अथ कोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन (संज्ञी) ? दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञी लभ्यते, असंज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन असंज्ञी लभ्यते, सोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन (संज्ञी) तदेतत् संज्ञिश्रुतम्, तदेतदसंज्ञिश्रुतम् ॥ सू. ३९ ॥

टीका–प्र०–अब वह संज्ञिश्रुत क्या है? उ०–संज्ञिश्रुत तीन प्रकारका कहा गया है जैसे–१ कालिकी उपदेशसे, २ हेतुपदेशसे, ३ दृष्टिवादोपदेशसे। प्र०–अब कालिकी उपदेशसे वह संज्ञी क्या है? उ०–कालिकी उपदेशसे–जिस जीवको ईहा अपोह, मार्गणा गवेषणा, चिन्ता और विमर्श ये हैं, वह संज्ञी ऐसा प्राप्त होता–कहाता है। जिस जीवको ईहा अपोह मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श ये नहीं हैं, वह असंज्ञी ऐसा–कहाता है। (सम्मूर्छिम, पञ्चेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय आदि अतिशय अल्प मनोलब्धिवाले होनेसे अस्फुट अर्थकोही जानते हैं, इससे उनकी आहारादि संज्ञा अव्यक्त रूपमें होती है ईहा आदि मानसिक क्रियाके अभावसे ये असंज्ञी हैं) यह दीर्घकालिकी उपदेशसे संज्ञी असंज्ञी हुए। प्र०–अब हेतूपदेशसे वह संज्ञी असंज्ञी किस प्रकार है? उ०–हेतूपदेशसे संज्ञी असंज्ञी, जैसे–जिस प्राणीको अव्यक्त वा व्यक्त विचारपूर्वक क्रियामें प्रवृत्ति होती है वह हेतूपदेशसे संज्ञी प्राप्त होता है, सारांश–जो बुद्धिपूर्वक अपनी देहके पालनके लिए इष्ट आहार आदिमें प्रवृत्ति करता और अनिष्टसे निवृत्त होता है, वह हेतूपदेशसे संज्ञी है, इस प्रकार विकलेन्द्रिय भी संज्ञी कहाते हैं। जिस जीवको विचारपूर्वक क्रिया करनेमें प्रवृत्ति नहीं है वह असंज्ञी कहाता है (जैसे–एकेन्द्रिय जीव), यह हेतूपदेशसे संज्ञी व असंज्ञीका विचार हुआ। प्र०–दृष्टि–सम्यक्त्वआदिके कथनकी अपेक्षा वह संज्ञी कौन है?

---

१ यह ऐसाही है वा ऐसाही इस प्रकारके विचारको विमर्श कह ते हैं यानें यथावस्थित वस्तुका वर्णन करना विमर्श है।

उ०-सम्यग्दृष्टिके श्रुतका क्षयोपशम होनेसे दृष्टिवादोपदेशके द्वारा संज्ञी होता है, ऐसेही असंज्ञिश्रुत-मिथ्याश्रुतके क्षयोपशमसे असंज्ञी कहाता है, यह दृष्टिवादोपदेशसे संज्ञी असंज्ञीका वर्णन हुआ। संज्ञी व असंज्ञी जीवोंके भेदसे संज्ञि असंज्ञिश्रुत भी तीन प्रकारका होता है। यह संज्ञिश्रुत हुआ। यह असंज्ञिश्रुतभी वर्णनसे पूर्ण हुआ॥ सू. ३९॥

मूल—से किं तं सम्मसुयं ? सम्मसुयं जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा-आयारो १, सूयगडो २, ठाणं ३, समवाओ ४, विवाहपण्णत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणाइं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२, इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं, अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुयं, तेण परं भिण्णेसु भयणा, से त्तं सम्मसुयं ॥ सू ४० ॥

छाया-अथ किन्तत्सम्यक्-श्रुतम् ? सम्यक्-श्रुतं यदिदम्-अर्हद्भिर्भगवद्भिरुत्पन्नज्ञानदर्शनधरैस्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः, अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः, सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः प्रणीतं द्वादशाङ्गं[1] गणिपिटकम्, तद्यथा-आचारः १, सूत्रकृतम् २, स्थानम् ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाताधर्मकथाः ६, उपासकदशाः ७, अन्तकृद्दशाः ८, अनुत्तरौपपातिकदशाः ९, प्रश्नव्याकरणानि १०, विपाकश्रुतम् ११, दृष्टिवादः १२, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्-श्रुतम्, अभिन्नदशपूर्विणः सम्यक्-श्रुतम्, ततः परं भिन्नेषु भजना, तदेतत्सम्यक्-श्रुतम् ॥ सू. ४० ॥

टीका—प्र०-अब वह सम्यक्श्रुत कौनसा है? उ०-उत्पन्न हुए केवलज्ञान और केवलदर्शनको धारण करनेवाले तथा जो देव दानव मानव आदि प्राणिवर्गसे आदरपूर्वक देखे गये और स्तुति नमस्कारको प्राप्त करनेवाले हैं व भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता होनेसे सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं, उन अर्हत् भग-

१ द्वादशानामङ्गाना समाहारे द्वादशाङ्गीति रूपम्, अत्र तु द्वादशाङ्गानि यस्मिन्निति बहुव्रीहि समासे द्वादशाङ्गमिति।

न्त-तीर्थंकरोंसे प्रणीत जो यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक-पेटीके रत्नपिटक (पेटी)की तरह आचार्यका सर्वस्व है, वह सम्यक्श्रुत है, उसके बारह अङ्ग हैं, जैसे—आचाराङ्ग १, सूत्रकृताङ्ग २, स्थानाङ्ग ३, समवायाङ्ग ४, विवाहप्रज्ञप्ति-अङ्ग ५, ज्ञाता-धर्मकथाङ्ग ६ उपासकदशाङ्ग ७ अन्तकृद्दशाङ्ग ८, अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग ९, प्रश्नव्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, दृष्टिवाद १२ इस प्रकार यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक चौदहपूर्वीको सम्यक्श्रुत है तथा अभिन्नदशपूर्वी-सम्पूर्ण दश पूर्वका ज्ञान धारण करनेवालेको सम्यक्श्रुत है, क्योंकि-दशपूर्वका सम्पूर्ण ज्ञान सम्यक्त्वीको ही होता है, उससे आगे पूर्वोक्त भिन्न होनेपर याने कुछ कम दश नव आदि पूर्वज्ञान हो तो सम्यक्श्रुतपनकी भजना है याने उसके लिये यह सम्यक्श्रुत भी हो सकता है और मिथ्या भी, नियम नहीं है। यह सम्यक्श्रुत हुआ ॥ सू. ४० ॥

मूल—से किं त मिच्छासुयं ? मिच्छासुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छा-दिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं, तं जहा—भारहं, रामायणं, भीमासुरुक्खं(क्कं), कोडिल्लय, सगडभद्दियाओ, खोड(घोडग)मुहं, कप्पासियं, नागसुहुमं, कणगसत्तरी, वइसेसियं, बुद्धवयणं, तेरासियं, काविलियं, लोगायय, सट्ठितंतं, माढरं, पुराण, वागरणं, भागवयं, पायंजली, पुस्सदेवयं, लेहं, गणियं, सउणरुयं, नाडयाइं, अहवा बावत्तरि कलाओ, चत्तारि य वेया संगोवंगा, एयाइं मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइं मिच्छासुयं, एयाइं चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहियाइं सम्मसुयं, अहवा मिच्छदिट्ठिस्स वि एयाइं चेव सम्मसुयं, कम्हा ? सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते मिच्छदिट्ठिया तेहिं चेव समएहिं चोइया समाणा केइ सपक्खदिट्ठीओ चयंति, से त्तं मिच्छासुयं ॥ सू. ४१ ॥

छाया—अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् ? मिथ्याश्रुतं यदिदमज्ञानिकैर्मिथ्यादृष्टिकैः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तद्यथा—भारतम् १, रामायणम् २, भीमासुरोक्तम् ३, कौटिल्यकम् ४, शकटभद्रिका[1] ५, खोडा(घोटक)मुखम् ६, कार्पासिकम् ७, नागसूक्ष्मम् ८, कनकसप्तति[2] ९, वैशेषिकम् १०, बुद्धवचनम् ११, त्रैराशिकम् १२, कापिलिकम् १३, लौकायतिकम् १४, षष्ठितन्त्रम् १५, माठरम्

१ इसमें इतिहासका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ। २ कणादका वैशेषिकदर्शन। ३ त्रैराशिक मतका एक ग्रन्थ ऐसा प्रतीत। ४ माठर—सांख्य तत्त्वस्थापक एक व्याख्यान।

१६, पुराणम् १७, व्याकरणम् १८, भागवतम् १९, पातञ्जलिः २०, पुष्यदैवतम् २१, लेखम् २२, गणितम् २३, शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५, अथवा द्वासप्ततिः कलाः, चत्वारश्च वेदाः साङ्गोपाङ्गाः, एतानि मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि मिथ्याश्रुतम्, एतानि चैव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि सम्यक्-श्रुतम् । अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि चैव सम्यक्-श्रुतम्, कस्मात् ? सम्यक्त्वहेतुत्वात्, यस्मात्ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयैर्नोदिताः सन्तः केचित्स्वपक्षदृष्टीस्त्यजन्ति, तदेतन्मिथ्याश्रुतम् ॥ सू. ४१ ॥

टीका-प्र०-वह मिथ्याश्रुत क्या है ? उ०-अल्पमति मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा अपनी इच्छानुसार बुद्धिकी कल्पनासे कल्पित जो ये ग्रन्थ वे मिथ्याश्रुत हैं, जैसे-भारत १, रामायण २, भीमासुर कथितग्रन्थ ३, कौटिल्य-अर्थशास्त्र ४, शकटभद्रिका ५, खोड (घोटक) मुख ६, कार्पासिक ७, नागसूक्ष्म ८, कनकसप्तति ९, वैशेषिक १०, बुद्धवचन ११, त्रैराशिक १२, कापिलीय[1] १३, लौकायत १४, षष्ठितन्त्र १५, माठर १६, पुराण १७, व्याकरण-शब्दशास्त्र या पाशावली आदिके प्रश्नोत्तर १८, भागवत १९, पातञ्जलि २०, पुष्यदैवत २१, लेख २२, गणित २३, शकुनरुत २४, नाटक २५, अथवा ७२ कलाएँ और अङ्गोपाङ्गसहित चार वेद, ये सबग्रन्थ मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वरूपसे परिगृहीत-ग्रहण किये गये मिथ्याश्रुत हैं और ये ही भारत आदि सम्यग्दृष्टिवालेको सम्यक्त्वरूपसे परिगृहीत याने यथार्थरूपसे ग्रहण किये गये सम्यक्श्रुत हैं, अथवा मिथ्यादृष्टिके भी येही सम्यक् श्रुत हैं, क्योंकि उनकेसम्यक्त्वमें ये हेतु होते हैं, जिसलिये वे मिथ्यादृष्टि उन भारत आदिशास्त्र ग्रन्थोंसेही प्रेरणा-बोध पाये हुए कई स्वपक्षदृष्टि-अपनी मिथ्यादृष्टिको छोड देते हैं, इसलिये उनके लिये भी वे वेद आदि सम्यक्श्रुत हो जाते हैं। यहमिथ्याश्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. ४१ ॥

मूल—से किं तं साइयं सपज्जवसियं ? अणाइयं अपज्जवासियं च ? इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइयं सपज्जवसियं, अवुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइयं अपज्जवसियं, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं सम्मसुयं एगं पुरिसं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं,

---

१ यह कपिलमुनिकृत अङ्कशास्त्र है। २ अनुयोगद्वारमें इसको लौकिकागमके नामसे कहा है।

पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, कालओ णं उस्सप्पिणिं ओसप्पिणिं च पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, नोउस्सप्पिणिं नोओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, तया ते भावे पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, खाओवसमियं पुण भावं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसियं च, अभवसिद्धियस्स सुयं अणाइयं अपज्जवसियं च, सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणियं पज्जवक्खरं निप्फज्जइ, सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंत भागो निच्चुग्घाडिओ (चिट्ठइ)। जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा—

" सुट्ठुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंदसूराणं। "

से त्तं साइयं सपज्जवसियं, से त्तं अणाइयं अपज्जवसियं॥सू ४२॥

छाया—अथ किं तत्सादिकं सपर्यवसितम्? अनादिकमपर्यवसितञ्च? इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं व्युच्छित्तिनयार्थतया सादिकं सपर्यवसितम्, अव्युच्छित्तिनयार्थतयाऽनादिकमपर्यवसितम्, तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यत:, क्षेत्रत:, कालतो भावत:, तत्र द्रव्यतो नु सम्यक्-श्रुतम्—एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, बहून् पुरुषांश्च प्रतीत्य अनादिकमपर्यवसितम्, क्षेत्रतो नु पञ्च भरतानि पञ्चैरावतानि प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, पञ्चमहाविदेहानि प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्, कालत उत्सर्पिणीमवसर्पिणीञ्च प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, नोउत्सर्पिणीं नोअवसर्पिणीञ्च प्रतीत्याऽनादिकमपर्यवसितम्, भावतो नु ये यदा जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, तदा तान् भावान् प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, क्षायोपशमिकं पुनर्भावं प्रतीत्याऽनादिकमपर्यवसितम्, अथवा भवसिद्धिकस्य श्रुतं सादिकं सपर्यवसितञ्च, अभव-

सिद्धिकस्य श्रुतमनादिकमपर्यवसितञ्च । सर्वाकाशप्रदेशाग्रं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितं पर्यवाक्षरं निष्पद्यते, सर्वजीवानामपि च अक्षरस्याऽनन्तभागो नित्यमुद्घाटितः (तिष्ठति), यदि पुनः सोऽपि–आव्रियेत तेन जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात् ॥

'सुष्ठ्वपि मेघसमुदये भवति प्रभा चंद्रसूर्याणाम् ।'

तदेतत् सादिकं सपर्यवसितम्, तदेतदनादिकमपर्यवसितम् ॥ सू ४२ ॥

टीका–प्र०–भगवन्! वह सादि सपर्यवसित–आदि अन्तवाला और अनादि अनन्त–श्रुत किस प्रकार है? उ०–पूर्वोक्त यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक व्यवच्छित्तिनय–पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सादि और सान्त है, तथा अव्यवच्छित्तिनय–द्रव्यार्थिकनयके अर्थकी अपेक्षा याने द्रव्यकी अपेक्षासे आदि अन्तरहित है। द्रव्य क्षेत्र आदिकी अपेक्षा सादि व अनादि श्रुतका विचार करते हैं–वह सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित श्रुत संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे कि १ द्रव्यसे २ क्षेत्रसे ३ कालसे व ४ भावसे, इनमे द्रव्यसे एक पुरुषकी अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सान्त है और बहुतसे पुरुषोंकी अपेक्षासे कभी अभाव नहीं होनेके कारण अनादि अनन्त है, क्षेत्रसे पांच भरत व पांच ऐरावतको लेकर सादि सान्त है और पांच महाविदेहकी अपेक्षा श्रुत आदि व अन्तसे रहित है, कालसे उत्सर्प्पिणी और अवसर्प्पिणी कालकी दृष्टिसे सादि सान्त है, और नोउत्सर्प्पिणी नोअवसर्प्पिणी–हानि वृद्धिरहित कालकी अपेक्षासे अनादि अनन्त भी है, भावसे जिनप्रज्ञपित जो भाव जिस समय कहे जाते, नाम आदि भेदसे दिखाये जाते व प्ररूपण दर्शन निदर्शन और उपनयरूप उपदर्शनसे कहे जाते हैं, उस समयके उन भावोंका आश्रयण करके सादि सपर्यवसित श्रुत है, और क्षायोपशमिक भावकी अपेक्षा अनादि अनन्त है, अथवा भव सिद्धिकका श्रुत सादि सान्त है क्योंकि मिथ्याश्रुतके त्याग और केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी अपेक्षासे भव्यका श्रुत आदि अन्तवाला है, अभवसिद्धिकका श्रुत–मिथ्याश्रुत अनादि और अन्तरहित है, सभी आकाशके प्रदेशाग्रको सभी आकाश–प्रदेशोंसे अनन्तवार गुणन करनेपर पर्यायाक्षर निष्पन्न होता है। अर्थात् एक आकाश प्रदेशपर अनन्त अगुरुलघु पर्यायें होती हैं, अतः पर्यायपरिमाणका अक्षरज्ञान होता है, धर्मास्तिकाय आदि अल्पपरिमाणमे होनेसे सूत्रमें साक्षात् नहीं कहे गये हैं, किन्तु यहाँ उनका भी ग्रहण करना चाहिए, अर्थात् सब द्रव्यपर्यायोंका जितना परिमाण होता है, अक्षर परिमाण भी उतना होता है, वह अक्षर ज्ञानरूप और अकारादि वर्णरूप है, अकार ककार आदि प्रत्येक अक्षर ह्रस्व दीर्घ प्लुत आदि स्वपरपर्यायोंसे सभी द्रव्यपर्यायके समान अनन्त है और वह उत्कृष्ट श्रुतकेवलीको होता है। और अन्य सब

जीवोंको भी अक्षरका अनन्तवाँ भाग अर्थात् श्रुतज्ञानका अनन्तवाँ भाग सदा खुला रहता है, अगर फिर वह अनन्तवाँ भाग भी आवृत हो जाय तो उससे जीव अजीवपनको प्राप्त कर जाय क्योंकि चैतन्य जीवका लक्षण है, इस विषयको दृष्टान्तसे कहते हैं—"बहुत सघन बादलके पटलसे आच्छादित होने पर भी चन्द्र सूर्यकी प्रभा होती है यानी कुछ तो प्रकाश होता ही है, (इसी प्रकार अनन्तानन्त ज्ञानावरण-दर्शनावरणके कर्मपरमाणुसे आत्मप्रदेशके वेष्टित होनेपर भी आत्माको सर्वजघन्य ज्ञानमात्रा रहतीही है, वह ज्ञानमात्रा मतिश्रुतात्मक है, इसलिये श्रुतज्ञानका अनादिपन विरुद्ध नहीं होता है,) यह सादि सपर्यवसित श्रुत तथा अनादि अपर्यवसित श्रुतका भी वर्णन पूर्ण हुआ॥ सू. ४१॥

मूल—से किं तं गमियं? गमियं दिट्ठिवाओ, से किं तं अगमियं? अगमियं कालियं सुयं, से त्तं गमियं, से त्तं अगमियं।

छाया—अथ किं तद्गमिकम्? गमिकं दृष्टिवादः। अथ किं तदगमिकम्? अगमिकं कालिकं श्रुतम्, तदेतद् गमिकम्, तदेतदगमिकम्।

टीका-प्र०-वह गमिक श्रुत किस प्रकार है? उ०-जिस सूत्रके आदि मध्य और अन्तमें कुछ विशेषतासे वारंवार उसी पाठका उच्चारण हो उसको गमिक कहते हैं, दृष्टिवाद गमिक श्रुत है। वह अगमिक श्रुत कौनसा है? उ०-अगमिक-गमिकसे विपरीत, आचाराङ्ग आदि कालिक श्रुत अगमिक हैं। यह गमिक श्रुत व अगमिक श्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ।

मूल— अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च। से किं तं अंगबाहिरं? अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आवस्सयं च आवस्सयवइरित्तं च। से किं तं आवस्सयं? आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—सामाइयं १, चउवीसत्थओ २, वंदणयं ३, पडिक्कमणं ४, काउस्सग्गो ५, पच्चक्खाणं ६, से त्तं आवस्सयं।

छाया—अथवा तत्समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टम् अङ्गबाह्यञ्च। अथ किं तद्—अङ्गबाह्यम्? अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आवश्यकञ्च आवश्यकव्यतिरिक्तञ्च। अथ किं तदावश्यकम्, आवश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सामायिकं १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनकं ३, प्रतिक्रमणं ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६, तदेतदावश्यकम्।

टीका–अथवा वह श्रुतज्ञान संक्षेपसे दो प्रकारका है, जैसे–अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। स्पष्टीकरण–श्रुतपुरुषके द्वादश अङ्गोंसे बहिर्भूत जो शास्त्र है वह अङ्गबाह्य–अनङ्गप्रविष्ट है, अथवा गणधरदेवके वचनोंका आश्रय कर स्थविरोंसे रचे गये शेष श्रुत अनङ्गप्रविष्ट होते हैं, तथा जो नियमितरूपसे सर्वदा अङ्गकी तरह नहीं रहते वे अनङ्गप्रविष्ट कहाते हैं। प्र०–भगवन्! वह अङ्गबाह्य किस प्रकार है? उ०–अङ्गबाह्य श्रुत दो प्रकारका है, जैसे–आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त–भिन्न। प्र०–वह आवश्यक क्या है? उ०—आवश्यक छ प्रकारका कहा गया है, जैसे–सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दना ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५, और प्रत्याख्यान ६। (अवश्य करनेयोग्य क्रियाएँ आवश्यक हैं, उनको कहनेवाला श्रुत भी आवश्यक है,) यह आवश्यकका वर्णन पूर्ण हुआ।

मूल—से किं तं आवस्सयवइरित्तं? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–कालियं च उक्कालियं च। से किं तं उक्कालियं? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—दसवेआलियं, कप्पियाकप्पियं, चुल्लकप्पसुयं, महाकप्पसुयं, उववाइयं, रायपसेणियं जीवाभिगमो, पण्णवणा, महापण्णवणा, पमायप्पमायं, नंदी, अणुओगदाराइं, देविंदत्थओ, तंदुलवेयालियं, चंदाविज्जयं, सूरपण्णत्ती, पोरिसिमंडलं, मंडलपवेसो, विज्जाचरणविणिच्छओ, गणिविज्जा, झाणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयविसोही, वीयरागसुयं, संलेहणासुयं, विहारकप्पो, चरणविही, आउरपच्चक्खाणं, महापच्चक्खाणं एवमाइ, से त्तं उक्कालियं।

छाया–अथ किन्तदावश्यकव्यतिरिक्तम्? आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–कालिकञ्च–उत्कालिकञ्च। अथ किं तदुत्कालिकम्? उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–दशवैकालिकं १, कल्पिकाकल्पिकं (कल्पाकल्पम्) २, चुल्ल(क्षुल्ल) कल्पश्रुतं ३, महाकल्पश्रुतम् ४, औपपातिकं ५, राजप्रश्नीकं ६, जीवाभिगमः ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमादं १०, नन्दी ११, अनुयोगद्वाराणि १२, देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं १४, चन्द्रकवेध्यं १५, सूर्यप्रज्ञप्तिः १६, पौरुषीमण्डलं १७, मण्डलप्रवेशः १८, विद्याचरणविनिश्चयः १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्तिः २२,

आत्मविशोधि २३, वीतरागश्रुतं २४, सल्लेखनाश्रुतं २५, विहारकल्प २६, चरणविधि २७, आतुरप्रत्याख्यानं २८, महाप्रत्याख्यानम् २९, एवमादि, तदेतदुत्कालिकम् ।

टीका-प्र० अब आवश्यकसे भिन्न वह कौनसा श्रुत है? उ०-आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत दो प्रकारका है, जैसे-कालिक श्रुत और उत्कालिक श्रुत, (जो दिनरातके प्रथम और अन्तिम प्रहररूप कालमें पढे जाते हैं वे कालिक तथा जो उससे भिन्न समयमें पढे जाते वे उत्कालिक कहाते हैं।) प्र०-भगवन्! वे उत्कालिक श्रुत कौनसे हैं? उ०-उत्कालिक श्रुत अनेक प्रकारके कहे गये हैं, जैसे कि दशवैकालिक, कल्पाकल्प, क्षुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, औपपातिक, रायपसेणिय, जीवाभिगम प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना प्रमादाप्रमाद, नन्दी अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैचालिय(तन्दुल वैचारिक) चन्द्रविद्या, सूर्य-प्रज्ञप्ति, पौरुषीमण्डल, मण्डलप्रवेश, विद्याचरणविनिश्चय गणिविद्या, ध्यान-विभक्ति, मरणविभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत संलेखनाश्रुत विहारकल्प, चरणविधि आतुरप्रत्याख्यान महाप्रत्याख्यान इत्यादि, इस प्रकार नामके अनुसार विषयवाले ये २९ शास्त्र उत्कालिक हैं। यह उत्कालिकश्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ।

मूल—से किं तं कालियं? कालियं अणेगविहं पण्णत्तं? तं जहा—उत्तरज्झयणाइं, दसाओ, कप्पो, ववहारो, निसीहं, महानिसीहं, इसिभासियाइं, जंबूदीवपन्नत्ती, दीवसागरपन्नत्ती, चंदपन्नत्ती, खुड्डिआविमाणपविभत्ती, महल्लियाविमाणपविभत्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, अरुणोववाए, वरुणोववाए, गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए, देविंदोववाए, उट्ठाणसुयं, समुट्ठाणसुयं, नागपरियावणियाओ, निरयावलियाओ, कप्पियाओ, कप्पवडंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हीदसाओ, (आसीविसभावणाणं, दिट्ठिविसभावणाणं, सुमिणभावणाणं, महासुमिणभावणाणं, तेयग्गिनिसग्गाणं,) एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स, तहा संखिज्जाइं पइन्नगसहस्साइं मज्झिमगाणं जिणवराणं, चोद्दसपइन्नगसहस्साणि

१ उत्कालिकश्रुतका विशेष वर्णन परिशिष्टमें देखो।

भगवओ वद्धमाणसामिस्स, अहवा जस्स जत्तिया सीसा उप्पत्तिआए वेणइयाए कम्मयाए परिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेया, तस्स तत्तियाइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेयबुद्धा वि तत्तिया चेव, से त्तं कालियं, से त्तं आवस्सयवइरित्तं, से त्तं अणंगपविट्ठं ॥ सू. ४३ ॥

छाया-अथ किं तत्कालिकम्? कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-उत्तराऽध्ययनानि, दशाः, कल्पः, व्यवहारः, निशीथं, महानिशीथम्, ऋषिभाषितानि, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः, चन्द्रप्रज्ञप्तिः, क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्तिः, महल्लिका(महा)-विमानप्रविभक्तिः, अङ्गचूलिका, वर्गचूलिका, विवाहचूलिका, अरुणोपपातः, वरुणोपपातः; गरुडोपपातः, धरणोपपातः, वैश्रमणोपपातः, वेलन्धरोपपातः, देवेन्द्रोपपातः, उत्थानश्रुतं, समुत्थानश्रुतं, नागपरिज्ञापनिकाः, निरयावलिकाः, कल्पिकाः, कल्पावतंसिकाः, पुष्पिताः, पुष्पचूलिका(चूला), वृष्णिदशाः, (आशीविषभावनं, दृष्टिविषभावनंस्वप्नभावनं, महास्वप्नभावनं तेजोऽग्निनिसर्गः) एवमादिकानि चतुरशीति प्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हत ऋषभस्वामिन आदितीर्थङ्करस्य, तथा संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमकानां जिनवराणाम्, चतुर्दशप्रकीर्णकसहस्राणिभगवतो वर्द्धमानस्वामिनः, अथवा यस्य यावन्तः शिष्या औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्मजया पारिणामिक्या चतुर्विधया बुद्ध्योपपेताः, तस्य तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राणि, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्तश्चैव, तदेतत्कालिकम्, तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तम्, तदेतदनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू. ४३ ॥

टीका-प्र०-वह कालिकश्रुत कौनसा है? उ०-कालिकश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे कि १ उत्तराध्ययनसूत्र, २ दशाश्रुतस्कन्ध, ३ कल्प-बृहत्कल्पसूत्र, ४ व्यवहार, ५ निशीथ, ६ महानिशीथ, ७ ऋषिभाषित, ८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ९ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, १० चन्द्रप्रज्ञप्ति, ११ क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति, १२ महतीविमानप्रविभक्ति, १३ अङ्गचूलिका, १४ वर्गचूलिका, १५ विवाहचूलिका, १६ अरुणोपपात, १७ वरुणोपपात, १८ गरुडोपपात, १९ धरणोपपात, २० वैश्र-

मर्णोपपात, २१ वेलन्धरोपपात, २२ देवेन्द्रोपपात, २३ उत्थानश्रुत, २४ समुत्थानश्रुत, २५ नागपरिज्ञा २६ निरयावलिका, २७ कल्पिका २८ कल्पावतंसिका, २९ पुष्पिता ३० पुष्पचूलिका ३१ वृष्णिदशा (अन्धकवृष्णिदशा) आशीविष[1] इत्यादिक ८४ हजार प्रकीर्णक प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् श्री ऋषभदेव स्वामीके हैं, तथा संख्यात हजार प्रकीर्णक मध्यम जिनवरोंके हैं, भगवान् वर्द्धमान स्वामीके १४ हजार प्रकीर्णक होते हैं। अथवा जिन तीर्थङ्करके जितने शिष्य औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा और पारिणामिकी इन चार प्रकारकी बुद्धिसे युक्त हैं, उन तीर्थंकरोंके उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं और प्रत्येक बुद्ध भी उतनेही हैं, यह कालिकश्रुत आवश्यकव्यतिरिक्त, तथा अनङ्गप्रविष्ट श्रुतका वर्णन समाप्त हुआ ॥ सू. ४३ ॥

मूल—से किं तं अंगपविट्ठं ? अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं, तं जहा—आयारो १, सूयगडो २, ठाणं ३, समवाओ ४, विवाहपन्नत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणाइं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२ ॥ सू. ४४ ॥

छाया—अथ किं तत् अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचार[2] १, सूत्रकृत् २, स्थानं ३, समवाय[2] ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्मकथा[2] ६, उपासकदशा[2] ७, अन्तकृद्दशा[2] ८, अनुत्तरोपपातिकदशा[2] ९, प्रश्नव्याकरणानि १०, विपाकश्रुतम् ११, दृष्टिवाद[2] १२ ॥ सू. ४४ ॥

टीका—प्र०—वह अङ्गप्रविष्ट श्रुत कैसा है ? उ०—अङ्गप्रविष्टश्रुत बारह प्रकारका कहा गया है, जैसे-१ आचार-आचाराङ्ग २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग ४ समवायाङ्ग, ५ विवाहप्रज्ञप्ति-भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग ९ अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरण ११ विपाकश्रुत, और १२ दृष्टिवाद ॥ सू. ४४ ॥

प्रत्येकका स्वरूप व परिचय क्रमसे आगे सूत्रकार स्वयं कहते हैं—

मूल—से किं तं आयारे ? आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयरविणयवेणइयसिक्खाभासाअभासाचरणकरणजायामाया-

---

1 आशीविषभावन दृष्टिविषभावन, चारणभावन स्वप्नभावन महास्वप्नभावन और तेजोऽग्निनिसर्ग के नाम भी किन्हीं २ प्रतियोंमें मिलते हैं।

2 सम्बुधत्वमपि भवति नामेषि विभक्त्यर्थे।

वित्तीओ आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–नाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे, आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ,संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीई उद्देसणकाला, पंचासीई समुद्देसणकाला, अट्ठारसपयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं आयारे ॥ सू. ४५ ॥

छाया–अथ कः स आचारः? आचारे श्रमणानां निर्ग्रन्थानामाचारगोचरविनयवैनयिकशिक्षाभाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तय आख्यायन्ते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–ज्ञानाचारः १, दर्शनाचारः २, चारित्राचारः ३, तपआचारः ४, वीर्याऽऽचारः ५, आचारे नु परीता[1] (परिमिता) वाचना, संख्येयानि–अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, स नु अङ्गार्थतया प्रथममङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं

---

१ परिपूर्वकस्य क्तप्रत्ययान्तस्य गत्यर्थकस्य इण्धातो. परीतमिति रूपम्, तस्य परीता–परिमितेति तात्पर्यम् ।

ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, स एष आचार ॥ सू ४५ ॥

टीका-प्र०भव-आचार श्रुत नामके प्रथम अङ्गमें क्या वर्णन है ? उ०-आचाराङ्गमें श्रमणनिर्ग्रन्थोंके अनेकविध आचार, गोचर भिक्षाग्रहणाविधि, विनय और विनयफल तथा ग्रहणा व मूलगुण व उत्तरगुणकी आसेवना रूप शिक्षा, सत्य व्यवहारभाषा, असत्य और मिश्र अभाषा-नहीं बोलने-योग्य वचन, महाव्रत आदि आचरण, व पिण्डविशुद्धि आदि करण, संयमयात्रा-संयमनिर्वाहके लिये आहारका प्रमाण और उसके निर्वाहकी वृत्ति, ये सब भाव कहे जाते हैं। यह आचार संक्षेपसे पांच प्रकारका है, जैसे-१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्याचार। आचाराङ्गमें सूत्र अर्थ प्रदानरूप वाचनाएँ परिमित हैं, उपक्रम निक्षेप आदि संख्येय अनुयोगद्वार हैं, वेढ (छन्दोविशेष भी) संख्यात हैं। तथा संख्यात श्लोक और संख्यात निर्युक्तियाँ हैं, प्रतिपत्ति-द्रव्य आदि पदार्थोंके कथनकी शैली, या प्रतिमा-अभिग्रह विशेषरूप प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह आचार प्रथम अङ्ग है, जो इसके श्रुतस्कन्ध और पचीस अध्ययन हैं, ८५ उद्देशन काल और ८५ समुद्देशनकाल हैं, पदाग्रपदपरिमाणसे अठारह हजार इसके पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्तगम-अर्थज्ञान होते हैं (एक १ पदमें अपरिमित अर्थ ज्ञान होनेसे) स्वपरभेदसे पर्याय भी अनन्त हैं। त्रसद्वीन्द्रिय आदि परिमित हैं और स्थावर अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत तथा प्रयोग व विस्रसासे होनेवाले प्रतसम्प्याराग आदि-कृत ये सभी आचाराङ्गमें निबद्ध-स्वरूपसे कहे गए, तथा-निकाचित-निर्युक्ति-हेतु व उदाहरणपूर्वक अनेक तरहसे व्यवस्थापित ऐसे जिनप्रज्ञप्त भाव इसमें कहे जाते हैं महापथ प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन आदि विशेषतासे समझाये जाते हैं। भावसे सम्यक् आचाराङ्गके पढ़नेपर जो फल होता है उसे दिखाते हैं-वह आचाराङ्गका पाठक पढ़करके पाने आचाररूप हो जाता है, जिस प्रकार आचाराङ्गमें कहा है उसी प्रकार आचार आदिका ज्ञाता होता है, इसी प्रकार विशेषता के साथ भी उसको जानता है, इस प्रकार आचाराङ्गमें चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है। यह आचाराङ्गका स्वरूप पूर्ण हुआ। सू ४५ ॥

मूल—से किं तं सूयगडे ? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाऽजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमय-परसमए सूइज्जइ, सूयगडे णं असीयस्स किरियावाइसयस्स, चउरासीइए अकिरियावाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं,

१ देखें परिशिष्ट।

तेसट्ठाणं पासंडियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ, सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ संगहणीओ) संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए बिईए अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसण-काला, तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पणविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं सूयगडे २ ॥ सू० ४६ ॥

छाया–अथ किं तत् सूत्रकृतम्? सूत्रकृते लोकः सूच्यते, अलोकः सूच्यते, लोकालोकौ सूच्येते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते, जीवाऽजीवाः सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते, स्वसमयपरसमयाः सूच्यन्ते, सूत्रकृते–अशीत्यधिकस्य क्रिया-वादिशतस्य, चतुरशीतेरक्रियावादिनां, सप्तषष्ठेरज्ञानिकवादिनां (अज्ञानवादिनां), द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्ठ्य-धिकानां पाषण्डिकशतानां व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते, सूत्रकृते परीता वाचनाः, संख्येयानि–अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः (संख्येयाः सङ्ग्र-हण्यः) संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परिमि-(री)तास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिन प्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते

ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, स एष आचार ॥ सू ४५ ॥

टीका-प्र०अब-आचार श्रुत नामके प्रथम अङ्गमें क्या वर्णन है? उ०-आचाराङ्गमें श्रमणनिर्ग्रन्थोंके अनेकविध आचार, गोचर भिक्षाग्रहणविधि, विनय और विनयफल, तथा ग्रहणा व मूलगुण व उत्तरगुणकी आसेवना रूप शिक्षा, सत्य व्यवहारभाषा, असत्य और मिश्र अभाषा-नहीं बोलने-योग्य वचन, महाव्रत आदि आचरण व पिण्डविशुद्धि आदि करण, संयमयात्रा-संयमनिर्वाहके लिये आहारका प्रमाण और उसके निर्वाहकी वृत्ति, ये सब भाव कहे जाते हैं। यह आचार संक्षेपसे पांच प्रकारका है, जैसे-१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चरित्राचार, ४ तपाचार ५ वीर्याचार। आचाराङ्गमें सूत्र अर्थ प्रदानरूप वाचनाएँ परिमित हैं, उपक्रम निक्षेप आदि संख्येय अनुयोगद्वार हैं, वेढ (छन्दोविशेष भी) संख्यात हैं। तथा संख्यात श्लोक और संख्यात निर्युक्तियाँ हैं, प्रतिपत्ति-द्रव्य आदि पदार्थोंके कथनकी शैली, या प्रतिमा-अभिग्रह विशेषरूप प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह आचार प्रथम अङ्ग है, दो इसके श्रुतस्कन्ध और पचीस अध्ययन हैं, ८५ उद्देशनकाल और ८५ समुद्देशनकाल हैं, पदप्रमाणपरिमाणसे अठारह हजार इसके पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्तगम-अर्थज्ञान होते हैं (एक १ पदमें अपरिमित अर्थ ज्ञान होनेसे) स्वपरभेदसे पर्याय भी अनन्त हैं। त्रसद्वीन्द्रिय आदि परिमित हैं और स्थावर अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत तथा प्रयोग व विस्रसासे होनेवाले घटकम्प्यादम आदि-कृत ये सभी आचाराङ्गमें निबद्ध स्वरूपसे कहे गए, तथा-निकाचित-निर्युक्ति-हेतु व उदाहरणपूर्वक अनेक तरहसे व्यवस्थापित ऐसे जिनप्रदर्शित भाव इसमें कहे जाते हैं, महापन प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन आदि विशेषतासे समझाये जाते हैं। भावसे सम्यक् आचाराङ्गके पढनेपर जो फल होता है उसे दिखाते हैं-वह आचाराङ्गका पाठक तद्रूप याने आचाररूप हो जाता है, जिस प्रकार आचाराङ्गमें कहा है उसी प्रकार आचार आदिका ज्ञाता होता है, इसी प्रकार विशेषता के साथ भी उसको जानता है, इस प्रकार आचाराङ्गमें चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है। यह आचाराङ्गका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू ४५ ॥

मूल—से किं तं सूयगडे? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाऽजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमय-परसमए सूइज्जइ, सूयगडे णं असीयस्स किरियावाइसयस्स, चउरासीइए अकिरियावाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं,

---

१ देखें परिशिष्ट।

तेसट्ठाणं पासंडियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ, सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ संगहणीओ) संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए बिईए अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसणकाला, तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं सूयगडे २ ॥ सू० ४६ ॥

छाया—अथ किं तत् सूत्रकृतम्? सूत्रकृते लोकः सूच्यते, अलोकः सूच्यते, लोकालोकौ सूच्येते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते, जीवाऽजीवाः सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते, स्वसमयपरसमयाः सूच्यन्ते, सूत्रकृते—अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य, चतुरशीतेरक्रियावादिनां, सप्तषष्ठेरज्ञानिकवादिनां (अज्ञानवादिनां), द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्ठ्यधिकानां पाषण्डिकशतानां व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते, सूत्रकृते परीता वाचनाः, संख्येयानि—अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः (संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः) संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परिमि-(री)तास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिन प्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते

उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करणप्ररूपणाऽऽख्यायते, तदेतत्सूत्रकृतम् ॥ सू. ४६ ॥

टीका-प्र०-भगवन्! सूत्रकृताङ्गमें क्या वर्णन है? उ०-सूत्रकृतसे पञ्चास्ति कायात्मक लोक सूचित किया जाता है (कहा जाता है) अलोक कहा जाता है और लोकालोक दोनों कहे जाते हैं जीव कहे जाते, अजीव कहे जाते और जीव अजीव उभय कहे जाते हैं तथा सूत्रकृतसे स्वसमय-जैनदर्शन कहा जाता, पर समय-परमत कहा जाता और स्वसमय परसमय दोनों कहे जाते हैं, सूत्रकृतमें एकसौ अस्सी क्रियावादियोंके, चौरासी अक्रियावादियोंके, सतसठ अज्ञानवादियोंके बत्तीस विनयवादियोंके इसप्रकार सब मिलकर तीनसौ त्रेसठ पाखण्डियोंके व्यूहको बनाकर स्वसमय-स्वमत स्थापन किया जाता है, सूत्रकृतमें परिमित वाचनायें हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात वेढरूप छन्द और संख्येय श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्ति व संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, अङ्गकी अपेक्षा यह सूत्रकृत दूसरा अङ्ग है, दो श्रुतस्कन्ध और इसके तेवीस अध्ययन हैं, तेंतीस उद्देशनकाल तथा तेंतीस ही समुद्देशनकाल हैं, पदाग्रसे इसके छत्तीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्यायें हैं, त्रस परिमित हैं और स्थावर अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यरूपसे शाश्वत और प्रयोग व विस्रसाकरण रूपसे निबद्ध हैं तथा हेतु आदिसे व्यवस्थापित जो जिनप्रणीत भाव हैं वे इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन निदर्शन व उपदर्शन आदि विशेषणवाले कहे जाते हैं, (अध्ययनकर्त्ताके लिये फल दिखाते हैं)-सूत्रकृताङ्गका यह पाठक अध्ययनोक्त विषयमें तदेकतान होनेसे एवम्भूत होता है, शास्त्रोक्त पदार्थोंका उसीप्रकार ज्ञाता व तदनुसारही विज्ञाता होता है, इसप्रकार सूत्रकृतमें चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है, यह हुआ सूत्रकृताङ्गनामक दूसरा अङ्ग ॥ सू० ४६ ॥

मूल—से किं त ठाणे ? ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ, ससमयपरसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ, ठाणे णं टंका, कूडा, सेला, सिहरिणो, पब्भारा, कुडाइं, गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ, आघविज्जंति, ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणग विवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ, ठाणे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ,

१ देखें परिशिष्टमें

संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए तईए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एगवीसं उद्देसणकाला, एगवीसं समुद्देसणकाला, बावत्तरिपयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं ठाणे ३ ॥ सू. ४७ ॥

छाया—अथ किं तत् स्थाने ? स्थानेन जीवाः स्थाप्यन्ते, अजीवाः स्थाप्यन्ते, जीवाऽजीवाः स्थाप्यन्ते, स्वसमयः स्थाप्यते, परसमयः स्थाप्यते, स्वसमयपरसमयौ स्थाप्येते, लोकः स्थाप्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकाऽलोकौ स्थाप्येते, स्थाने टङ्कानि, कूटानि, शैलाः, शिखरिणः, प्राग्भाराः, कुण्डानि, गुहाः, आकराः, ह्रदाः, नद्य आख्यायन्ते, स्थाने एकादिकयैकोत्तरिकया वृद्ध्या दशस्थानकविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणाऽऽख्यायते, स्थाने परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया तृतीयमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, दशाऽध्ययनानि, एकविंशतिरुद्देशनकालाः, एकविंशतिः समुद्देशनकालाः, द्वासप्ततिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एव विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, तदेतत्स्थानम् (ने) ॥ सू. ४७ ॥

टीका—प्र०—गुरुदेव ! स्थानाङ्गमें क्या विषय है ? उ०—स्थानाङ्गसे जीव स्थापन किये जाते, अजीव स्थापन किये जाते और जीवअजीव दोनों

स्थापन किये जाते हैं, स्वसमय स्थापन किया जाता है परसमय स्थापन किया जाता है तथा स्वसमय परसमय दोनों स्थापन किये जाते हैं लोकस्वरूप स्थापन किया जाता है, अलोक स्थापन किया जाता है और लोक अलोक दोनों स्थापन किये जाते हैं फिर स्थानाङ्गमें टङ्क-पर्वतके टूटे हुए तट, शिखर, शैल-हिमवत् आदि पर्वत, शिखरवाले पर्वत, प्राग्भार-ऊपरसे कुछ झुका हुआ कूट अथवा पर्वतके ऊपर हाथीके कुम्भकी आकृतिके समान निकले हुए विभाग, कुण्ड-गङ्गाप्रपातकुण्ड आदि गुफा-नदी गुफा आकर-लोह आदिकी खान, द्रह-ह्रद-जलाशय, और नदी ये सब कहे जाते हैं। स्थानाङ्गमें एकसे लेकर आगे एक एककी वृद्धिसे दश स्थानतक बढे हुए भावोंकी प्ररूपणा की जाती है, स्थानाङ्गमें परिमित वाचनाएँ और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेढ-छन्दोविशेष संख्यात व श्लोकभी संख्यात हैं, निर्युक्ति संग्रहणी और प्रतिपत्तियां संख्येय संख्येय हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह स्थानाङ्ग तीसरा अङ्ग है, इसके एक श्रुतस्कन्ध और दश अध्ययन हैं, उद्देशन काल तथा समुद्देशन काल एक-वीस हैं, पदाग्रसे बहत्तर हजार पद हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त गम-अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्यव हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं तथा धर्मास्ति-कायादिक शाश्वत व प्रयोग आदि कृत इसमें निबद्ध हैं, हेतु आदिसे व्यवस्थापित जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण दर्शन निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेषतापूर्वक कहे जाते हैं, इसके अध्ययनसे यह पाठक तद्रूप हो जाता है ऐसे शास्त्रोक्त अर्थोंका ज्ञाता तथा इसी प्रकार विज्ञाता बनता है, इस प्रकार यहाँ चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है, यह हुआ स्थानाङ्ग तीसरा अङ्ग ॥ सू० ८७ ॥

मूल—से किं तं समवाए ? समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति, ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ, लोए समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ, लोयालोए समासिज्जइ। समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाणसयविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ, दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ। समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे अज्झयणे, एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले, एगे चोयाले

सयसहस्से पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनि-काइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परू-विज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं समवाए ४ ॥ सू० ४८ ॥

छाया–अथ कः समवायः ? समवायेन जीवाः समाश्रीयन्ते, अजीवाः समाश्रीयन्ते, जीवाऽजीवाः समाश्रीयन्ते, स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समाश्रीयते, स्वसमयपरसमयौ समाश्रीयेते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते, लोकालोकौ समाश्रीयेते। समवाये नु एकादिकानामेकोत्तरिकाणां स्थानशतविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणाऽऽख्यायते, द्वादशविधस्य च गणिपिटकस्य पल्लवाग्रः समाश्रीयते। समवायस्य परीता वाचनाः, संख्येयान्य-नुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, स नु अङ्गार्थतया चतुर्थमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकमध्ययनम्, एक उद्देशनकालः, एकः समुद्देशनकालः, एकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतसहस्रं पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्ध-निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररू-प्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, स एवं समवायः ॥ सू० ४८ ॥

टीका–प्र०–देव ! समवायाङ्गमें क्या विषय है ? उ०–समवायाङ्गमें यथाव-स्थितरूपसे जीव आश्रयण किये जाते, अजीव आश्रयण किये जाते और जीव-अजीव दोनों विपरीत प्ररूपणासे खींचकर सम्यक् प्ररूपणामें प्रक्षिप्त किये जाते हैं, स्वसमय, परसमय, और एकसाथ स्वसमय-परसमय दोनों यथावस्थित रूपसे आश्रयण किये जाते है, लोक, अलोक और लोकालोक

उभय सम्यक् प्ररूपणासे कहे जाते हैं। समवाय-जीवादि पदार्थोके निश्चय करनेवाले सूत्रसे एक आदि एकएककी आगे वृद्धिसे सैकडों स्थानपर्यन्त बढे हुए भावोंकी प्ररूपणा कही जाती है, और बारह प्रकारके गणिपिटक याने अङ्गसूत्रोंका संक्षिप्त परिचय आख्यान किया जाता है, अर्थात् कहा जाता है। समवायाङ्गकी परिमित वाचनाएँ और संख्यात इसके अनुयोगद्वार हैं, वेढ-छन्दो-विशेष-श्लोक निर्युक्ति, सग्रहणी, और प्रतिपत्तियां ये सभी संख्यात हैं। अङ्गकी दृष्टिसे वह समवाय चौथा अङ्ग है, इसका एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देशनकाल और एकही समुद्देशनकाल है, पदोंमसे एकलाख चौआलीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्त अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्यायें हैं, परिमित त्रस अनन्त स्थावर और धर्मास्तिकायादिक शाश्वत तथा प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध है, हेतु आदिसे निर्णयमात जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट किये जाते हैं, समवायका वह पाठक तदात्मरूप बन जाता है, तथा सूत्रके कथनानुसार पदार्थोका ज्ञाता व वैसेही विज्ञाता होता है, इस प्रकार समवायमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह समवायाङ्ग चौथा अङ्ग हुआ ॥ सू० ४८॥

मूल— से किं तं विवाहे ? विवाहे णं जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, ससमए विआहिज्जति, परसमए विआहिज्जति, ससमयपरसमए विआहिज्जंति, लोए विआहिज्जति, अलोए विआहिज्जति, लोयालोए विआहिज्जंति। विवाहस्स ण परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से ण अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीस वागरणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं विवाहे ५॥ सू० ४९॥

छाया—अथ का सा व्याख्या ? (कः स विवाहः ?) व्याख्यायां जीवा व्याख्यायन्ते, अजीवा व्याख्यायन्ते, जीवाऽजीवा व्याख्यायन्ते, स्वसमयो व्याख्यायते, परसमयो व्याख्यायते, स्वसमयपरसमयौ व्याख्यायेते, लोको व्याख्यायते, अलोको व्याख्यायते, लोकालोकौ व्याख्यायेते। व्याख्यायाः परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, सा अङ्गार्थतया पञ्चममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकं सातिरेकमध्ययनशतं, दशोद्देशकसहस्राणि, दश समुद्देशकसहस्राणि, षट्त्रिंशद् व्याकरणसहस्राणि, द्वे लक्षे अष्टाशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रासाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, सैषा व्याख्या ५ ॥ सू० ४९ ॥

टीका— गुरुदेव! व्याख्याप्रज्ञप्तिमे क्या वर्णन है? उ०-व्याख्याप्रज्ञप्तिमें जीवोंके स्वरूपका व्याख्यान होता, है अजीवोंकी व्याख्या की जाती और जीव-अजीव दोनोंकी व्याख्या की जाती है, स्वसमयकी व्याख्या की जाती, परसमय-परदर्शनकी व्याख्या की जाती, और दोनोंकी सम्बन्धपूर्वक व्याख्या की जाती है, लोकका विवेचन किया जाता, अलोकका वर्णन किया जाता और लोकालोक उभयका साथ विवेचन किया जाता है। व्याख्याप्रज्ञप्तिकी परिमित वाचनाएँ और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, सङ्ग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ प्रत्येक सख्यात १ हैं, अङ्गकी अपेक्षा वह व्याख्यासूत्र पाँचवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और कुछ अधिक एकसौ इसके अध्ययन हैं, दशहजार उद्देशक और दशहजारही समुद्देशक हैं, छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं, पदपरिमाणसे दो लाख अठासीहजार पद है, संख्येय अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्याय हैं, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत व प्रयोग आदि कृतसे यह निबद्ध है, हेतु आदिसे निर्णीत जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते है, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट कहे जाते हैं, व्याख्याङ्गका वह पाठक अध्ययनकी तल्लीनतासे तद्रूप होजाता है, तथा सूत्रवचनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता व इसीप्रकार विज्ञाता

बतता है, इसतरह व्याख्याङ्गमें चरण करणकी प्ररूपणा की जाती है, यह व्याख्याप्रज्ञप्ति पञ्चम अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू. ४९ ॥

मूल—से किं तं नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआया, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयउवक्खाइयासयाइं, एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंति त्ति समक्खायं। नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीसं अज्झयणा, एगूणवीसं उद्देसणकाला, एगूणवीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं नायाधम्मकहाओ ६ ॥ सू. ५० ॥

छाया—अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथा: ? ज्ञाताधर्मकथासु नु ज्ञातानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक-पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः,

श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनाति, सुकुलप्रत्यावृत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्चाऽऽख्यायन्ते, दश धर्मकथानां वर्गाः, तत्र-एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च पञ्चाऽऽख्यायिकाशतानि, एकैकस्यामाख्यायिकायां पञ्च पञ्चोपाख्यायिकाशतानि, एकैकस्यामुपाख्यायिकायां पञ्च पञ्चाऽऽख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि, एवमेव सपूर्वापरेण अध्युष्टाः कथानककोटयो भवन्तीति समाख्यातम्। ज्ञाताधर्मकथानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया षष्ठमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्ययनानि, एकोनविंशतिरुद्देशनकालाः, एकोनविंशतिः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता ज्ञाताधर्मकथाः ॥ सू. ५० ॥

टीका—गुरुदेव। ज्ञाताधर्मकथा- उदाहरण और धर्मकथाप्रधान अङ्ग कौनसा है? उ०—ज्ञाताधर्मकथामे ज्ञातों—उदाहरणभूतव्यक्तियों—के नगर, उद्यान, बगीचे, वनखण्ड, चैत्य—यक्षायतन, समवसरण, राजा, मातापिता व धर्माचार्य, व धर्मकथा, इसलोक परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष भोगका परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, पर्याय-दीक्षासमय, श्रुतग्रहण, तपउपधान-तपस्याविशेषकी आराधना, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान-अन्तिम समयका अनशन या आहारत्यागकी समयगणना, पादपोपगमन-टूटे हुए वृक्षकी तरह चेष्टारहित अनशन (संथारा) करना, देवलोकगमन, सुकुलमें (मनुष्यजन्मकी अपेक्षा) प्रत्यागमन-पीछे आना, पुनः सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति और अन्तक्रिया ये सब कहे जाते है।

---

१ उदाहरणभूतानाम्-इत्यर्थः।

२ चैत्य-व्यन्तरायतनम् समवा० वृ पृ १०८

प्रथम श्रुतस्कन्धके जो १९ अध्ययन हैं उनमें पहलेके दश केवल ज्ञात हैं, उनमें आख्यायिकाओंका सम्भव नहीं है, शेष नव अध्ययन और दूसरे श्रुतस्कन्धमें आख्यायिकायें आती हैं जो इसप्रकार हैं—

धर्मकथाओंके दश वर्ग हैं उनमें प्रत्येक धर्मकथामें पांच २ सौ आख्यायिकायें हैं, एक १ आख्यायिकामें पांच २ सौ उपाख्यायिकायें हैं, एक १ उपाख्यायिकामें पांच २ सौ आख्यायिकोपाख्यायिकायें हैं, इस प्रकार पहले पीछेकी मिलाकर अध्युष्ट–साढेतीन करोड कथायें होती हैं, ऐसा तीर्थङ्कर गणधरोंने कहा है। ज्ञाताधर्मकथाकी परिमित वाचनायें हैं संख्यात अनुयोगद्वार तथा वेढ श्लोक निर्युक्ति संग्रहणी, और प्रतिपत्तियाँ भी संख्यात २ हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह ज्ञाताधर्मकथा छट्ठा अङ्ग है दो श्रुतस्कन्ध और उन्नीस इसके अध्ययन हैं, उद्देशनकाल और समुद्देशनकाल भी १९–१९ हैं, पदपरिमाणसे संख्यात[1] हजार पद हैं, संख्यात अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान और अनन्त पर्यायें हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं, धर्मद्रव्य आदि शाश्वत और प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध व हेतुआदिसे निर्णीत जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष समझाये जाते हैं एकाग्रतासे अध्ययन करनेवाला वह पाठक तद्रूप बन जाता है, तथा उक्त पदार्थोंका ज्ञाता व इसी प्रकार विज्ञाता होता है, इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथामें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है। यह ज्ञाताधर्मकथानामक छट्ठा अङ्ग हुआ ॥ सू. ५० ॥

मूल—से किं त उवासगदसाओ? उवासगदसासु णं समणोवासयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणया, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, उवासगदसाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे

---

१ संख्यात ४८ हजार पद हैं [illegible]

सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जा(इं) पयसहस्सा(इं) पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं उवासगदसाओ ७ ॥ सू० ५१ ॥

छाया—अथ कास्ता उपासकदशाः ? उपासकदशासु श्रमणोपासकानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो मातापितरो धर्माचार्या धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासप्रतिपादनता, प्रतिमाः, उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुकुलप्रत्यायातयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्चाख्यायन्ते, उपासकदशानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया सप्तममङ्गमेकः श्रुतस्कन्धः, दशाऽध्ययनानि, दशोद्देशनकालाः, दश समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता उपासकदशाः ॥ सू० ५१ ॥

टीका—प्र०—भगवन् ! वे उपासकके दशाऽध्ययन कौनसे हैं ? उ०—इस प्रकार हैं, उपासकदशामें श्रमणोपासकों—साधुओंके सेवक श्रावकों—के नगर,

उद्यान व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा मातापिता, धर्माचार्य, धर्मकथा इहलोक व परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष भोगोंका परित्याग, प्रव्रज्या-श्रावकदीक्षा पर्याय-श्रावकपनकी अवस्थाका कालमान श्रुतग्रहण तपउपधान शीलव्रत अणुव्रत, गुणव्रत, विरमण-पापसे निवृत्ति स्वरूप सामायिक आदि, व्रत तथा प्रत्याख्यान पोषध-उपवास इनको स्वीकार करना प्रतिमाओंका आराधन, उपसर्ग, संलेखना भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन-अन्तिम समयमें वृक्षकी तरह निश्चेष्ट रहकर अनशन साधना देवलोकगमन, और मनुष्यभवमें फिर सुकुलकी प्राप्ति आदि पुनः सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति, और अन्त-क्रिया-संसारके बन्धनसे मुक्त होना, ये सब विषय कहे जाते हैं, उपासकदशाकी परिमित वाचनाएँ और संख्येय अनुयोगद्वार हैं वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियाँभी संख्यात परिमाणवाली हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह उपासकदशा सातवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और इसके दश अध्ययन हैं, दश उद्देशन काल और समुद्देशन काल भी दश हैं। पदपरिमाणसे संख्यात हजार पद हैं, संख्यात अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान व अनन्त ही पर्यायें हैं, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। धर्मद्रव्य आदि शाश्वत व प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध तथा हेतुपूर्वक व्यवस्थापित ऐसे जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेषरूपमें समझाये जाते हैं। सूत्रका स्थिरचित्तसे अध्ययन करनेवाला यह पाठक तद्रूप बन जाता है, तथा श्रावकके समीचीन कर्तव्योंका यथार्थ ज्ञाता व वैसे ही विज्ञाता हो जाता है। उपासकदशाङ्गमें इस प्रकार चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है। यह उपासकदशानामक सातवाँ अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू० ५१ ॥

मूल—से किं तं अंतगडदसाओ ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अंतकिरियाओ आघविज्जंति, अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे,

१ देखें परिशिष्ट। २. श्रावकके लिये ११ प्रतिमाओं-व्रत विशेष होती हैं, देखें परिशिष्ट-ई.

एगे सुयक्खंधे, अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं अंतगडदसाओ ८ ॥ सू० ५२ ॥

छाया—अथ कास्ता अन्तकृद्दशाः ? अन्तकृद्दशासु—अन्तकृतां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, अन्तक्रिया आख्यायन्ते, अन्तकृद्दशासु परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतयाऽष्टममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, अष्टौ वर्गाः, अष्टावुद्देशनकालाः, अष्टौ समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता अन्तकृद्दशाः ॥ सू० ५२ ॥

टीका—प्र०-गुरुजी! अन्तकृतके वे दश-अध्ययन कौनसे हैं? उ०-अन्तकृत्के दश अध्ययनोंमें अन्तकृत-कर्म या संसारका अन्त करनेवाले महापुरुषोंके नगर, उद्यान, चैत्य-व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्माचार्य व उनकी धर्मकथाएँ, इसलोक और परलोककी ऋद्धि-

विशेषता, भोगोंका परित्याग प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा पर्याय-दीक्षापर्याय, श्रुतग्रहण, तपउपधान-तपोधारण, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन-आजीवनका अनशनव्रत अन्तक्रिया-शैलेशी अवस्था आदि, ये सब भाव कहे जाते हैं। अन्तकृद्दशाओंमें परिमित वाचनायें और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेढ श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियाँ सब संख्यात [1] हैं, अङ्गकी अपेक्षा यह अन्तकृद्दशा आठवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और इसके आठ वर्ग हैं, उद्देशनकाल व समुद्देशन काल भी आठ आठ हैं, पदपरिमाणसे संख्येय-हजारों पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थज्ञान तथा अनन्तपर्यायें हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं, तथा धर्म द्रव्य आदि शाश्वत और प्रयोग आदि कृतसे यह अन्तकृद्दशा निबद्ध है, हेतुप्रमाणपूर्वक निर्णय प्राप्त जिनप्रणीतभाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष कहे जाते हैं, फल-यह अध्ययन करनेवाला तदेकतानचित्तसे अध्ययन करनेके कारण तदात्मरूप हो जाता है, सूत्रके कथनानुसार पदार्थोंका यथार्थ ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है। इस प्रकार अन्तकृद्दशाङ्गमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह आठवाँ अन्तकृद्दशाङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू० ५१ ॥

मूल—से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति, अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिण्णि वग्गा, तिण्णि उद्देसणकाला, तिण्णि समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा

---

१ ११ लाख ४ हजार पद परिमाणभी कुछ आचार्योंने माना है, इतनी व्याख्यामें इतने ही पद होते हैं।

२ भत्तपच्चक्खाणाइं।

अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ ॥ सू० ५३ ॥

छाया—अथ कास्ता अनुत्तरौपपातिकदशाः ? अनुत्तरौपपातिकदशासु अनुत्तरौपपातिकानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, प्रतिमाः[1], उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, अनुत्तरौपपातिकत्वे-उपपत्तिः, सुकुलप्रत्यावृत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते, अनुत्तरौपपातिकदशासु परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया नवममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, त्रयो वर्गाः, त्रय उद्देशनकालाः, त्रयः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता अनुत्तरौपपातिकदशाः ॥ सू० ५३ ॥

टीका—प्र०-देव ! वह अनुत्तरौपपातिकदशा क्या है ? उ०-अनुत्तरौपपातिकके दश अध्ययनोंमे अनुत्तरौपपातिक-अनुत्तर विमानमे उत्पन्न होनेवाले जीवोंके नगर, उद्यान, व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा,

---

१. अभिग्रहविशेषा इत्यर्थः ।

मातापिता धर्माचार्य और धर्मकथा इसलोक व परलोकके ऋद्धिविशेष, भोगोंका परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, पर्याय-उसका कालमान श्रुतग्रहण, तपउपधान, प्रतिमा-अभिग्रहविशेष उपसर्ग, संलेखना, भक्तपरित्याग, पादपोपगमन अनुत्तर-सर्वोत्तम विजयादि-विमानोंमें औपपातिक रूपसे उत्पन्न होना मनुष्यभवमें फिर श्रेष्ठ कुलकी प्राप्ति आदि तथा सम्यक्त्व धर्मका पुनर्लाभ और अन्तक्रिया ये सब विषय कहे जाते हैं, अनुत्तरौपपातिकदशामें परिमित वाचनायें और संख्येय अनुयोगद्वार हैं वेढ, श्लोक, निर्युक्ति संग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ भी संख्येय १ हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह नवमा अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और इसके तीन वर्ग हैं, तीन उद्देशनकाल और तीन ही समुद्देशनकाल हैं पदपरिमाण-संख्यासे परिमित हजारों पद २ हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त अर्थज्ञान व अनन्त पर्यायें हैं, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं तथा शाश्वत और कृतसे यह निबद्ध है हेतु आदिसे स्थिर किये हुए जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं तथा प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे उनका विशेष वर्णन किया जाता है, फल-यह पाठक पदम्भूत आत्मावाला बनता है, तथा सूत्रके कथनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता और इसीतरह विज्ञाता भी होता है। इस प्रकार अनुत्तरौपपातिकदशामें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह अनुत्तरौपपातिकदशा नवमा अङ्ग पूर्ण हुआ॥ सू. ९१॥

मूल—से किं तं पण्हावागरणाइं ? पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, तं जहा-अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अन्ने वि विचित्ता विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकड

१ मानुषी १२ अधिकारी भी है देखो ज्ञानसागरकी प्र. के व्याख्यान भी जानने इत्या–दी.
२. ४६ लाख ८ हजार पद है। दूसरी व्याख्याके अनुसार ... हजार ही पद होते हैं।

डनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्ण-विज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं पण्हावागरणाइं १० ॥ सू० ५४ ॥

छाया–अथ कानि तानि प्रश्नव्याकरणानि ? प्रश्नव्याकरणेषु–अष्टोत्तरं प्रश्नशतम्, अष्टोत्तरमप्रश्नशतम्, अष्टोत्तरं प्रश्नाऽप्रश्नशतम्, तद्यथा-अङ्गुष्ठप्रश्नाः, बाहुप्रश्नाः, आदर्शप्रश्नाः, अन्येऽपि विचित्रा विद्याविशया नागसुपर्णैः सार्धं दिव्याः संवादा आख्यायन्ते, प्रश्नव्याकरणानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तान्यङ्गार्थतया दशममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्चचत्वारिंशदध्ययनानि, पञ्चचत्वा-रिंशदुद्देशनकालाः, पञ्चचत्वारिंशत् समुद्देशनकालाः, संख्ये-यानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृत–निबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञा-प्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यंते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, तान्येतानि प्रश्नव्याकरणानि ॥ सू. ५४ ॥

टीका—प्र०-देव ! वे प्रश्नोत्तरोंके दश अध्ययन कैसे हैं ? उ०-वे इस प्रकार हैं-प्रश्नव्याकरणोंमें १०८ प्रश्न हैं अर्थात् पूछे हुए प्रश्नोंके जपमात्रसे शुभाशुभ उत्तर कहनेवाली विद्या व मन्त्र १०८ हैं, १०८ अप्रश्न याने विना पूछे शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ हैं, पृष्टापृष्ट–पूछे या विनापूछे शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ भी १०८ हैं, जैसे कि–अङ्गुष्ठ प्रश्न-अङ्गुष्ठ विद्या, बाहुप्रश्न, आदर्शप्रश्न अन्य भी अनेक विचित्रविद्यातिशय तथा नागकुमार सुवर्णकुमार आदिके साथ दिव्यसंवाद इसमें कहे जाते हैं, प्रश्नव्याकरणकी परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, तथा वेढ–श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ ये सब संख्यात १ हैं, अङ्गकी अपेक्षा वह दशमा अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और पैंतालीस इसके अध्ययन हैं, पैंतालीस उद्देशन-

१ वाचनान्तरकी अपेक्षा ४५ अध्ययन सम्भव होते हैं सम० अभ० ।

काल और पैंतालीसवां समुद्देशनकाल हैं। पदपरिमाणसे संख्येय-हजारों पद हैं, संख्येय अक्षर, अनन्त गम अर्थज्ञान और अनन्तपर्याय हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं तथा शाश्वत और कृत इसमें निबद्ध है, हेतु आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव यहाँ कहे जाते हैं। प्रज्ञापन, प्ररूपण दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष कहे जाते हैं, फल-स्थिरचेता यह पाठक एवम्भूत आत्मावाला हो जाता है तथा शास्त्रोक्त क्रियाओंका यथार्थ ज्ञाता व विज्ञाता बनता है, इसप्रकार प्रश्नव्याकरणमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह प्रश्नव्याकरण दशवां अङ्ग वर्णनसे पूर्ण हुआ ॥ सू० ५४ ॥

मूल—से किं तं विवागसुयं? विवागसुए णं सुकडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जइ, तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा, से किं तं दुहविवागा? दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइयाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, निरयगमणाइं, संसारभवपवंचा, दुहपरंपराओ, दुकुलपच्चायाइओ, दुल्लहबोहियत्त आघविज्जइ, से तं दुहविवागा।

छाया—अथ किं तद् विपाकश्रुतम्? विपाकश्रुते सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाक आख्यायते, तत्र दश दुःखविपाकाः दश सुखविपाका, अथ के ते दुःखविपाका? दुःखविपाकेषु दुःखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि, संसारभवप्रपञ्चाः, दुःखपरम्पराः, दुष्कुलप्रत्यावृत्तयः, दुर्लभबोधिकत्वमाख्यायते, त एते दुःखविपाका।

टीका—प्र०-गुरुदेव! वह विपाकश्रुत क्या है? उ०-विपाकश्रुतमें सुकृत-दुष्कृत यानी शुभअशुभ-कर्मोंके फल-विपाक कहे जाते हैं, उसमें दश दुःखविपाक और दश सुखविपाक हैं। प्र०-देव! वे दुःखविपाक क्या हैं? उ०-

१ ९२ लाख १६ हजार पद प्रथम व्याख्याके अनुसार होते हैं।

२. दुःखविपाकप्रभृतिभिर्नः।

दुःखविपाकोंमें दुःखरूप विपाकोंको भोगनेवाले उन पुरुषोंके नगर, उद्यान, वनखण्ड, व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्मगुरु और उनकी धर्मकथा, इसलोक व परलोकके ऋद्धिविशेष, दुरुपयोगसे निरयगमन, संसारमें जन्मका विस्तार, दुःखकी परम्परा, हीनकुलमें फिर उत्पत्ति, और सम्यक्त्व-धर्मकी दुर्लभता आदि विषय कहे जाते हैं, यह दुःखविपाकका वर्णन हुआ।

मूल—से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइयाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया[1] इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परियागा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुहपरंपराओ, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति। विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखिज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं विवागसुयं ११ ॥ सू. ५५ ॥

छाया—अथ के ते सुखविपाकाः ? सुखविपाकेषु नु सुखविपाकानां[2] नगराणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः,

१ 'पारलोइआ' इति इन्दौरस्थ चूर्णिप्रतौ। २ विपाकवतामित्यर्थः।

तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकुलप्रत्यायातयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते। विपाकश्रुतस्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया एकादशमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरुद्देशनकालाः, विंशतिः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, त एते विपाकश्रुतम् ॥ सू ५५ ॥

टीका—प्र०—गुरुदेव! ये सुखविपाकके प्रतिपादक अध्ययन कौनसे हैं?
उ०—सुखविपाकोंमें सुखविपाक-फल-को भोगनेवाले पुरुषोंके नगर, उद्यान, वनखण्ड, चैत्य-व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्मगुरु, धर्मकथा, इहलोक व परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष, भोगोंका परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, दीक्षापर्याय, श्रुतसंग्रह, तपउपधान, संलेखना, आहारत्याग, पादपोपगमन-संथारा, देवलोकगमन, सुखकी परम्परा और फिर मनुष्य भवमें उत्तम कुलमें उत्पन्न होना आदि फिर सम्यक्त्वलाभ तथा अन्तक्रिया कही जाती है। विपाकश्रुतकी परिमित वाचनायें हैं, संख्येय अनुयोगद्वार और वेढ-श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी व प्रतिपत्तियाँ भी संख्यात हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह ११ वाँ अङ्ग है, दो श्रुतस्कन्ध और बीस इसके अध्ययन हैं, बीस उद्देशनकाल तथा बीसही समुद्देशनकाल भी हैं, पदपरिमाणसे संख्येय हजार पद[1] हैं, संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थज्ञान और पर्यायें भी अनन्त हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं तथा शाश्वत और कृतसे सम्बद्ध हैं, हेतु आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव इसमें कथन किये जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण दर्शन निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट कहे जाते हैं, फल दिखाते हैं- एकाग्रतासे पाठ करनेपर वह पाठक तद्रूप हो जाता है तथा पूर्वोक्त विषयोंका यथार्थ ज्ञाता व इसीतरह विज्ञाता बनता है, इस प्रकार विपाक-

---

1 एक करोड़ चौरासी लाख और ३२ हजार पद हैं स. वृ।

श्रुतमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह ११ वाँ अङ्ग विपाकश्रुत पूर्ण हुआ ॥ सू० ५५ ॥

मूल—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जइ, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मे १, सुत्ताइं २, पुव्वगए ३, अणुओगे ४, चूलिया ५। से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया—परिकम्मे १, मणुस्ससेणिया—परिकम्मे २, पुट्ठसेणिया—परिकम्मे ३, ओगाढ[1]-सेणिया परिकम्मे ४, उवसंपज्जण[2]सेणियापरिकम्मे ५, विप्प[3]-जहणसेणियापरिकम्मे ६, चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ७।

छाया—अथ कः स दृष्टिवादः? दृष्टिवादे सर्वभावप्ररूपणाऽऽख्यायते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५। अथ किं तत् परिकर्म? परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म २, पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ३, अवगाढश्रेणिका-परिकर्म ४, उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ५, विप्रजहच्छ्रेणिका-परिकर्म ६, च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ७।

टीका-प्र०—देव! वह दृष्टिवाद-सभी नयदृष्टियोंको कहनेवाला श्रुत किस प्रकार है? उ०-दृष्टिवादसे सब भावोंकी प्ररूपणा की जाती है, वह दृष्टिवाद संक्षेपसे पांच प्रकारका है, जैसे-परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वगत ३ अनुयोग ४ और चूलिका ५। प्र०-वह परिकर्म क्या है? उ०-परिकर्म सात प्रकारका कहा गया है, जैसे—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिकापरि-कर्म २, पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ३, अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ४, उपसम्पादनश्रेणिका-परिकर्म ५, विप्रजहत्श्रेणिकापरिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ७।

मूल—से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउद्द-सविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १० पडिग्गहो ११,

---

१ ओगाहण। २ उवसंपज्जसे। ३. विप्पजह समवायङ्गे स पृ ११९ प्र.।

संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, से त्तं सिद्ध सेणियापरिकम्मे ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ? सिद्धश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रह[1] ११, संसारप्रतिग्रह[2] १२, नन्द्यावर्त्तं १३, सिद्धावर्त्तं १४, तदेतत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

टीका-प्र०-वह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०-सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे-मातृकापद १ एकार्थकपद २ अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुभूत ५ राशिबद्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८ त्रिगुण ९ केतुभूत १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नन्द्यावर्त्त १३ सिद्धावर्त्त १४, इसप्रकार यह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ १ ॥

मूल—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआमगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, मणुस्सावत्तं १४, से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

छाया—अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ? मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रह ११, संसारप्रतिग्रह[3] १२, नन्द्यावर्त्तं १३, मनुष्यावर्त्तं १४, तदेतत् मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

---

१ सिद्धावर्त्त । २ धाराद्धरयाणि । ३ आगाणं इति समासे ।
४ मनुष्यावर्त्त—समासे ।

टीप--प्र०-देव ! वह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म १४ प्रकारका कहा गया है, जैसे-मातृकापद १ एकार्थकपद २ अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुभूत ५ राशिवद्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८ त्रिगुण ९ केतुभूत १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नंदावर्त्त १३ और मनुष्यावर्त्त १४, यह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ २ ॥

मूल--से किं तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ? पुट्ठसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं[1] १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० पुट्ठावत्तं ११, से त्तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ॥ ३ ॥

छाया-अथ किं तत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ? पृष्टश्रेणिकापरिकर्म-एकादशविधं प्रज्ञसम्, तद्यथा-पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० पृष्टावर्त्तं ११, तदेतत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ॥ ३ ॥

टीका--प्र०-गुरुदेव ! वह पृष्टश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-पृष्टश्रेणिकापरिकर्म एकादश प्रकारका है, जैसे-पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिवद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० पृष्टावर्त्त ११, यह पृष्टश्रेणिकापरिकर्म पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

मूल--से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ? ओगाढसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० ओगाढावत्तं ११, से त्तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ॥ ४ ॥

---

१ हस्तलिखिते, आगमोदयसमितिमुद्रिते चूर्णियुते रायधनपतिसिंहमुद्रिते च 'पाढो आमासपयाई' इति पाठ, पूज्य ऋषिसम्पादिते तु 'पाढो आपयाई' 'पाढो आगासपयाइ' ईदृश पाठद्वय दृश्यते, तथापि अर्थस्य विशेषसङ्गततया एवंविधाभ्यासेन मुनिप्रवरोपाध्यायानामभिमतत्वेन च 'पाढो आगासपयाइ' अयमेव पाठो मूले मया न्यधायि-सम्पादक ।

संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, से त्तं सिद्ध सेणियापरिकम्मे ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ? सिद्धश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रह' ११, संसारप्रतिग्रह' १२, नन्दावर्त्तं १३, सिद्धावर्तं १४, तदेतत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

टीका-प्र०—वह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे—मातृकापद १ एकार्थकपद २ अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुभूत ५ राशिबद्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८ त्रिगुण ९ केतुभूत १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह ११ नन्दावर्त ११ सिद्धावर्त १४, इसप्रकार यह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ १ ॥

मूल—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे[1] मणुस्ससेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआमासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, मणुस्सावत्तं १४, से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

छाया—अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ? मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुण ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रह' ११, संसारप्रतिग्रह' १२, नन्दावर्त्तं १३, मनुष्यावर्तं १४, तदेतन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

---

१ सिद्धबद्धं । २. पाढोदृसपाणि । ३ आगासपयाणि इति समवाये ।
४ मणुस्सबद्धं-समवाये ।

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० विप्पजहणावत्तं ११, से त्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया–अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म–एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्रजहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका–प्र०–भगवन्! विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है? उ०–विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे–पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १० विप्रजहदावर्त्त ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० चुयाचुयवत्तं ११, से त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरासियाइं, से त्तं परिकम्मे ।

छाया–अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म? च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म–एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽच्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट्चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म ।

टीका–प्र०–वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है? उ०–च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे–पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० च्युताऽच्युतावर्त्त ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-

छाया—अथ किं तदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ? अवगाढश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्द्यावर्त्तं १० अवगाढावर्त्तं ११, तदेतदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—प्र०-हे गुरु ! वह अवगाढश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है जैसे-पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्त १० और अवगाढावर्त्त ११ यह अवगाढश्रेणिका परिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० उवसंपज्जणावत्तं ११, से त्तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ? उपसम्पादनश्रेणिका परिकर्म-एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नंद्यावर्त्तम् १० उपसम्पादनावर्त्तं ११, तदेतद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—प्र०-गुरुदेव ! यह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे कि पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्त १० उपसम्पादनावर्त्त ११ यह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विप्पजहणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० विप्पजहणावत्तं ११, से त्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया—अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्रजहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका—प्र०—भगवन्! विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है? उ०—विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १० विप्रजहदावर्त्त ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० चुयाचुयवत्तं ११, से त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरासियाइं, से त्तं परिकम्मे ।

छाया—अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽच्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट् चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म ।

टीका—प्र०—वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है? उ०—च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० च्युताऽच्युतावर्त्त ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-

छाया—अथ किं तदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ? अवगाढश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्द्यावर्त्तं १० अवगाढावर्त्तं ११, तदेतदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—प्र०-देव ! वह अवगाढश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०-अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे-पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्त १० और अवगाढावर्त्त ११ यह अवगाढश्रेणिका परिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० उवसंपज्जणावत्तं ११, से तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ? उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म-एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्तम् १० उपसम्पादनावर्त्तं ११, तदेतद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—प्र०-गुरुदेव ! वह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे कि पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्त १० उपसम्पादनावर्त्त ११ यह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विप्पजहणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० विप्पजहणावत्तं ११, से त्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया—अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्रजहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका—प्र०—भगवन्! विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है? उ०—विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १० विप्रजहदावर्त्त ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० चुयाचुयवत्तं ११, से त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरासियाइं, से त्तं परिकम्मे।

छाया—अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽच्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट्चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म।

टीका—प्र०—वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है? उ०—च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० च्युताऽच्युतावर्त्त ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-

छाया—अथ किं तदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ? अवगाढश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्द्यावर्त्तं १० अवगाढावर्त्तं ११, तदेतदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—प्र०-देव ! वह अवगाढश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०-अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे-पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्त १० और अवगाढावर्त्त ११ यह अवगाढश्रेणिका परिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० उवसंपज्जणावत्तं ११, से त्तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ? उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म-एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नंद्यावर्त्तम् १० उपसम्पादनावर्त्तं ११, तदेतद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—प्र०-गुरुदेव ! वह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है जैसे कि पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंद्यावर्त्त १० उपसम्पादनावर्त्त ११ यह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विप्पजहणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७

सम्भिन्नं ९ यथावादं १० स्वस्तिकावर्त्तम् ११ नन्दावर्त्तं १२ बहुलं १३ पृष्टापृष्टं १४ व्यावर्त्तम् १५ एवम्भूतं १६ द्विकावर्त्तं १७ वर्त्तमानपदं १८ समभिरूढं १९ सर्वतोभद्रं २० प्रशिष्यं २१ दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि—आजीविकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या, एवमेव सपूर्वापरेणाऽष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातम्, तान्येतानि सूत्राणि ।

टीका—प्र०—भगवन्! वह सूत्ररूप दृष्टिवाद क्या है? उ०—सूत्र[1] बाईस प्रकारके कहे गये हैं। जैसे—१ ऋजुसूत्र, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभङ्गिक, ४ विजयचरित, ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ आसाण, ८ संयूथ, ९ सम्भिन्न, १० यथावाद, ११ स्वस्तिकावर्त्त, १२ नन्द्यावर्त्त, १३ बहुल, १४ पृष्टापृष्ट, १५ व्यावर्त्त, १६ एवम्भूत, १७ द्विकावर्त्त, १८ वर्त्तमानपद, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ प्रशिष्य, और २२ दुष्प्रतिग्रह, इसप्रकार ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे याने स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर छिन्नच्छेदनयवाले हैं, ये ही बाईस सूत्र आजीविक-गोशालकके मतकी सूत्रपरिपाटीसे अच्छिन्नच्छेदनयवाले होते हैं, इसप्रकार ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्र परिपाटीसे विवक्षित होनेपर तीन नयवाले होते हैं, तथा येही बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर चतुष्क नयवाले हैं, इसतरह पूर्वापर याने पहले पीछेके सब मिलाकर अट्ठासी सूत्र होते हैं, ऐसा तीर्थङ्करों व गणधरोंने कहा है, यह हुआ सूत्ररूप दृष्टिवादका भेद ।

मूल—से किं तं पुव्वगए? पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पायपुव्वं १ अग्गाणीयं २ वीरियं ३ अत्थिनत्थिप्पवायं ४ नाणप्पवायं ५ सच्चप्पवायं ६ आयप्पवायं ७ कम्मप्पवायं ८ पच्चक्खाणप्पवायं ९ विज्जाणुप्पवायं १० अवंझं ११ पाणाऊ १२ किरियाविसाल १३ लोकबिंदुसारं १४ । उप्पायपुव्वस्स णं

[1] सभी पूर्वके सूत्रार्थकी ये सूचना करनेवाले हैं, तथा सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय और सभी नय तथा सर्व भङ्ग-विकल्पोंके प्रदर्शक हैं अत सूत्र कहे जाते हैं, सूत्र या अर्थ रूपसे ये अभी व्यवच्छिन्न हैं।

नयकी वक्तव्यताके प्रकाशक हैं, गोशालकके मतानुसार च्युताच्युतश्रेणिका-परिकर्मसहित सात परिकर्म कहे जाते हैं] अब इनमें नयका विचार करते हैं- छ परिकर्म चार नयवाले हैं, अर्थात् नैगम आदि सात नयोंमेंसे सामान्यग्राही नैगमनें संग्रह नयमें और विशेषग्राही व्यवहारनयमें अन्तर्हित होते हैं ऐसे ही शब्द समभिरूढ और एवम्भूत इन तीनोंका भी पर्यायार्थिक रूप एक नयमें समावेश कर लेते हैं, तब संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और पर्यायार्थिक [शब्दादि तीन] इस प्रकार चार नय हो जाते हैं। इनसे पहलेके छ परिकर्म स्वसमयकी वक्तव्यतासे विचारे जाते हैं, सात परिकर्म त्रैराशिक-गोशालकके मतका अनुगमन करनेवाले हैं, यह परिकर्म पूर्ण हो चुका।

[गणितके परिकर्मकी तरह सूत्र पूर्व व अनुयोग आदिके ग्रहणकी योग्यता करानेमें समर्थ इस विषयको श्रुतपरिकर्म कहते हैं। सिद्धश्रेणिका आदि ७ मूलभेद और ८३ इसके उत्तर भेद हैं। यह सब सूत्र व अर्थरूपसे विच्छिन्न हैं, अतएव इसका स्वरूप यथागत सम्प्रदायके अनुसार समझना चाहिये]

मूल—से किं तं सुत्ताइं? सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तं जहा–उज्जुसुयं १ परिणयापरिणयं २ बहुभंगियं ३ विजयचरियं ४ अणंतरं ५ परंपरं ६ आसाणं ७ संजूहं ८ संभिण्णं ९ आहच्चायं १० सोवत्थियावत्तं ११ नंदावत्तं १२ बहुलं १३ पुट्ठापुट्ठं १४ वियावत्तं १५ एवंभूयं १६ दुयावत्तं १७ वत्तमाणपयं १८ समभिरूढं १९ सव्वओभद्दं २० पस्सासं २१ दुप्पडिग्गहं २२, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेयनइयाणि आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगणइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीइ सुत्ताइं भवंतित्ति म(म)क्खायं, से त्तं सुत्ताइं।

छाया—अथ कानि तानि सूत्राणि? सूत्राणि द्वाविंशति प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–ऋजुसूत्रम् १ परिणताऽपरिणतं २ बहुभङ्गिकं ३ विजयचरितम् ४ अनन्तरं ५ परम्परम् ६ आसानम् ७ संयूथं ८

1–आजीविक–गोशालक मतानुयायी त्रैराशिक कहे जाते हैं, सभी वस्तुएं वे तीन प्रकार मीमांसकोंकी तरह व्याख्या करते हैं, वास्ते त्रैराशिक हैं।

सम्भिन्नं ९ यथावादं १० स्वस्तिकावर्त्तम् ११ नन्दावर्त्तं १२ बहुलं १३ पृष्टापृष्टं १४ व्यावर्त्तम् १५ एवम्भूतं १६ द्विकावर्त्तं १७ वर्त्तमानपदं १८ समभिरूढं १९ सर्वतोभद्रं २० प्रशिष्यं २१ दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि–आजीविकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या, एवमेव सपूर्वापरेणाऽष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातम्, तान्येतानि सूत्राणि ।

टीका–प्र०–भगवन् ! वह सूत्ररूप दृष्टिवाद क्या है ? उ०–सूत्रं बाईस प्रकारके कहे गये हैं। जैसे–१ ऋजुसूत्र, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभङ्गिक, ४ विजयचरित, ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ आसाण, ८ संयूथ, ९ सम्भिन्न, १० यथावाद, ११ स्वस्तिकावर्त्त, १२ नन्दावर्त्त, १३ बहुल, १४ पृष्टापृष्ट, १५ व्यावर्त्त, १६ एवम्भूत, १७ द्विकावर्त्त, १८ वर्त्तमानपद, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ प्रशिष्य, और २२ दुष्प्रतिग्रह, इसप्रकार ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे याने स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर छिन्नच्छेदनयवाले हैं, ये ही बाईस सूत्र आजीविक–गोशालकके मतकी सूत्रपरिपाटीसे अच्छिन्नच्छेदनयवाले होते हैं, इसप्रकार ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्र परिपाटीसे विवक्षित होनेपर तीन नयवाले होते हैं, तथा येही बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर चतुष्क नयवाले हैं, इसतरह पूर्वापर याने पहले पीछेके सब मिलाकर अट्ठासी सूत्र होते हैं, ऐसा तीर्थङ्करों व गणधरोंने कहा है, यह हुआ सूत्ररूप दृष्टिवादका भेद।

मूल—से किं तं पुव्वगए ? पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–उप्पायपुव्वं १ अग्गाणीयं २ वीरियं ३ अत्थिनत्थिप्पवायं ४ नाणप्पवायं ५ सच्चप्पवायं ६ आयप्पवायं ७ कम्मप्पवायं ८ पच्चक्खाणप्पवायं ९ विज्जाणुप्पवायं १० अवंझं ११ पाणाऊ १२ किरियाविसाल १३ लोकबिंदुसारं १४ । उप्पायपुव्वस्स णं

---

१ सभी पूर्वके सूत्रार्थकी ये सूचना करनेवाले हैं, तथा सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय और सभी नय तथा सर्व भङ्ग–विकल्पोंके प्रदर्शक हैं अत सूत्र कहे जाते हैं, सूत्र या अर्थ रूपसे ये अभी व्यवच्छिन्न हैं।

नयकी वक्तव्यताके प्रकाशक हैं, गोशालकके मतानुसार च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्मसहित सात परिकर्म कहे जाते हैं] अब इनमें नयका विचार करते हैं—छ परिकर्म चार नयवाले हैं, अर्थात् नैगम आदि सात नयोंमेंसे सामान्यग्राही नैगममें संग्रह नयमें और विशेषग्राही व्यवहारनयमें अन्तर्हित होते हैं ऐसे ही शब्द समभिरूढ और एवम्भूत इन तीनोंका भी पर्यायार्थिक रूप एक नयमें समावेश कर लेते हैं, तब संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और पर्यायार्थिक [शब्दादि तीन] इस प्रकार चार नय हो जाते हैं। इनसे पहलेके छ परिकर्म स्वसमयकी वक्तव्यतासे विचारे जाते हैं, सात परिकर्म त्रैराशिक—गोशालकके मतका अनुगमन करनेवाले हैं, यह परिकर्म पूर्ण हो चुका।

[गणितके परिकर्मोंकी तरह सूत्र पूर्व व अनुयोग आदिके ग्रहणकी योग्यता करानेमें समर्थ इस विषयको श्रुतपरिकर्म कहते हैं। सिद्धश्रेणिका आदि ७ मूलभेद और ८३ इसके उत्तर भेद हैं। यह सब सूत्र व अर्थरूपसे विच्छिन्न हैं, अतएव इसका स्वरूप यथागत सम्प्रदायके अनुसार समझना चाहिये]

मूल—से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तं जहा—उज्जुसुयं १ परिणयापरिणयं २ बहुभंगियं ३ विजयचरियं ४ अणंतरं ५ परंपरं ६ आसाणं ७ संजूहं ८ संभिण्णं ९ आहच्चायं १० सोवत्थियावत्तं ११ नंदावत्तं १२ बहुलं १३ पुट्ठापुट्ठं १४ वियावत्तं १५ एवंभूयं १६ दुयावत्तं १७ वत्तमाणपयं १८ समभिरूढं १९ सव्वओभद्दं २० पस्सासं २१ दुप्पडिग्गहं २२, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेयनइयाणि आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगणइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीइं सुत्ताइं भवंतित्तिम(अ)क्खायं, से त्तं सुत्ताइं।

छाया—अथ कानि तानि सूत्राणि ? सूत्राणि द्वाविंशति प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋजुसूत्रम् १ परिणताऽपरिणतं २ बहुभङ्गिकं ३ विजयचरितम् ४ अनन्तरं ५ परम्परम् ६ आसानम् ७ संयूथं ८

१—आजीविक—गोशालक मतानुयायी त्रैराशिक कहे जाते हैं, सभी वस्तुओंको ये जीव अजीव नोजीवकी तरह त्र्यात्मक कहते हैं वास्ते त्रैराशिक हैं।

वीर्यपूर्वस्याऽष्टौ वस्तवः, अष्टौ चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य—अष्टादश वस्तवो दश चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ४, ज्ञानप्रवादपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ५, सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वौ वस्तू प्रज्ञप्तौ ६, आत्मप्रवादपूर्वस्य षोडश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ७, कर्मप्रवादपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः ८, प्रत्याख्यानपूर्वस्य विंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः ९, विद्यानुप्रवादपूर्वस्य पञ्चदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १०, अबन्ध्यपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ११, प्राणायुःपूर्वस्य त्रयोदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १२, क्रियाविशालपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः १३, लोकबिन्दुसारपूर्वस्य पञ्चविंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः १४ ।

गाथा—८९

दश १ चतुर्दश २ अष्टाऽष्टादशैव ३–४ द्वादश ५ द्वौ ६ च वस्तवः ।
षोडश ७ त्रिंशद् ८ विंशतिः ९ पञ्चदश १० अनुप्रवादे ॥ १ ॥

९०—द्वादशैकादशे, द्वादशे त्रयोदशा एव वस्तवः ।
त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

९१—चत्वारि १ द्वादश २ अष्टौ ३ चैव दश ४ चैव चूलवस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां, शेषाणां चूलिका नास्ति ॥ ३ ॥

तदेतत्पूर्वगतम् ।

टीका-प्र०-देव! वह पूर्वगत दृष्टिवाद कौनसा है? पूर्वगत दृष्टिवाद १४ प्रकारका कहा गया है—

जैसे कि-१ उत्पादपूर्व [इसमे सब द्रव्य और पर्यायोंके उत्पाद-उत्पत्तिकी प्ररूपणा की गई है-इसके कोटि पदपरिमाण हैं] २ अग्रायणीयपूर्व [सभी द्रव्य, पर्याय और जीवविशेषके अग्र-परिमाणका इसमें वर्णन किया गया है, इसके ९६ लाख पद हैं] ३ वीर्यप्रवादपूर्व [सकर्म या निष्कर्म जीव तथा अजीवके वीर्य-शक्तिविशेषका इसमें वर्णन है तथा ७० लाख इसके पद हैं] ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व [यह वस्तुओंके अस्तित्व नास्तित्वका वर्णन करनेवाला है, धर्मास्ति आदि द्रव्यका अस्तित्व और खपुष्प वगैरहका नास्तित्व तथा प्रत्येक द्रव्यमें स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व प्रतिपादन किया गया है, इसके ६० लाख पद है] ५ ज्ञानप्रवादपूर्व [मति आदि पांच

१ तीर्थप्रवृत्तिके समयमें तीर्थङ्कर गणधरोंको सकल श्रुतार्थमें अवगाहन करनेलायक समझकर पहले पूर्वगत सूत्र कहते हैं, इसलिये ये पूर्व कहलाते हैं, वे पूर्व चौदह हैं ।

दसवत्थू चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता, अग्गाणीयपुव्वस्स णं चोद्दसवत्थू दुवालस चूलियावत्थू पण्णत्ता, वीरियपुव्वस्स णं अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता, अत्थिनत्थिप्पवायपुव्वस्स णं अट्ठारसवत्थू दस चूलियाव थू पण्णत्ता, नाणप्पवायपुव्वस्स णं बारस वत्थू पण्णत्ता, सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दोण्णि वत्थू पण्णत्ता, आयप्पवायपुव्वस्स ण सोलस वत्थू पण्णत्ता, कम्मप्पवायपुव्वस्स ण तीसं वत्थू पण्णत्ता, पच्चक्खाणपुव्वस्स णं वीसं वत्थू पण्णत्ता, विज्जाणुप्पवायपुव्वस्स णं पन्नरसवत्थू पण्णत्ता, अवंझपुव्वस्स णं बारसवत्थू पण्णत्ता, पाणाउपुव्वस्स णं तेरसवत्थू पण्णत्ता, किरियाविसालपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता, लोकबिंदुसारपुव्वस्स णं पणवीस वत्थू पण्णत्ता—

गाहा—८९

दस १ चोद्दस २ अट्ठ ३ अट्ठारसेव ४ बारस ५ दुवे ६ य वत्थूणि।
सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९, पन्नरस १० अणुप्पवायम्मि ॥ १ ॥

९०—बारस इक्कारसमे, बारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे, चोद्दसमे पण्णवीसाओ ॥ २ ॥

९१—चत्तारि १ दुवालस २, अट्ठ ३ चेव दस ४ चेव चुल्लवत्थूणि।
आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलिया नत्थि ॥ ३ ॥
से त्तं पुव्वगए।

छाया—अथ किं तत् पूर्वगतम्? पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—उत्पादपूर्वम् १ अग्रायणीयं २ वीर्यम् (प्रवादम्) ३ अस्तिनास्ति प्रवादं ४ ज्ञानप्रवादं ५ सत्यप्रवादम् ६ आत्मप्रवादं ७ कर्म प्रवादं ८ प्रत्याख्यानप्रवादं ९ विद्यानुप्रवादम् १० अबन्ध्यं ११ प्राणायुः १२ क्रियाविशालं १३ लोकबिन्दुसारम् १४। उत्पाद पूर्वस्य दश वस्तूनि[1], चत्वारश्चूलिकावस्तूनि[1] प्रज्ञप्तानि[1] १, अग्रायणीयपूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि द्वादशचूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि[1] २,

---

१ वस्तु शब्दस्य पुंस्त्वमार्षत्वात्, लिङ्गस्य लोकाश्रितत्वाच्च।

वीर्यपूर्वस्याऽष्टौ वस्तवः, अष्टौ चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य–अष्टादश वस्तवो दश चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ४, ज्ञानप्रवादपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ५, सत्यप्रवाद-पूर्वस्य द्वौ वस्तू प्रज्ञप्तौ ६, आत्मप्रवादपूर्वस्य षोडश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ७, कर्मप्रवादपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः ८, प्रत्याख्यानपूर्वस्य विंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः ९, विद्यानुप्रवादपूर्वस्य पञ्चदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १०, अबन्ध्यपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ११, प्राणायुःपूर्वस्य त्रयोदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १२, क्रियाविशालपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः १३, लोकबिन्दुसारपूर्वस्य पञ्चविंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः १४।

गाथा—८९

दश १ चतुर्दश २ अष्टाऽष्टादशैव ३–४ द्वादश ५ द्वौ ६ च वस्तवः।
षोडश ७ त्रिंशद् ८ विंशतिः ९ पञ्चदश १० अनुप्रवादे ॥ १ ॥

९०—द्वादशैकादशे, द्वादशे त्रयोदशा एव वस्तवः।
त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

९१—चत्वारि १ द्वादश २ अष्टौ ३ चैव दश ४ चैव चूलवस्तूनि।
आदिमानां चतुर्णां, शेषाणां चूलिका नास्ति ॥ ३ ॥

तदेत्पूर्वगतम्।

टीका–प्र०–देव! वह पूर्वगत दृष्टिवाद कौनसा है? पूर्वगत दृष्टिवाद १४ प्रकारका कहा गया है–

जैसे कि–१ उत्पादपूर्व [इसमे सब द्रव्य और पर्यायोंके उत्पाद–उत्पत्तिकी प्ररूपणा की गई है–इसके कोटि पदपरिमाण हैं] २ अग्रायणीयपूर्व [सभी द्रव्य, पर्याय और जीवविशेषके अग्र–परिमाणका इसमे वर्णन किया गया है, इसके ९६ लाख पद हैं] ३ वीर्यप्रवादपूर्व [सकर्म या निष्कर्म जीव तथा अजीवके वीर्य–शक्तिविशेषका इसमें वर्णन है तथा ७० लाख इसके पद हैं] ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व [यह वस्तुओंके अस्तित्व नास्तित्वका वर्णन करनेवाला है, धर्मास्ति आदि द्रव्यका अस्तित्व और खपुष्प वगैरहका नास्तित्व तथा प्रत्येक द्रव्यमें स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व प्रतिपादन किया गया है, इसके ६० लाख पद हैं] ५ ज्ञानप्रवादपूर्व [मति आदि पांच

१ तीर्थप्रवृत्तिके समयमें तीर्थङ्कर गणधरोंको सकल श्रुतार्थमें अवगाहन करनेलायक समझकर पहले पूर्वगत सूत्र कहते हैं, इसलिये ये पूर्व कहलाते हैं, वे पूर्व चौदह हैं।

ज्ञानोंका इसमें सविस्तर वर्णन किया गया है, पदपरिमाण इसके एककम एक कोटिका है] ६ सत्यप्रवादपूर्व [यह सत्यवचन या संयमका विस्तारसे और प्रतिपक्षके साथ वर्णन करनेवाला है इसके एक कोटि और छ पद हैं] ७ आत्मप्रवादपूर्व [अनेक प्रकारके नयमतसे यह पूर्व आत्माका वर्णन करने वाला है, इसमें २६ कोटि पद हैं] ८ कर्मप्रवादपूर्व [आठ प्रकारके कर्मोंका प्रकृति स्थिति आदि बन्धके भेद व प्रभेदसे विस्तारपूर्वक इसमें वर्णन किया गया है, इसके एक कोटि अस्सी हजार पद हैं] ९ प्रत्याख्यान-प्रवादपूर्व यह प्रत्याख्यानका भेदप्रभेदके साथ विस्तारपूर्वक वर्णन करता है इसके ८४ लाख पद हैं] १० विद्यानुप्रवादपूर्व [इसमें अनेक प्रकारकी अतिशयसम्पन्न विद्यायें और साधनकी अनुकूलतासे उनकी सिद्धि कही गई है, इसके एक कोटि १० लाख पद हैं] ११ अवन्ध्यपूर्व [यहाँ ज्ञान तप आदि सभी सत्कर्म शुभफलवाले और प्रमाद आदि कार्य अशुभफलवाले कहे गये हैं, इसलिये यह अवन्ध्य है, इसके २६ कोटि पद हैं] १२ प्राणायुपूर्व [आयु और अन्य प्राणोंका वर्णन करनेसे सम्भेद यह पूर्वभी उपचारसे प्राणायुपूर्व कहाता है, एक कोटि ५६ लाख इसके पद होते हैं] १३ क्रियाविशालपूर्व [यह कायिकी आदि क्रियाओंके वर्णनसे विशाल है, इसका पदपरिमाण नव कोटिका है] १४ लोकबिन्दुसारपूर्व [सर्वाक्षर सन्निपात आदि लब्धियों-विशेषशक्तियोंके कारण संसारमें या श्रुतलोकमें यह अक्षरके बिन्दुकी तरह सर्वोत्तम सार है अतः लोग इसको बिन्दु सार कहते हैं, १२॥ कोटि इसके पद हैं] उत्पादपूर्वके दशवस्तु और चार चूलिकावस्तु-प्रकरण कहे गये हैं, अग्रायणीयपूर्वके चौदह वस्तु तथा बारह चूलिका वस्तु-ग्रन्थविशेष कहे गये हैं, ३ वीर्यपूर्वके आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु कहे गये हैं, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वके अठारह वस्तु व दश चूलिकावस्तु कहे गये हैं, ५ ज्ञानप्रवादपूर्वके बारह वस्तु कहे गये हैं, ६ सत्यप्रवादपूर्वके दो वस्तु हैं, ७ आत्मप्रवादपूर्वके सोलह वस्तु हैं, ८ कर्मप्रवादपूर्वके तीस वस्तु हैं, ९ प्रत्याख्यानप्रवादपूर्वके बीस वस्तु हैं, १० विद्यानुप्रवादपूर्वके पन्द्रह वस्तु-ग्रन्थविशेष कहे गये हैं, ११ अवन्ध्यपूर्वके बारह वस्तु कहे गये हैं, १२ प्राणायुपूर्वके तेरह वस्तु हैं १३ क्रियाविशालपूर्वके तीस वस्तु कहे गये हैं, १४ लोकबिन्दुसारपूर्वके पचीस वस्तु कहे गये हैं। प्रत्येक वस्तु व चूलवस्तुका गाथासे वर्णन दिखाते हैं-प्रथममें दश वस्तु, द्वितीयमें चौदह, तीसरेमें आठ और चौथेमें अठारह, पांचवेमें बारह और छट्ठेमें दो वस्तु हैं, सातवेमें सोलह, आठवेमें तीस नवमेमें बीस तथा दसवें अनुप्रवाद-विद्यानुप्रवादमें पन्द्रह हैं, ग्यारहवेमें बारह वस्तु, बारहवेमें तेरह वस्तु हैं, फिर तेरहवें पूर्वमें तीस और चौदहवें पूर्वमें पचीस वस्तु हैं। ॥ ८९-९० ॥ आदिके चार पूर्वोंको क्रमसे चार, बारह, आठ, और दश चूल-(क्षुल्लक)वस्तुएं हैं, शेष पूर्वोंके चूलिका-क्षुल्लक वस्तु नहीं हैं ॥ ९१ ॥ यह पूर्वगतका वर्णन हुआ।

---

१ सत्यमनुपघातेरूपप्रायत्ना प्रत्यपकारकप्रवृत्ता-ह्युप्यते । टी.

मूल—से किं तं अणुओगे ? अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—मूलपढमाणुओगे, गंडियाणुओगे य। से किं तं मूलपढमाणुओगे ? मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाइं, आउं, चवणाइं, जम्मणाणि, अभिसेया, रायवरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवलनाणुप्पयाओ, तित्थपवत्तणाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा, पवत्तिणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिणमणपज्जवओहिनाणी, सम्मत्तसुयनाणिणो य, वाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवेउव्विणो य मुणिणो, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो जह देसिओ, जच्चिरं च कालं, पाओवगया जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं (अणसणाए) छेइत्ता अंतगडे, मुणिवरुत्तमे तिमिरओघविप्पमुक्के, मुक्खसुहमणुत्तरं च पत्ते, एवमन्ने य एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे कहिया, से त्तं मूलपढमाणुओगे।

छाया—अथ कः सोऽनुयोगः? अनुयोगो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मूलप्रथमानुयोगः, गण्डिकानुयोगश्च, अथ कः स मूलप्रथमानुयोगः? मूलप्रथमानुयोगेऽर्हतां भगवतां पूर्वभवाः, देवलोकगमनानि, आयुः (यूंपि), च्यवनानि, जन्मानि, अभिषेकाः, राज्यवरश्रियः, प्रव्रज्याः, तपांसि चोग्राणि, केवलज्ञानोत्पादः, तीर्थप्रवर्तनानि च, शिष्याः, गणाः, गणधराः, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, सङ्घस्य चतुर्विधस्य यच्च परिमाणम्, जिनमनःपर्यवावधिज्ञानिनः, समस्तश्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उत्तरवैकुर्विणश्च मुनयः, यावन्तः सिद्धाः, सिद्धिपथो यथादेशितो यावच्चिरञ्च कालं पद्मापोपगताः, ये यत्र यावन्ति भक्तानि छित्त्वाऽन्तकृतो मुनिवरोत्तमास्तिमिरौघविप्रमुक्ता मोक्षसुखमनुत्तरञ्च प्राप्ताः, एवमन्ये चैवमादिभावा मूलप्रथमाऽनुयोगे कथिताः, स एष मूलप्रथमानुयोगः।

---

१ 'अतगडा' इत्यादि आकारान्त. पाठ । २ ए एअ० समवाये।

टीका—प्र०—भगवन्! वह अनुयोग किस प्रकार है? उ०—अनुयोग दो प्रकारका कहा है, जैसे—१ मूलप्रथमानुयोग, और २ गण्डिकानुयोग। प्र०—वह मूल-प्रथमानुयोग क्या है? उ०—मूलप्रथमानुयोगमें अरिहन्त भगवन्तके सम्यक्त्व प्राप्तिके भवसे लेकर पूर्वभव देवलोकमें गमन वहांकी आयुमर्यादा। देवभव या उससे पूर्वभवोंमें च्यवन तीर्थंकररूपसे जन्म, अभिषेक—देवभावितकृत जन्माभिषेक तथा राज्याभिषेक प्रधान राज्यलक्ष्मी, प्रव्रज्या—साधुदीक्षा और उग्र-घोर तप, केवलज्ञानकी उत्पत्ति, और तीर्थकी प्रवृत्ति करना, उनके शिष्य, गण-गच्छ गणधर, आर्यायें व प्रवर्त्तिनियाँ, और चतुर्विध संघका जो परिमाण है, जिन-केवली, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, और सम्यक् (समस्त) श्रुतज्ञानी वादी-वादलब्धिसम्पन्न मुनि और अनुत्तरगतिवाले फिर उत्तर वैक्रिय करनेवाले मुनि, जितने सिद्ध हुए, तथा जिसप्रकार सिद्धिमार्गका उपदेश किया और जितने लम्बे समयतक सिद्धिमार्ग लगातार चला जो जहाँ पादपोपगमन संथारा धारण किये व जितने भक्त अनशनसे छेदकर पानी बिना आहारके बिताकर संसारका अन्त किये, अर्थात् अन्तकृत हुए, और अज्ञानरूप तिमिर-अन्धकारके प्रवाहसे विप्रमुक्त मुनिश्रेष्ठ जिसप्रकार सर्वोत्तम मोक्ष सुखको प्राप्त किये ये सब और इस प्रकारके अन्य भी जो वैसे भाव हैं वे सब मूल प्रथमानुयोगमें कहे गये हैं, यह मूल प्रथमानुयोग हुआ।

मूल—से किं तं गंडियाणुओगे? गंडियाणुओगे कुलगरगंडियाओ, तित्थयरगंडियाओ, चक्कवट्टिगंडियाओ, दसारगंडियाओ, बलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ, गणधरगंडियाओ, भद्दबाहुगंडियाओ, तवोकम्मगंडियाओ, हरिवंसगंडियाओ, उस्सप्पिणीगंडियाओ, ओसप्पिणीगंडियाओ, चित्तंतरगंडियाओ, अमरनरतिरियनिरयगइगमणविविहपरियट्टणाणुओगेसु एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, से त्तं गंडियाणुओगे, से त्तं अणुओगे ॥ ४ ॥

छाया—अथ कः स गण्डिकानुयोग? गण्डिकानुयोगे कुलकरगण्डिकाः, तीर्थकरगण्डिकाः, चक्रवर्तिगण्डिकाः, दशारगण्डिकाः, बलदेवगण्डिकाः, वासुदेवगण्डिकाः, गणधरगण्डिकाः, भद्रबाहुगण्डिकाः, तपःकर्मगण्डिकाः, हरिवंसगण्डिकाः, उत्सर्पिणीगण्डिकाः, अवसर्पिणीगण्डिकाः, चित्रान्तरगण्डिकाः, अमरनरतिर्यक्निरयगतिगमनविविधपरिवर्त्तनानुयोगेषु—एवमादि

का गण्डिका आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, स एष गण्डिकानुयोगः, स एषोऽनुयोगः ।

टीका-प्र०-देव! वह गण्डिकानुयोग क्या है? उ०-गण्डिकाके व्याख्यानमें कुलकरगण्डिका-जिनमें विमलवाहन आदि कुलकरोंके पूर्वभव व नाम आदिका विस्तृत वर्णन है, तीर्थङ्करगण्डिका, चक्रवर्तिगण्डिका, दशारगण्डिका, बलदेवगण्डिका, वासुदेवगण्डिका, गणधरगण्डिका, भद्रबाहुगण्डिका, तपःकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्प्पिणीगण्डिका, अवसर्प्पिणीगण्डिका, चित्रान्तरगण्डिका अर्थात् प्रथम व द्वितीय तीर्थङ्करके अन्तरकालके चित्र-अनेक अर्थको कहनेवाली गण्डिका, मनुष्य तिर्यग् और निरयगतिमें गमनरूप अनेक परिवर्त्तों-भवभ्रमणोमे जीवोंका गमन, इत्यादि बहुतसी गण्डिकाएँ कही जाती हैं, विशेष रूपसे दिखाई जाती हैं, यह हुआ गण्डिकानुयोग, इस प्रकार दोनों प्रकारका यह अनुयोग पूर्ण हुआ ।

मूल—से किं तं चूलियाओ ? चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिया, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं, से त्तं चूलियाओ ।

छाया-अथ कास्ताः-चूलिकाः ? चूलिका आदिमानां चतुर्ण्णां पूर्वाणां चूलिकाः, शेषाणि पूर्वाण्यचूलिकानि, ता एताश्चूलिकाः ।

टीका-प्र०-देव दृष्टिवादका शिखररूप वह चूला(डा) किस प्रकार है? उ०-चूलिका इसप्रकार है (परिकर्म आदि दृष्टिवादके चारों अङ्गोंमे कहे हुए तथा कुछ अनुक्त विषय चूलामे कहे गए हैं)-आदिके चार पूर्वोंकी चूलाएँ हैं, शेष पूर्व विना चूलिकाके हैं, यह हुआ चूलारूप दृष्टिवाद ।

अब वारहवें दृष्टिवाद अङ्गका उपसंहार करते हैं—

मूल—दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, चोद्दस पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता

---

१ ऋषभदेव स्वामीके वंशज सभी राजा मोक्ष या सर्वार्थसिद्ध विमानमें ही गये हैं, ऐसा इस गण्डिकामें वर्णन किया गया है ।

पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जति, से त्तं दिट्ठिवाए १२ ॥ सू० ५६ ॥

छाया—दृष्टिवाद(पात)स्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, सोऽङ्गार्थतया द्वादशमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, संख्येयानि चूलावस्तूनि, संख्येयानि प्राभृतानि, संख्येयानि प्राभृतप्राभृतानि, संख्येयाः प्राभृतिकाः, संख्येयाः प्राभृतप्राभृतिकाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, स एष दृष्टिवादः १२ ॥ सू० ५६ ॥

टीका—बारहवें दृष्टिवाद अङ्गकी परिमित वाचनाएं हैं, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ संख्यात श्लोक, संख्यात प्रतिपत्ति और निर्युक्ति व संग्रहणी भी संख्यात २ हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह बारहवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और चौदह पूर्व हैं, संख्येय वस्तु तथा संख्येय चूला (चूल)-छोटी वस्तु है संख्यात प्राभृत और प्राभृतप्राभृत भी संख्येय हैं, प्राभृतिका व प्राभृतप्राभृतिका ये दोनों संख्यात २ हैं, पदपरिमाणसे संख्येय पदसहस्र हैं अक्षर संख्यात हैं परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं, धर्मद्रव्य आदि शाश्वत तथा प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध हैं हेतु आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण दर्शन निदर्शन तथा उपदर्शनसे विशद समझाए जाते हैं। फल—दृष्टिवादका यह पाठक तद्रूप हो जाता है, उक्त भावोंका यथार्थ ज्ञाता व वेत्ता विज्ञाता बनता है, इसप्रकार चरणकरणकी इसमें प्ररूपणा की जाती है, यह दृष्टिवाद बारहवां अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू. ५६ ॥

मूल—इच्चेइयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा पण्णत्ता—

(संग्रहणी गाथा)

९२—भावमभावाहेऊ,-महेऊकारणमकारणे चेव ।
जीवाजीवाभवियम,-भविया सिद्धा असिद्धा य ॥ १ ॥

छाया—इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटकेऽनन्ता भावाः, अनन्ता अभावाः, अनन्ता हेतवः, अनन्ता अहेतवः, अनन्तानि कारणानि, अनन्तान्यकारणानि, अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवाः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ता अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धाः, अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ताः—

९२—भावाऽभावौ हेत्वहेतू कारणाऽकारणे चैव ।
जीवा अजीवा भविका अभविकाः सिद्धा असिद्धाश्च ॥ १ ॥

टीका—इस प्रकार इस द्वादशाङ्गी गणिपिटकमें अनन्त जीवादि भाव और अनन्त हेतु और अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त ही अजीव, अनन्त भवसिद्धिक तथा अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्तसिद्ध व अनन्त असिद्ध–संसारी जीव कहे गये हैं । इसी बातको संग्रहणी गाथासे कहते हैं–भाव १ अभाव २, हेतु ३ व असद्धेतु ४, कारण ५ और अकारण ६, जीव ७, अजीव ८, भव्य ९, अभव्य १०, सिद्ध ११ और असिद्ध १२, ये सब अनन्त हैं ।

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति ।

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्याटिषु', इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्नकाले परीता'—परिमिता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटन्ति, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमनागते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटिष्यन्ति ।

टीका—अब द्वादशाङ्गीकी विराधनाका त्रैकालिक फल कहते हैं—भूतकालमें अनन्त जीवोंने पूर्वोक्त इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञाके विराधना कर चारों ओर चतुर्गतिरूप अन्तवाले संसारकान्तारमें भ्रमण किया इसी प्रकार द्वादशाङ्गी इस गणिपिटकका आज्ञारूपसे खण्डन करके (परिमित) संख्यात जीव चार गतिरूप संसारकान्तारमें वर्तमानकालमें चक्कर लगाते हैं, भविष्यकालमें भी इस पूर्वोक्त द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञाको भङ्ग कर अनन्त जीव चार गतिरूप संसारकान्तारमें भ्रमण करेंगे ।

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइंसु । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयंति । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्संति ।

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यत्यव्राजिषु', इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्नकाले परीता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजन्ति, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमनन्ता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजिष्यन्ति ।

टीका—अब द्वादशाङ्गीकी आराधनाका फल कहते हैं—भूतकालमें इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे आराधना-पालन कर अनन्त जीव चारगतिरूप संसारकान्तारको तिर गए, वर्तमानकालमें परिमित-संख्येय जीव इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे आराधना कर चार गतिवाले संसारकान्तारको

पार कर जाते हैं। ऐसेही भविष्यकालमें इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञानुसार आराधना करके अनन्त जीव चतुरन्त संसारकान्तारको पार कर जायेंगे।

अब अर्थरूपसे इस द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाते हैं—

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे। से जहानामए पंच अत्थिकाया न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे, एवामेव दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे। से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ, दव्वओ णं सुयनाणी उव-उत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं (व्वे) भावं (वे) जाणइ पासइ ॥ सू ५७ ॥

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्ग गणिपिटकं न कदाचिन्नासीन्, न कदाचित् भवति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवं नियतं शाश्वतमक्षयमव्ययमवस्थितं नित्यम्, स यथा-नामकः पञ्चास्तिकायो न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्नास्ति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवो नियतः शाश्वतोऽक्षयोऽव्ययोऽवस्थितो नित्यः, एवमेव द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्नास्ति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवं नियतं शाश्वत-मक्षयमव्ययमवस्थितं नित्यम्, तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः, तत्र द्रव्यतः श्रुत-

ज्ञानी–उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रत' श्रुत ज्ञानी–उपयुक्तः सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालत' श्रुतज्ञानी–उपयुक्त' सर्वं कालं जानाति पश्यति, भावत श्रुतज्ञानी–उपयुक्त' सर्वान् भावान्–जानाति पश्यति ॥ सू० ५७ ॥

टीका-अब द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाते हैं—पूर्वोक्त यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक कभी नहीं था ऐसा नहीं कभी नहीं है ऐसा भी कोई समय नहीं, तथा कभी नहीं होगा यह भी नहीं, भतकालमें था वर्त्तमानमें है, और भविष्यमें भी रहेगा, यह द्वादशाङ्गी ध्रुव नियत शाश्वत अक्षय अव्यय–व्ययरहित, अव स्थित तत्त्वरूपसे एकसा अतएव नित्य है, इसी बातको उदाहरणसे समझाते हैं, जैसे–पंचास्तिकाय [संभाव्य नामवाले] पाँच अस्तिकाय कभी नहीं थे कभी नहीं हैं या कभी नहीं होंगे ऐसा कोई समय नहीं मिलता, किन्तु भतकालमें थे वर्त्तमानमें हैं और भविष्यमें होंगे ध्रुव, नियत, शाश्वत अक्षय, अव्यय अव स्थित तथा नित्य-सदाकाल रहनेवाले हैं, इसी प्रकार द्वादशाङ्गी गणिपिटक कभी नहीं था यह नहीं कभी नहीं है और कभी नहीं होगा यह भी नहीं, किन्तु था, वर्त्तमानमें है और भविष्यमें भी रहेगा क्योंकि ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय अवस्थित होनेसे यह नित्य है। श्रुतज्ञानका सामान्यरूपसे उपसंहार करते हैं–वह श्रुतज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भावसे, उन चारों प्रकारोंमेंसे—द्रव्यसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त-उपयोगवाला सब द्रव्योंको जानता व देखता है, क्षेत्रसे उपयुक्त श्रुतज्ञानी सब क्षेत्रके पदार्थोंको जानता व देखता है, कालसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त होकर सब काल यानि त्रिकालवर्ती विषयोंको जानता व देखता है, भावसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त सब भावों–पर्यायोंको जानता व देखता है ॥ सू० ५७ ॥

९३—मूल–गाथा

(अक्खरसन्नी सम्मं, साइयं खलु सपज्जवसियं च ।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ १ ॥

९४—आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं ।
बिंति सुयनाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥ २ ॥

९५—सुस्सुसइ १ पडिपुच्छइ २, सुणेइ ३ गिण्हइ ४ य ईहए ५ यावि।
तत्तो अपोहए ६ वा, धा धारेइ ७ करेइ वा सम्मं ८ ॥ ३ ॥

९६—मूअं हुंकारं वा, बाढक्कारं पडिपुच्छ वीमंसा ।
तत्तो पसंगपारायणं च परिणिट्ठ सत्तमए ॥ ४ ॥

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ ५ ॥
से त्तं अंगपविट्ठं, से त्तं सुयनाणं, से त्तं परोक्खनाणं, [से त्तं नाणं] से त्तं नदी।

॥ नंदी समत्ता ॥

९३—छाया

अक्षरसंज्ञि सम्यक्, सादिकं खलु सपर्यवसितं च।
गमिकमङ्गप्रविष्टं, सप्ताऽप्येते सप्रतिपक्षाः ॥ १ ॥

९४—आगमशास्त्रग्रहणं, यद्बुद्धिगुणैरष्टभिर्दृष्टम्।
ब्रुवते श्रुतज्ञानलाभं, तत्पूर्वविशारदा धीराः ॥ २ ॥

९५—शुश्रूषते प्रतिपृच्छति, शृणोति गृह्णाति चेहते वाऽपि।
ततोऽपोहते वा धारयति करोति वा सम्यक् ॥ ३ ॥

९६—मूकं, हुङ्कारं, वाढंकारं, प्रतिपृच्छां विमर्शम्।
ततः प्रसङ्गपरायणं च परिनिष्ठा सप्तमके ॥ ४ ॥

९७—सूत्रार्थः खलु प्रथमः, द्वितीयो निर्युक्ति-मिश्रितो भणितः।
तृतीयश्च निरवशेष एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ ५ ॥
तदेतदङ्गप्रविष्टम्, तदेतच्छ्रुतज्ञानम्, तदेतत्परोक्षज्ञानम्, [तदेतज्ज्ञानम्]

॥ सा एषा नंदी समाप्ता ॥

टीका-श्रुतज्ञानका उपसंहार व शास्त्रकी समाप्ति-१ अक्षर २ संज्ञि ३ सम्यक् ४ सादिक और निश्चयसे ५ सपर्यवसित अन्तवाला ६ गमिक व ७ अङ्गप्रविष्ट, ये सातों प्रतिपक्षके साथ अर्थात् अक्षरश्रुत १ अनक्षरश्रुत २ संज्ञि ३ व असंज्ञिश्रुत ४ सम्यक्श्रुत ५ तथा मिथ्याश्रुत ६ सादिक ७ व अनादिकश्रुत ८ सपर्यवसितश्रुत ९ और अपर्यवसितश्रुत १० गमिकश्रुत ११ ऐसे अगमिकश्रुत १२ अङ्गप्रविष्टश्रुत १३ व अनङ्गप्रविष्टश्रुत १४ इसप्रकार श्रुतज्ञानके १४ भेद होते हैं ॥ ९३ ॥ आगे कहे जानेवाले आठ बुद्धिगुणोंसे जो आगम मर्यादापूर्वक यथावस्थित अर्थोंकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रका ग्रहण देखा है, उसको पूर्वविशारद धीर-व्रतपालनमें स्थिर मुनि श्रुतज्ञानका लाभ कहते हैं अर्थात् जिनप्रणीत वचनका अर्थपरिज्ञानही परमार्थसे श्रुतज्ञान है, अन्य

नहीं। अब पूर्वोक्त आठ बुद्धिगुणोंको कहते हैं–पहले सुनना चाहता है १, फिर शङ्काके स्थलोंको विनयसे पूछता है २, पूछनेपर गुरु जो कहें उसे सावधान मनसे सुनता है ३ और ग्रहण करता है ४ फिर उसपरभी विचार करता है ५ तब विचार करनेके बाद सम्यक् निश्चय करता है ७ फिर हृदयमें धारण करता और सम्यक् प्रकारसे आचरणमें लाता है ८। श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके निमित्त होनेसे इन आठोंको गुण कहा है। अब शास्त्र सुननेकी विधि कहते हैं–प्रथम मूक–गूंगेकी तरह रहके सुने फिर हुंकार करे याने स्वीकारसूचक अव्यक्त ध्वनि करे २, बादमें बाढंकार–जी हाँ, तहत् आदि पदसे स्वीकार करे ३, कुछ पूछे ४ विमर्श–जिज्ञासा करे ५, बाद छट्ठे श्रवणमें प्रसङ्ग–उत्तरगुणप्रसङ्गमें पारायण होता है और सातवें श्रवणमें गुरुकी तरह परिनिष्ठित हो जाता है (उपरोक्त गाथामें कई आचार्य सात बारमें श्रवणका अधिकार पूर्ण करते हैं)। अब गुरुके व्याख्यान करनेकी विधि दिखाते हैं–पहले अनुयोग–व्याख्यान सूत्रार्थ–मूल और अर्थरूपसे दूसरा अनुयोग निर्युक्तिसहित कहा गया है, और तीसरा अनुयोग प्रसङ्गानुप्रसङ्गके कथनसे निरवशेष कहा जाता है, यह अनुयोग–व्याख्यान–दानमें विधि कही गई है, (इन तीन अनुयोगोंमेंसे किसी एकके बारबार विचार करनेसे सात श्रवण करवाये जाते हैं। यह श्रवण और अनुयोगकी रीति साधारण बुद्धिवाले शिष्योंकी दृष्टिसे कही गई है) इति–यह अङ्गप्रविष्टश्रुतज्ञान व समस्त श्रुतज्ञान पूर्ण हुआ साथ ही परोक्षज्ञान भी हो चुका, यह ज्ञानका वर्णन हुआ और नन्दीसूत्र भी पूर्ण हुआ।

पूज्य श्रीहस्तिमल्लमुनिनिर्मित च्छायाऽनुवादोपेतं
श्रीदेवर्द्धि गणिक्षमाश्रमण विरचितं
श्रीमन्नन्दीसूत्रं
समाप्तिमगात्

आनन्दो नन्दनं नन्दिर्नन्दी संपदुपासकाः ।
उपचारास्समाप्तास्ते, स्वार्थतः सर्वदाऽऽसताम् ॥ १ ॥
मङ्गलाऽऽगमससर्गान्मङ्गलं यन्मयाऽर्पितम् ।
आपतां तत्प्रभावेण, जगज्जैनं सुमङ्गलम् ॥ २ ॥

प्रथम परिशिष्टम् ।

पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दोंपर टिप्पण ।



(१) अंगुल (पृ ३२ गा. ५७)-अङ्गुलको अनुयोगद्वार सूत्रमें विभाग-निष्पन्न क्षेत्रप्रमाणमें आदिप्रमाण माना है। आत्माङ्गुल, उच्छेदाङ्गुल और प्रमाणाङ्गुल इस प्रकार वह अङ्गुल प्रमाण तीन प्रकारका है, उनमेंसे यहाँ उच्छेदाङ्गुल समझना चाहिए। आठ जवमध्योंका एक उच्छेदाङ्गुलप्रमाण होता है। इसका खुलासा 'वालग्ग' नामक सातवें टिप्पणमें देखें।

(२) आवलिया (पृ ३२ गा ५७)-असंख्यात समयोंकी एक आवलिका होती है। एक श्वासोच्छ्वासमें संख्यात आवलिकाएँ हो जाती हैं। (अनुयोगद्वारसूत्रमें कालानुपूर्वी देखिए)

(३) गाउय (पृ ३२ गा ५८)-कौटिलीय अर्थशास्त्रमें 'गाउय' के अर्थमें 'गोरुत' शब्द मिलता है, जैसे—'धनुस्सहस्रं गोरुतम्, चतुर्गोरुतं योजनम्'। उपरोक्त श्लोकमें १००० धनुषका कोश माना है किन्तु वह मगधदेश-प्रसिद्ध है, शौरसेन देशमें दो हजार धनुषका क्रोश माना जाता था। इस विषयका वैजयन्ती कोशमें निम्न उल्लेख है—

'चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो धनुर्धन्वन्तरं युगम्।'

"धन्वन्तरसहस्रं तु क्रोशो गव्या तु तद्द्वयम्।
स्त्री-गव्यूतिश्च गव्यूतं गोरुतं गोमतं च तत्॥
गव्यूतानि च चत्वारि योजनं कोशलादिषु।
गव्यूतिद्वयमेव स्याद्योजनं मगधादिषु॥ ६३॥"

वैजयन्ती-देशाध्याय ४०।

(४) जंबूद्दीव (पृ. ३२ गा० ५९)—जम्बूद्वीप यह प्रमाण अङ्गुलोंसे ४ लाख कोशके विस्तारवाला द्वीप है। इसके भरत आदि अनेक क्षेत्र विभाग हैं।

(५) मनुष्यलोक (पृ ३२ गा ५९)—जितनी भूमिमें मनुष्य रहते हैं उसको मनुष्यलोक कहते हैं, इसमें जम्बूद्वीप, घातकीखण्ड व अर्द्धपुष्करद्वीप ऐसे ढाईद्वीप और दो समुद्र हैं। कुल ४५ लाख योजनके विस्तारका यह भूखण्ड है।

(६) ओसप्पिणी (पृ ३२ गा ६२)-जिस समयमें भूमि व धान्य आदिके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श क्रमशः हीन होते जाते और मनुष्य एवं

तिर्यञ्च प्राणियोंकी आयु व शरीरकी लम्बाई कम होती हो, तथा सद्गुणोंकी हीनता होती जाय ऐसे कालको अवसर्पिणी काल कहते हैं, उसके परमसुकाल १, सुकाल २, सुषमदुष्षम–पहले अच्छा किन्तु अन्तमें बुरा ३, दुष्षम सुषम–दुःखमें कुछ अशुभ फिर अच्छा ४, दुष्षम–दुःखप्रधान साधनवाला ५, दुष्षमदुष्षम–पूर्ण दुःख व अधमतिका समय ६ ऐसे इस अवसर्पिणी कालके छ विभाग होते हैं, जिन्हें छ आरा भी कहते हैं। यह अवसर्पिणीकाल १० कोडाकोडी सागरका होता है। वर्तमानमें पाँचवें दुष्षम समयके २॥ हजार वर्ष बीते हैं, यह समय कुल २१ हजार वर्षका है। देखें—जम्बूद्वीपकी टीका या जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्तिसूत्रका कालवर्णन।

(७) बालग्ग (पृ १५ सू १४)—रथके चक्रसे आहत होकर उड़नेवाला धूलि-कण रथरेणु कहा जाता है, आठ रथरेणुसे १ बालाग्र होता है, बालाग्रसे आठ गुण अधिक १ लीख व लीखसे आठ गुण अधिक एक जू (यूका) होती है, जूसे आठगुण अधिक एक जवमध्य और आठ जवमध्य-परिमाणका एक अङ्गुल होता है। छ अङ्गुलका एक पैर-चरणतल होता है, ११ अङ्गुलोंकी एक वितस्ति-बेंत और २४ अङ्गुलोंका एक रत्नि-हाथ, दो हाथोंकी एक कुक्षि और चार हाथोंका एक धनुष दोहजार धनुष अर्थात् आठ हजार हाथोंका एक कोश और चार कोशोंका एक योजन होता है। (विशेष जाननेके लिये अनुयोगद्वारसूत्रमें क्षेत्रप्रमाणके अङ्गुलाधिकारको देखें)

(८) उस्सप्पिणी (पृ १७ सू ११)—पहले कहे गए अवसर्पिणी कालसे विपरीत शुभ भावोंकी वृद्धि करनेवाले कालको उत्सर्पिणीकाल कहते हैं। इसके ६ विभागोंमें क्रमशः पदार्थोंके वर्ण रस, गन्ध, आदिकी उन्नति होती रहती है, इसलिये इस कालको उत्सर्पिणीकाल कहा है, इस कालक्रमको अवसर्पिणीसे उलटा समझें यह काल भी १० कोडाकोडी सागरोपम परिमाणका है। देखें-जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति।

(९) संमुच्छिम मणुस्सा (पृ. १९ सू १७)—मनुष्य आदि प्राणियोंके मलमूत्र वगैरहसे बिना गर्भके पैदा होनेवाले जीवोंको संमूर्च्छनज या संमूर्च्छिम कहते हैं, मनुष्यमात्रके १ मल २ मूत्र ३ श्लेष्मा, ४ सिंघाण-नाकका मल, ५ वमन, ६ पित्त, ७ शोणित-रक्त ८ पू-राध, ९ वीर्य, १० सूखे हुए वीर्यके पुद्गलोंका फिर गीला होना ११ स्त्री-पुरुषका संयोग १२ शहरोंकी गन्दी नालियाँ, १३ मुर्देके कलेवर, तथा १४ सर्व अशुचिके स्थान, इन १४ स्थानोंमें ४८ मिनटोंके भीतर संमूर्च्छिम मनुष्य जीवोंकी उत्पत्ति होती है, इनका जीवनकालभी अन्तर्मुहूर्तका होता है (पन्न १ पद)।

(१०) कम्मभूमिय, अकम्मभूमिय, अंतरदीवग (पृ ११ सू १०)—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तरद्वीपज इस प्रकार गर्भज मनुष्योंके संक्षेपसे

तीन प्रकार होते हैं। जहाँ असि, मासि व कृषिरूप साधनोंसे जीविका चलती है और जहाँ राजा और धर्माचार्य आदि होते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं। भरत, ऐरवत व महाविदेह ये तीन कर्मभूमि-क्षेत्र हैं। इनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कर्मभूमिज कहे जाते हैं।

अकर्मभूमि—इससे उलट जहां कृषि, वाणिज्य या शस्त्र-जीवनकी वृत्ति नहीं हो, सभी पूर्ण स्वतन्त्र व कल्पवृक्षसे सुखमय जीवन विताते हों, उसको अकर्मभूमि या भोगभूमि-क्षेत्र कहते हैं। देवकुरु १, उत्तरकुरु २, हरिवर्ष ३, रम्यवर्ष ४, हैमवत ५, हैरण्यवत ६, ये छ अकर्मभूमिक्षेत्र हैं। यहाँ जन्मनेवाले मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं।

अन्तरद्वीप—दोनों बाजू पानीसे घिरे हुए व जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित भूमिप्रदेशको अन्तरद्वीप कहते हैं। चुल्लहिमवान् और शिखरी पर्वतकी दो २ दाढाएँ लवणसमुद्रमे निकली हुई हैं, जो पूर्व-पश्चिम दोनों दिशाओंमें हैं। उनपर ५६ अन्तरद्वीपके क्षेत्र हैं। यहां भी कृषि, वाणिज्य आदि कर्म नहीं होते हैं। फिर भी समुद्रवर्ती भूभागमें होनेसे इनको अकर्मभूमि नहीं कहके अन्तरद्वीप कहा है। यहांके मनुष्य अन्तरद्वीपज कहलाते हैं।

(११) पज्जत्तग (पृ ४१ सू १७)—छ प्रकारकी पंज्जत्ति-पर्याप्तिओंमेंसे अपने २ योग्य शक्तिओंको जिसने पूर्ण प्राप्त करलिया उसे पज्जत्त या पर्याप्त कहते हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनःपर्याप्ति ये छह पर्याप्तियाँ हैं। मनुष्यमें ये छहही पर्याप्तियाँ होती हैं, इन छह पर्याप्तिओंको पा लेनेपर मनुष्य पर्याप्त कहाता है। इनकी व्याख्या प्रथम कर्मग्रन्थकी ४९ वीं गाथाके अर्थमें देखे

(१२) पलिओवम (पृ ४५ सू १८)-पल्योपम—उद्धारपल्य १, अद्धापल्य २ व क्षेत्रपल्य ३, इसप्रकार पल्योपमके तीन प्रकार हैं। सूक्ष्म और व्यावहारिक भेदसे प्रत्येकके दो दो प्रकार हैं। उद्धार पल्योपमसे द्वीपसमुद्रोंका परिमाण किया जाता है और क्षेत्रपल्योपमसे दृष्टिवादके द्रव्योंका परिमाण समझा जाता है। किन्तु कालमान व आयुमान अद्धापल्योपमसेही

---

१ पर्याप्तिका स्वरूप—पर्याप्ति वह शक्ति है, जिसके द्वारा जीव आहार-श्वासोच्छ्वास आदिके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है और गृहीत पुद्गलोंको आहार-आदि-रूपमें परिणत करता है। ऐसी शक्ति जीवमें पुद्गलोंके उपचयसे बनती है। अर्थात् जिसप्रकार पेटके भीतरके भागमें वर्तमान पुद्गलोंमें एक तरहकी शक्ति होती है, जिससे कि खाया हुआ आहार भिन्न २ रूपमें बदल जाता है, इसीप्रकार जन्मस्थान-प्राप्त जीवके द्वारा गृहीत पुद्गलोंसे ऐसी शक्ति बन जाती है, जो कि आहार आदि पुद्गलोंको खल-रस आदि रूपमें बदल देती है, वही शक्ति पर्याप्ति है। पर्याप्तिजनक पुद्गलोंमेंसे कुछ तो ऐसे होते हैं, जो कि जन्मस्थानमें आए हुए जीवके द्वारा प्रथमसमयमें ही ग्रहण किये हुये होते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जो पीछेसे प्रत्येक समयमें ग्रहण किये जाकर पूर्वगृहीत पुद्गलोंके ससर्गसे तद्रूप बने हुये होते हैं—चतु० कर्म० परिशिष्ट।

किया जाता है । उसका स्वरूप इस प्रकार है—एक योजन लम्बा चौड़ा व उतनाही गहरा तथा कुछ अधिक तीनगुण परिधिवाला एक गर्त-खड्डा है, उसको एक दिन, दो दिन यावत् उत्कृष्ट ७ दिनोंके पैदा हुए बालकके बालाग्रोंसे खूब कसकर भर देवें । पल्यको भरनेमें बालाग्रोंको इतना कसदेना चाहिए जिससे कि उसके बालाग्र अग्निसे जले नहीं, पानीसे गले नहीं तथा वायुसे उड़े नहीं व चक्रवर्तीकी चतुरङ्गिणी सेनासे भी दबे नहीं, इसप्रकार कसकर भरदेनेपर सौ सौ वर्षोंसे एक एक बालाग्र निकाला जाय तब जितने समयमें वह खड्डा खाली होजाय अर्थात् एक एक बालाग्र निकल जाय उसको व्यावहारिक अद्धापल्योपम कहते हैं । जब इन बालाग्रोंको प्रत्येकके दिख नहीं पड़े इतने छोटे टुकड़े—असंख्य खण्ड करके पूर्ववत् पल्य-खड्डाको भरे और उसमेंसे एक एक टुकड़ाको सौ सौ वर्षोंसे निकाले ऐसे करनेपर जितने दिनोंमें वह पल्य अर्थात् खड्डा खाली हो उस समयको सूक्ष्म अद्धापल्य कहते हैं । दश कोडाकोडी पल्यका एक सागरोपम काल होता है, इसीसे देव नारकोंकी आयुका माप होता है । उद्धारपल्य व क्षेत्रपल्यमें प्रतिसमय बालाग्रका अपहरण किया जाता है, शेष वर्णन इसी प्रकार है ।

(१६) अणंतरसिद्धकेवलणाणं (पृ ४१ सू ११)—शैलेशी-अवस्थाके अन्तिम समयमें जो सिद्ध हुए हैं उनका केवलज्ञान अनन्तरसिद्ध-केवलज्ञान है, पूर्वभवसम्बन्धी उपाधिके भेदसे वे सिद्ध १५ प्रकारके होते हैं, जैसे—

१ तीर्थसिद्ध—वीतराग व सर्वज्ञ तीर्थङ्कर महाराजसे प्रणीत आगम या सङ्घ तीर्थ कहाता है । उस तीर्थकी स्थापना हो जानेपर जो सिद्ध हुए वे तीर्थसिद्ध होते हैं ।

२ अतीर्थसिद्ध—पूर्वोक्त तीर्थकी स्थापना होनेसे पहले या तीर्थके विच्छेदके समय जातिस्मरण आदिसे मरुदेवीकी तरह सिद्ध होनेवाले अतीर्थसिद्ध हैं ।

३ तीर्थङ्करसिद्ध—ऋषभ आदि तीर्थङ्कर होकर जो सिद्ध हुए उन्हें तीर्थङ्करसिद्ध कहते हैं ।

४ अतीर्थङ्करसिद्ध—जो सामान्य केवलीपनसे सिद्ध हुए हैं ।

५ स्वयम्बुद्धसिद्ध—गुरु आदिके उपदेशके बिना स्वयं बोध पाकर सिद्ध होनेवाले ।

६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध—करकण्डु आदिकी तरह वृषभ आदि किसी बाह्य वस्तुके निमित्तसे बोध पाकर सिद्ध होनेवाले प्रत्येकबुद्धसिद्ध कहे जाते हैं ।

७ बुद्धबोधितसिद्ध—आचार्य आदिसे बोध पाकर जो सिद्ध हुए हैं ।

८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध—जो स्त्रीके शरीरसे सिद्ध होते हैं ।

९ पुंलिङ्गसिद्ध—पुरुषलिङ्गसे जो सिद्ध हुए हैं ।

१० नपुंसकलिङ्गसिद्ध—नपुंसकके शरीरसे जो सिद्ध हुए हैं ।

११ स्वलिङ्गसिद्ध--रजोहरण मुखवस्त्रिकारूप जैनलिङ्ग(चिह्न)से सिद्ध होनेवाले।

१२ अन्यलिङ्गसिद्ध--परिव्राजक आदिके लिङ्गसे सिद्ध होनेवाले।

१३ गृहिलिङ्गसिद्ध--भावोंकी उच्चतासे-भावसाधुतासे गृहस्थवेशमें सिद्ध होनेवाले।

१४ एकसिद्ध--एकसमयमें एकही सिद्ध होनेवाले।

१५ अनेकसिद्ध--एकसमयमे अनेक सिद्ध होनेवाले।

तीर्थसिद्ध व अतीर्थसिद्ध इन दो भेदोंमें सब सिद्धोंका समावेश हो जानेपर भी जो १५ भेद दिखाये गए हैं, वे विशेप बोधके लिये हैं। इन १५ सिद्धोंके आश्रयसे केवलज्ञान भी १५ प्रकारका है, जैसे-धर्मभेदसे धर्मीमे भेद होता है, वैसे धर्मीके भेदसे धर्ममें भी भेद होता है, जैसे-कुड्य, नभ व वृक्षपर बैठने उडनेवाले पक्षी।

(१४) मिथ्याश्रुत (पृ १११ सू. ४१)--जैन आचार्योंने विषय-कषायोंसे निवृत्त होकर निजात्मभावमें प्रवृत्ति करनेकोही उपादेय माना है। पुरुषार्थ चतुष्टयीमें भी 'धर्मं प्रवरं वदन्ति'के अनुसार मोक्षसाधक धर्मतत्त्वकोही वे पुरुषार्थ मानते हैं, और प्रधानतासे उस शुद्ध धर्मके प्रदर्शक शास्त्रकोही वे सम्यक्श्रुत कहते हैं, देखें श्रुतका लक्षण-'जं सुच्चा पडिवज्जंति तवं खंतिमहिंसयं' अर्थात् जिस शास्त्रको सुनकर श्रोता तप क्षांति और अहिंसाको धारण करता हो उसे सम्यक्शास्त्र कहते हैं (उ ३ गा ८)। इस लक्षणके अनुसार कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, भाषाशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, व इतिहास आदि शास्त्र व्यवहारज्ञानके पोषक और प्रधानतासे प्रवृत्तिसाधक होनेसे मोक्ष मार्गसे विपरीत हैं, अतएव इन 'भारत आदि' लौकिक शास्त्रोंको यहां मिथ्याश्रुत कहा है। किसी विशिष्ट व्यक्तिकी विशुद्ध दृष्टिके कारण इनशास्त्रोंसे भी सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है, उसके लिये ये सम्यक्श्रुत होते हैं। परिचय-इनमें भारत, महाभारत और रामायण व कौटिलीय-अर्थशास्त्र प्रसिद्ध है, भीमासुरोक्त १, शकट-भद्रिका २, घोटकमुख-वात्स्यायन 'नो पूर्वगामी कामशास्त्रनो रचनार' देखें-जैन साहित्यनो ('संक्षिप्त इतिहास' गु.) ३, कार्पासिक ४, नागसूक्ष्म ५, कनकसप्तति ६, त्रैरासिक ७, लोकायत ८, पुष्यदैवत ९, ये उपरोक्त ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, माठर-माठराचार्यकृत सांख्यकारिकाकी माठरवृत्ति जो वर्तमानमें उपलब्ध है, पुराण, व्याकरण, भागवत, पातञ्जल (योगसूत्र) और साङ्गोपाङ्ग चार वेद ये वर्तमानमें उपलब्ध एवं प्राय. प्रसिद्ध हैं।

(१५) उत्कालिक-श्रुत (पृ ११५ सू ४३)-नियत समयके अलावा भी जो पढे जावें उनको उत्कालिकश्रुत कहते हैं।

दसवेआलिय १ उववाइय ५, रायपसेण्णिय ६, जीवाभिगम ७, पन्नवणा ८, नंदी ११, अणुओगदार १२, सूरपण्णत्ति १५ ये ७ सुत वर्तमानमें उपलब्ध हैं। २, ३ ४ ९, १० १५, १७, १८, १९, २१ २३, २४, २५, २७, ये १४ सुत वर्तमानमें अनुपलब्ध हैं। देवेन्द्रस्तव आदि शेष सुत उस नामसे दश प्रकीर्णकोंमें मिलते हैं। किन्तु उनकी भाषा व रचना आदिसे मालूम होता है कि आगमोंके प्राचीन सुतके आधारसे उन ग्रन्थोंका पिछेसे निर्माण किया हो ऐसें-मरणसमाधिकी प्रशस्ति—

पढमं मरणविभत्ती मरणविसोहिं च नाम गुणरयणं।
मरण समाहिं तइयं, संलेहणसुयं चउत्थं च ॥ ६६१ ॥ १८९६ ॥
पंचम भत्तपरिण्णा, छट्ठं आउरपच्चक्खाणं च।
सत्तम महपच्चक्खाणं अट्ठम आराहणपइण्णी ॥ ६६२ ॥ १८९७ ॥
इमाओ अट्ठसुयाओ भावाउ गहियंमि लेस अत्थाओ।
मरणविभत्ती रइय, बियनाम मरणसमाहिं च ॥ ६६३ ॥ १८९८ ॥
इति सिरिमरणविभत्ती पइण्णयं संमत्तं ॥ ८ ॥ इति संलेखनासूत्र।

उत्कालिक श्रुतोंकी सूची।

दशवैकालिक सूत्र—जो दश अध्ययनोंसे साधुओंके आचारोंको कहनेवाला है, वह शास्त्र प्रसिद्ध ही है ॥ १ ॥

कल्प और अकल्पका वर्णन करनेवाला शास्त्र कल्पाकल्प कहा जाता है। यह नहीं मिलता ॥ २ ॥

स्थविरकल्प आदि मर्यादाको कहनेवाला ग्रन्थ कल्पश्रुत कहा जाता है। यह दो तरहका है, एक सूत्र तथा अर्थके परिमाणसे छोटा है, उसे चुल्ल कल्पश्रुत कहते हैं, दूसरा सूत्रार्थोंके परिमाणसे विशाल है उसे महाकल्पश्रुत कहते हैं ॥ ३–४ ॥

उववाई, रायपसेणि और जीवाभिगम ये तीनों क्रमसे पहले दूसरे व तीसरे उपाङ्ग हैं ॥ ५–६–७ ॥

प्रज्ञापना-इसमें जीव अजीवका ज्ञान कराया गया है ॥ ८ ॥

महाप्रज्ञापना-यह सूत्रार्थोंकी अपेक्षासे प्रथम प्रज्ञापनासे बडा है ॥ ९ ॥

प्रमादाऽप्रमादशास्त्र-इसमें प्रमाद और अप्रमादके भेद स्वरूप और फल दिखाए गए हैं ॥ १० ॥

नन्दी-पांच ज्ञानोंको कहनेवाला शास्त्र ॥ ११ ॥

अनुयोगद्वार-इसमें उपक्रम, निक्षेप आदि व्याख्याके द्वारोंका वर्णन है ॥ १२ ॥

देवेन्द्रस्तव-देव व देवेन्द्रकी स्तुति, तत्सम्बन्धी व्यावहारिक-धर्म व जीवस्वभाव आदि तत्सम्बन्धी वर्णन करनेवाला दश प्रकीर्णकोंमें इस नामका एक प्रकीर्णक उपलब्ध है ॥ १३ ॥

चन्द्रविद्या-चन्द्रसम्बन्धी ज्ञान करानेवाला ग्रन्थविशेष, यह वर्तमानमें अनुपलब्ध है ॥ १४ ॥

सूर्यप्रज्ञप्ति-इसमें सूर्यकी गति आदिका वर्णन है ॥ १६ ॥

पौरुषीमण्डल-इसमें पुरुषके शरीर या शङ्कुकी छायासे पौरुषीका ज्ञान कराया गया है, जैसे उत्तरायणके अन्त और दक्षिणायनके प्रारम्भमें केवल एक दिन शङ्कु वगैरह किसी भी वस्तुकी अपने बराबर छाया हो, तब पौरुषी-प्रहर दिन समझना चाहिए। इसप्रकार प्रत्येक सूर्यमण्डलकी अपेक्षासे पौरुषीका वर्णन करनेवाला अध्ययन पौरुषीमण्डल है ॥ १७ ॥

मण्डलप्रवेश-इसमें दक्षिण और उत्तरके मण्डलोंमें चन्द्रसूर्यके एक मण्डलसे दूसरे मण्डलमे प्रवेशका वर्णन किया गया है ॥ १८ ॥

विद्याचरणविनिश्चय-इसमे सम्यग्ज्ञान और चरणके फलका निश्चय कहा गया है ॥ १९ ॥

गणिविद्या- ज्योतिष व निमित्तके विषयमें आचार्यकी विद्या-इसी नामसे यह प्रकीर्ण उपलब्ध है ॥ २० ॥

ध्यानविभक्ति- इसमें आर्त, रौद्र आदि ध्यानोंके विभाग व उनके स्वरूपोंका वर्णन है ॥ २१ ॥

मरणविभक्ति- इसमें अनुसमय आदि मरण विभागोंका वर्णन है ॥ २२ ॥

आत्मविशुद्धि- इसमें आलोचना व प्रायश्चित्त आदि प्रकारसे जीवकी विशुद्धिका वर्णन है ॥ २३ ॥

वीतरागश्रुत- इसमे वीतरागके स्वरूपका वर्णन है ॥ २४ ॥

संलेखनाश्रुत- इसमें द्रव्यभावसे संलेखनाका वर्णन है ॥ २५ ॥

विहारकल्प- स्थविर आदि कल्पके विहारकी व्यवस्था करनेवाला ग्रन्थ ॥ २६ ॥

चरणविधि-व्रत आदि चरणका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ ॥ २७ ॥

आतुरप्रत्याख्यान-महाप्रत्याख्यान-रोगिओंको प्रत्याख्यान करानेका विस्तारसे वर्णन करनेवाला तथा भवचरम प्रत्याख्यानका प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ। ये सब प्रायः अनुपलब्ध हैं ॥ २८ ॥

कालिक श्रुतोंकी सूची।

१ उत्तराध्ययन—सभी प्रकारके भावोंको ३६ अध्ययनोंमें वर्णन करनेवाला शास्त्र।

२ दशाश्रुतस्कन्ध— इसमें १० अध्ययनोंसे २० असमाधिस्थानोंको लेकर ९ निदानतकका वर्णन है।

३ कल्प— बृहत्कल्पसूत्र।

४ व्यवहारसूत्र—इसमें साधुओंके आलोचनादि व्यवहारका वर्णन है।

१३ जीव ईश्वरसे अपनेही कारणोंसे उत्पन्न होकर नित्य रहता है।
१४ जीव अपने निमित्तसे ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी अनित्य होता है।
१५ जीव परकारणोंसे ईश्वरसे बनाया जाता और नित्य है।
१६ जीव ईश्वरसे परकारणोंको निमित्त लेकर बनाया जाता व अनित्य है।

आत्मा—

१७ जीव स्वयं आत्मरूपसे उत्पन्न होता और नित्य है।
१८ जीव आत्मरूपसे स्वयं पैदा होकर अनित्य रहता है।
१९ आत्मरूपसे जीव दूसरेसे उत्पन्न होता व नित्य है।
२० जीव दूसरेसे आत्मरूपमें उत्पन्न होता और अनित्य है।

जीवके साथ जैसे २० विकल्प हुए ऐसेही अजीव १ पुण्य २ पाप ३ आस्रव ४ संवर ५ निर्जरा ६ बन्ध ७ और मोक्ष ८ इन आठोंके २०–२० विकल्प होते हैं जो मिलानेसे सब १८० हो जाते हैं। ये क्रियावादीके १८० प्रकार हुए।

२ अक्रियावादी–क्रियावादीसे विपरीत–एकान्त जीव आदिका निषेध करनेवाले अक्रियावादी हैं, इनके ८४ भेद होते हैं, जैसे–पुण्यपाप आदिको छोड़कर जीव अजीव आदि सात पदार्थोंको लिखकर उनके नीचे स्व–पर ये दो भेद रखना, फिर काल, यदृच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन ६ को नीचे रखनेसे ८४ प्रकार हो जाते हैं, जैसे—

१ जीव स्वयंकालसे नहीं है।
२ जीव परतः कालसे नहीं है।
३ जीव स्वयं यदृच्छासे नहीं है।
४ जीव परतः यदृच्छासे नहीं है।
५ जीव नियतिसे स्वयं नहीं है।
६ जीव नियतिका आश्रयणकर परसे नहीं है।
७ स्वभावसे जीव स्वयं नहीं है।
८ स्वभावसे जीव परतः नहीं है।
९ ईश्वरसे जीव स्वयं नहीं है।
१० ईश्वरसे जीव परतः नहीं है।
११ आत्मरूपसे जीव स्वयं नहीं है।
१२ जीव आत्मरूपसे परसे नहीं है।

जीवके साथ जिस प्रकार १२ विकल्प हुए इसी प्रकार अजीव आदि ६ पदार्थोंके साथ भी १२ १२ विकल्प होते हैं, सब मिलकर अक्रियावादीके ८४ प्रकार होते हैं।

३ अज्ञानवादी–अज्ञानसही कार्यसिद्धि माननेवाले अज्ञानवादियोंके ६७ भेद हैं जीव आदि नव पदार्थोंके विषयमें सत् असत् आदिरूपभङ्गोंसे संशय करनेपर ६३ प्रकार होते हैं, जैसे—

१ जीव सत् है यह कौन जानता ? और यह जाननेसे क्या प्रयोजन

२ जीव असत् है यह कौन जानता ! और इसके जाननेसे क्या मतलब

३ जीव सदसद्रूप है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे लाभ है ?

४ जीव अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे प्रयोजन ?

५ जीव सत् होकर अवक्तव्य है यह कौन जानता ! अथवा इसके ज नेसे क्या प्रयोजन है ?

६ जीव असत् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? अथवा इसके ज नेसे क्या प्रयोजन है ?

७ जीव सदसद् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? तथा इसके ज नेसे प्रयोजन भी क्या है ?

जिस प्रकार जीवके साथ सप्तभंग हुए उसी प्रकार अजीव आ तत्त्वोंके भी सात २ भङ्ग होते हैं, वे सब मिलकर अज्ञानवादिओंके ६३ होते हैं, फिर–

१ पदार्थोंकी उत्पत्ति सती (वर्तमान) है यह कौन जानता ? वा इ जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

२ पदार्थोंकी उत्पत्ति असती है इसे भी कौन जानता ? अथवा जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

३ पदार्थोंकी उत्पत्ति सदसती है यह भी कौन जानता ? तथा इसके ज नेसे क्या प्रयोजन है ?

४ पदार्थोंकी उत्पति अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? व इसके ज नेसे भी क्या प्रयोजन है ? ६३ के साथ इन चारको मिला देनेसे अज्ञानवा ६७ भेद हो जाते हैं।

३ विनयवादी–विनयसे परलोककी सिद्धि माननेवाले वैनयिकवादीके भेद हैं, १ देव २ राजा ३ यति ४ ज्ञाति ५ वृद्ध ६ अधम ७ माता और ८ पि इन आठोंमे प्रत्येकके साथ मन वचन काय और दानसे चार प्रकारका वि किया जाता है, आठोंके चार २ भेद मिलानेसे सब विनयवादीके ३२ प्र हो जाते हैं।

क्रियावादीके १८०, अक्रियावादीके ८४, अज्ञानवादीके ६७ विनयवादीके ३२, इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ एकान्तवादिओंके प्र होते हैं। एकान्तवादी होनेसे ये मिथ्यादृष्टि कहाते हैं, इन्हीं बातोंको स ग्दृष्टि नयदृष्टिसे अनेकान्तरूपमे मानते हैं। विशेष ज्ञानके लिए सूत्रकृता द्वादश समवसरण अध्ययन देखें।

(१७) सीलव्वयगुण–वेरमण पच्चक्खाण पो० (पृ १३० सू १)

५ निशीथ—इसमें साधुसाध्वियोंके दूषित चारित्रको शुद्ध करनेके लिये प्रायश्चित्तका विधान है, ये पाँच शास्त्र वर्तमानकालमें उपलब्ध हैं।

६ महानिशीथ—यह शास्त्र निशीथसूत्रकी अपेक्षा ग्रन्थपरिमाणमें बड़ा है।

७ ऋषिभाषित—

८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—इसमें क्षेत्र व कालभेदसे जम्बूद्वीपके भावोंका वर्णन है।

९ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति—यह ग्रन्थ द्वीप और समुद्रोंका वर्णन करनेवाला है।

१० चन्द्रप्रज्ञप्ति—यह शास्त्र चन्द्रकी मण्डलगति और नक्षत्रपरिवार आदिका वर्णन करता है।

११-१२ क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति और महतीविमानप्रविभक्ति ये दोनों ग्रन्थ आवलिकाप्रविष्ट व पुष्पावकीर्ण विमानोंके विभागोंका वर्णन करते हैं।

१३-१४ अङ्गचूलिका—आचारादिकी चूला, वर्गचूला—वर्गोंकी चूलिका।

१५ व्याख्याचूलिका—भगवतीसूत्रकी चूला।

१६ अरुणोपपात—उपयोगपूर्वक जिसके पठनसे अरुणदेव चले आवें।

१७—वरुणोपपात—इसके उपयोगपूर्वक पठनसे वरुणदेवका आगमन होता है।

१८ गरुडोपपात।

१९ धरणोपपात।

२० वैश्रमणोपपात।

२१ वेलन्धरोपपात।

२२ देवेन्द्रोपपात। इन पाँच शास्त्रोंका भी उपयोगपूर्वक पठन करनेपर गरुड आदि देव व इन्द्रका भी आगमन होता है, उन शास्त्रोंकी रचना इसी प्रकारकी आकर्षकतावाली थी। उपरोक्त कालिकश्रुतोंमें १–७ संख्याके ग्रन्थ उस नामसे उपलब्ध हैं किन्तु अपने मूलरूपमें नहीं, जो उनकी रचना आदिसे मालूम हो सकता है।

२३ उत्थानश्रुत—कोपी हुए मुनि जिस गाँव या नगरके लिये संकल्पके साथ उपयोगपूर्वक तीनवार पठन करें तो वह गाँव या नगर रोता हुआ मूलसे उठजाय।

२४ समुत्थानश्रुत—वेही मुनि जब प्रसन्न होकर सङ्कल्पके साथ उपयोगपूर्वक तीनवार समुत्थानश्रुतका पाठ करें तो वह गाँव या नगर फिर वहीं आजाय।

२५ नागपरिज्ञा—इसको जब साधु उपयोगपूर्वक पढ़ते हैं तब सङ्कल्पके बिना भी नागकुमारदेव वहीं विराजमान उन मुनिओंको नाम जाते हैं तथा वन्दन करते हैं और प्रयोजनानुसार वरदान भी देते हैं।

२६ निरयावलिका—नरकावासोंका तथा नरकगामी जीवोंका वर्णन करनेवाला।

२७ कल्पिका–इसमे सौधर्म आदि कल्पका तथा देवलोक और उनमें जानेवाले जीवोंका वर्णन है।

२८ कल्पावतंसिका–इसमें सौधर्म ईशानके कल्पविमानोंमें उत्पन्न हुई देवियोंका वर्णन किया गया है।

२९ पुष्पिता–संयमभावसे पुष्पित–सुखी आत्माओंका वर्णन करनेवाला शास्त्र।

३० पुष्पचूला–प्रस्तुत अर्थकी विशेषताका वर्णन करनेवाला शास्त्र।

३१ वृष्णिदशा–अन्धकवृष्णि राजाकी वक्तव्यताबोधक शास्त्र।

९ और ११ से २५ तककी संख्याके ग्रन्थ वर्तमानमें प्रायः अनुपलब्ध हैं। आसीविसभावना, दिट्ठीविसभावना, चारणभावना, सुवि(मि)णभावना, तेयनिसग्ग, कालिकश्रुतमे उपरोक्त नाम किसी किसी प्रतिमे मिलते हैं। व्यवहारसूत्रके २० वें उद्देशकमें इनका उल्लेख मिलता है, इससे इनको मूलपाठमें मानना सङ्गत दिखता है। ये सर्व श्रुत नियत समयमेही पढे जाते हैं, इसलिये कालिक कहाते हैं।

(१६) तिण्हं तेसट्ठाणं पासंडिय सयाणं पृ १२१ सू ४६–क्रियावादी आदि एकान्तवादी तीर्थिकोंके ३६३ भेद इस प्रकार होते हैं—

१ क्रियावादी–जीव अजीव पुण्य पाप आदि हैं और क्रियाही आत्मसाधक है इस प्रकार इनका एकान्त अस्तित्व माननेसे ये–क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं, इनके १८० प्रकार मन्तव्य भेदसे होते हैं, जिसमे जीव आदि नवपदार्थ स्वपर दृष्टिसे नित्य व अनित्यरूपमें विचारे जाते हैं, काल स्वभाव आदि ५ विकल्पसे प्रत्येकका विचार करनेपर १८० होते हैं, जैसे—

१ जीव स्वतः कालसे नित्य है।
२ जीव स्वतः कालसे अनित्य है।
३ जीव परतः कालसे नित्य है।
४ जीव परतः कालसे अनित्य है।
५ जीव स्वयं चेतन स्वभावसे नित्य है।
६ जीव स्वतः होकर भी स्वभावसे अनित्य है।
७ जीव परतः होकर भी स्वभावसे नित्य है।
८ जीव परसे प्रकट होता और स्वभावसे अनित्य है।
९ जीव होनहारसे स्वयं हजारोंकी संख्यामें उत्पन्न होता है और नित्य रहता है।
१० होनहारकोही लेकर जीव परतः उत्पन्न होता व नित्य रहता है।
११ होनेवाला हुआ तो जीव स्वयं उत्पन्न होकर भी अनित्य रहता है।
१२ होनहारके कारणही जीव परतः उत्पन्न होकर अनित्य रहता है।

ईश्वरसे भी चार विकल्प।

१३ जीव ईश्वरसे अपनेही कारणोंसे उत्पन्न होकर नित्य रहता है।

१४ जीव अपने निमित्तसे ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी अनित्य होता है।

१५ जीव परकारणोंसे ईश्वरसे बनाया जाता और नित्य है।

१६ जीव ईश्वरसे परकारणोंको निमित्त लेकर बनाया जाता व अनित्य है।

आत्मा—

१७ जीव स्वयं आत्मरूपसे उत्पन्न होता और नित्य है।

१८ जीव आत्मरूपसे स्वयं पैदा होकर अनित्य रहता है।

१९ आत्मरूपसे जीव दूसरेसे उत्पन्न होता व नित्य है।

२० जीव दूसरेसे आत्मरूपमें उत्पन्न होता और अनित्य है।

जीवके साथ जैसे २० विकल्प हुए ऐसेही अजीव १ पुण्य २ पाप ३ आस्रव ४ संवर ५ निर्जरा ६ बन्ध ७ और मोक्ष ८ इन आठोंके २०–२० विकल्प होते हैं जो मिलानेसे सब १८० हो जाते हैं। ये क्रियावादीके १८० प्रकार हुए।

२ अक्रियावादी–क्रियावादीसे विपरीत–एकान्त जीव आदिका निषेध करनेवाले अक्रियावादी हैं, इनके ८४ भेद होते हैं, जैसे–पुण्यपाप आदिको छोड़कर जीव अजीव आदि सात पदार्थोंको लिखकर उनके नीचे स्व–पर ये दो भेद रखना, फिर काल, यदृच्छा, नियति स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन ६ को नीचे रखनेसे ८४ प्रकार हो जाते हैं, जैसे—

१ जीव स्वयंकालसे नहीं है।
२ जीव परतः कालसे नहीं है।
३ जीव स्वयं यदृच्छासे नहीं है।
४ जीव परतः यदृच्छासे नहीं है।
५ जीव नियतिसे स्वयं नहीं है।
६ जीव नियतिका आश्रयलेकर परसे नहीं है।
७ स्वभावसे जीव स्वयं नहीं है।
८ स्वभावसे जीव परतः नहीं है।
९ ईश्वरसे जीव स्वयं नहीं है।
१० ईश्वरसे जीव परतः नहीं है।
११ आत्मरूपसे जीव स्वयं नहीं है।
१२ जीव आत्मरूपसे परसे नहीं है।

जीवके साथ जिस प्रकार १२ विकल्प हुए इसी प्रकार अजीव आदि ६ पदार्थोंके साथ भी १२ १२ विकल्प होते हैं, सब मिलकर अक्रियावादीके ८४ प्रकार होते हैं।

३ अज्ञानवादी–अज्ञानसेही कार्यसिद्धि माननेवाले अज्ञानवादियोंके ६७ भेद हैं–जीव आदि नव पदार्थोंके विषयमें सत् असत् आदिसप्तभङ्गोंसे संशय करनेपर ६३ प्रकार होते हैं, जैसे—

१ जीव सत् है यह कौन जानता ? और यह जाननेसे क्या प्रयोजन ?

२ जीव असत् है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे क्या मतलब है ?

३ जीव सदसद्रूप है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे क्या लाभ है ?

४ जीव अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन ?

५ जीव सत् होकर अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

६ जीव असत अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

७ जीव सदसद् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? तथा इसके जाननेसे प्रयोजन भी क्या है ?

जिस प्रकार जीवके साथ सप्तभंग हुए उसी प्रकार अजीव आदि ८ तत्त्वोंके भी सात २ भङ्ग होते हैं, वे सब मिलकर अज्ञानवादिओंके ६३ भेद होते हैं, फिर–

१ पदार्थोंकी उत्पत्ति सती (वर्तमान) है यह कौन जानता ? वा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

२ पदार्थोंकी उत्पत्ति असती है इसे भी कौन जानता ? अथवा ऐसा जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

३ पदार्थोंकी उत्पत्ति सदसती है यह भी कौन जानता ? तथा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

४ पदार्थोंकी उत्पति अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? व इसके जाननेसे भी क्या प्रयोजन है ? ६३ के साथ इन चारको मिला देनेसे अज्ञानवादीके ६७ भेद हो जाते हैं।

३ विनयवादी–विनयसे परलोककी सिद्धि माननेवाले वैनयिकवादीके ३२ भेद हैं, १ देव २ राजा ३ यति ४ ज्ञाति ५ वृद्ध ६ अधम ७ माता और ८ पिता, इन आठोंमें प्रत्येकके साथ मन वचन काय और दानसे चार प्रकारका विनय किया जाता है, आठोंके चार २ भेद मिलानेसे सब विनयवादीके ३२ प्रकार हो जाते हैं।

क्रियावादीके १८०, अक्रियावादीके ८४, अज्ञानवादीके ६७ और विनयवादीके ३२, इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ एकान्तवादिओंके प्रकार होते हैं। एकान्तवादी होनेसे ये मिथ्यादृष्टि कहाते हैं, इन्हीं बातोंको सम्यग्दृष्टि नयदृष्टिसे अनेकान्तरूपमें मानते हैं। विशेष ज्ञानके लिए सूत्रकृताङ्गका द्वादश समवसरण अध्ययन देखे।

(१७) सीलव्वयगुण–वेरमण पच्चक्खाण पो० (पृ १३० सू १)

शीलव्रत–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसन्तोष व इच्छापरिमाण,

इन पांच अणुव्रतोंको शीलव्रत कहते हैं।

गुणव्रत-दिग्व्रत भोगोपभोग-परिमाण और अनर्थदण्डविरमणव्रत ये तीन गुणव्रत होते हैं।

वेरमण-विरमण-क्रोध, मान लोभ आदि सदोष (दुष्ट) कार्योंसे निवृत्ति करनेरूपसावद्ययोगविरमण-सामायिक व्रत आदि विरमण कहाते हैं।

पच्चक्खाण-नमोकारसी व पोरसी आदि व्रत प्रत्याख्यान कहाते हैं।

पोसहोववास-पौषध यानें अष्टमी आदि पर्वदिनोंमें आहार, शरीर सत्कार-वेशभूषा स्नान आदि तथा धन्धा व्यापार आदिका त्याग करना इसको पौषधोपवास कहते हैं।

(१८) पडिमा (सू ११० पृ ५१)—अभिग्रहविशेषको या कायोत्सर्गको प्रतिमा कहते हैं। अभिग्रहरूप उपासकोंकी ११ प्रतिमायें हैं, जैसे—

१ दर्शन-प्रतिमा-इसमें विशेष सम्यक्त्वकी आराधना की जाती है।

२ व्रतप्रतिमा-इसमें उपासकोंके १२ व्रतोंकी विशेष आराधना की जाती है।

३ सामायिक-प्रतिमा-इसमें दोनों सन्ध्या सामायिक की जाती है।

४ पौषधप्रतिमा-इसमें पर्वतिथिमें उपवास किया जाता है।

५ प्रतिज्ञा-पांच प्रतिज्ञाओंके साथ एक रात्रिको कायोत्सर्ग करना।

६ अब्रह्मत्याग-प्रतिमा-पूर्ण ब्रह्मचर्य व रात्रिभोजनका त्याग करना।

७ सचित्तत्याग-प्रतिमा-इसमें सजीव-सचित्त वनस्पति व कच्चा पानी आदि आहारका त्याग करना।

८ आरम्भत्याग-प्रतिमा-स्वयं आरम्भ करनेका त्याग करना।

९ प्रेष्यारम्भत्याग-प्रतिमा-सेवक आदिसेभी आरम्भ नहीं कराना।

१० उद्दिष्टत्याग-प्रतिमा-अपने लिये आरम्भपूर्वक की हुई वस्तुको भी नहीं लेना।

११ श्रमणभूत-प्रतिमा-साधुकी तरह विशेष नियमसे रहना। (विशेष समझनेके लिये देखिए—उपाध्यायजी महाराज सम्पादित दशाश्रुतस्कन्धका ६ ठा अध्ययन, अथवा उपासकदशाङ्गके प्रथमाध्ययनकी टीका)

(१९) उद्देसणकाल और समुद्देसणकाल (सू० ४९ से ५६)—

किसी भी शास्त्रका शिक्षण लेना हो तो गुरुकी आज्ञा प्राप्त करके लेना ऐसा शास्त्रीय नियम है। इसके अनुसार जब कोई शिष्य गुरुसे पूछता है कि महाराज! मैं कौनसा सूत्र पढ़ूं? तब आचाराङ्ग अथवा 'सूत्रकृताङ्ग' पढ़ ऐसी गुरुकी सामान्य आज्ञाको उद्देश कहते हैं, तथा आचाराङ्गके प्रथम श्रुतस्कन्धके प्रथम अध्ययनको पढ़ इस प्रकारकी विशेष आज्ञाको समुद्देश कहते हैं। पूर्वसमयमें गुरुजन अपने शिष्योंको कण्ठाग्र ही शास्त्रकी वाचनादि देते थे। इसलिये अध्ययन आदि विभागके अनुसार उन्होंने नियत दिनोंमें

सूत्रार्थ-प्रदानकी व्यवस्था निर्माण की, जिसको उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल कहते हैं।

मौखिक शिक्षणकी समाप्तिके लगभगही यह प्रथा बंद हो गई हो ऐसा प्रतीत होता है, अतएव भगवती तथा उपाङ्गशास्त्रोंके उद्देशनकालका उल्लेख नहीं मिलता।

अङ्ग, श्रुतस्कन्ध, अध्ययन और उद्देशकका एकही उद्देशनकाल है, आचाराङ्गके ८५ उद्देशनकाल हैं। जो इस प्रकार कहे गए हैं—१ शास्त्रपरिज्ञा अध्ययनके ७ उद्देशन, २ लोकविजयके ६ उद्देशनकाल, ३ शीतोष्णीयके ४ उद्देशनकाल, ४ सम्यक्त्व अध्ययनके ४ उद्देशनकाल, ५ लोकसार अध्ययनके ६ उद्देशनकाल, ६ श्रुत अध्ययनके ५ उद्देशनकाल, ७ विमोह अध्ययनके ८ उद्देशनकाल, ८ महापरिज्ञा अध्ययनके ७ उद्देशनकाल, ९ उपधानश्रुत अध्ययनके ४ उद्देशनकाल, १० पिण्डैषणा अध्ययनके ११ उद्देशनकाल, ११ शय्या अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, १२ ईर्या अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, १३ भाषाजात अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १४ वस्त्रैषणा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १५ पात्रैषणा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १६ अवग्रह प्रतिमा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १७-२३ इन सात अध्ययनोंके ७ उद्देशनकाल, २४ भावना अध्ययनका १ उद्देशनकाल, और २५ विमुक्ति अध्ययनका १ उद्देशनकाल, इस प्रकार सब मिलकर ८५ उद्देशन काल होते हैं, ऐसेही समुद्देशनकाल भी समझे।

सूत्रकृताङ्गके ३३ उद्देशनकाल होते हैं–" जैसे प्रथम अध्ययनमे ४ उद्देशनकाल, २ य अध्ययनमें ३ उद्देशनकाल, तीसरे अध्ययनमे ४ उद्देशनकाल, चतुर्थ अध्ययनमे २ उद्देशनकाल, पञ्चम अध्ययनमें २ उद्देशनकाल, और शेष ११ अध्ययनोंमें प्रत्येकका एक एक उद्देशनकाल, इस प्रकार प्रथम श्रुत स्कन्धके २६ उद्देशन काल होते हैं। द्वितीय श्रुतस्कन्धके ७ अध्ययनोंके ७ उद्देशनकाल हैं, इसप्रकार कुल मिलाकर ३३ उद्देशनकाल होते हैं।

स्थानाङ्गके २१ उद्देशनकाल होते हैं, वे इस प्रकार हैं—दूसरे, तीसरे व चौथे अध्ययनके ४-४ उद्देशनकाल हैं, पञ्चम अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, बाकी ६ अध्ययनोंमें प्रत्येकका एक एक उद्देशनकाल, इस प्रकार सब २१ एकवीस उद्देशनकाल होते हैं। ४ समवायाङ्गका एकही उद्देशनकाल कहा गया है। ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवतीके उद्देशनकालका निर्देश मूलमें नहीं किया है।

६ ज्ञाताधर्मकथाके २९ एकोनतीस उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल होते हैं जैसे प्रथमश्रुत स्कन्धके १९ अध्ययनोंमें १९ उद्देशनकाल और दूसरे श्रुतस्कन्धके १० अध्ययनोंमें १० उद्देशनकाल, ऐसे २९ उनतीस उद्देशनकाल हो जाते हैं।

७-८ उपासकदशाङ्ग और अन्तकृद्दशाङ्गके अध्ययन व वर्गके अनुसारही क्रमशः १० और ८ उद्देशनकाल होते है।

९ अनुत्तरौपपातिकके भी १ उद्देशनकाल और १ समुद्देशनकाल हैं।

१० प्रश्नव्याकरणके ४५ उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल कहे गए हैं। किन्तु समवायाङ्गके वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि १० वें अङ्गपरिचयकी वृत्तिमें लिखते हैं कि जो भी अध्ययन १० होनेसे उद्देशनकाल भी दशही होते हैं, फिर भी वाचनान्तरकी अपेक्षासे ४५ संख्याका सम्भव होता है।

११ विपाकश्रुतके-दोनों श्रुतस्कन्धके २० उद्देशनकाल और २० समुद्देशन काल हैं।

(१०) परिकम्म (पृ. १४१ सू. ५६)-परिकर्म—योग्यता उत्पन्न करना, जैसे-गणितशास्त्रमें सङ्कलन आदि सोलह परिकर्मोंको समझनेवाला बाकीके गणितशास्त्रको ग्रहण करनेयोग्य होता है, वैसे विवक्षित परिकर्मसूत्रके अर्थको ग्रहण किया हुवा मनुष्य दृष्टिवादके अन्यश्रुतको ग्रहण करनेयोग्य होता है अन्यथा नहीं। इसीलिये परिकम्म(कर्म)को दृष्टिवादके प्रथम प्रकारमें कहा है।

(११) आसीविय (पृष्ठ ११०)-यहां आजीविय शब्दसे गोशालकका आजीविकमत लिया जाता है। वीरनिर्वाणसे १६ वर्ष पूर्व मंखलिपुत्र गोशालकने महावीरसे अलग होकर इस मतकी स्थापना की थी।

भगवान् महावीरका द्वितीय चातुर्मास जब राजगृहीके नालन्दापाडेमें था, उसी समय गोशालकने उनको गुरुतरीके स्वीकार किये और ६ वर्षतक प्रणीत भूमिमें उनके साथ रहा। किसी समय सिद्धार्थग्रामसे कूर्मग्राम जाते हुए उसने महावीरसे तिलके वृक्षके फलके बाबत प्रश्न किया उसपर प्रभुने उत्तर दिया कि—यह तिलका वृक्ष फलेगा और इन ७ फूलोंके जीव मरके तिलके सात जीवरूपसे उत्पन्न होंगे। गोशालकने प्रभुकी बात झूठी करनेके लिये धीरेसे पीछे आकर उस झाडको उखेड फेंका। फिर भी कुछ समयके बाद यह झाड दिव्य वृष्टि आदि संयोगसे रुप गया जब पीछे आते हुए गोशालकने उस तिलके झाडको फला हुवा देखा तब महावीरकी सत्यताके साथ उसको यह निश्चय हुवा कि सब जीव निश्चयसे प्रवृत्त-परिहारी हैं, मनुष्य कितना भी प्रयत्न करे किन्तु आखिर वही होता है जो नियत-होना-होता है। इसप्रकार परिवर्तवाद तथा नियतिवादको लेकर वह श्रीमहावीरसे अलग हुवा। और लाभ, अलाभ, सुख दुःख जीवन और मरण इन छ बातोंकी जनतामें प्ररूपणा करने लगा। अष्टाङ्गनिमित्त दिखाकर जीविका चलानेसे इसको आजीविक कहते हैं, आजीविक सम्प्रदायकी मुख्य मान्यतायें निम्न प्रकार हैं—सभी जीव सचित्ताहारी हैं इसलिये वे हनन छेदन लुम्पन, विलुम्पन, व उपद्रव बिनाही इन क्रियाओंको करके आहार करते हैं। आजी विकोपासकोंके अरिहन्त (गोशालक) देव हैं। धर्म-माता-पिताकी भक्ति करना, और उम्बरके फल बटके फल व बोर, सतरके फल, व पिम्पलके फल इन ५ फलोंका वर्जन करना, पर्व-कान्दा (प्याज), लसुण तथा कन्दमूलको

नहीं खाना तथा विना खसी किये व विना नाक वींधे हुए बैलोंसे त्रस जीवोंकी जिसमें हिंसा न हो ऐसे व्यापारके द्वारा आजीविका चलाना धर्म है इत्यादि। विशेष जाननेके लिये देखें--भगवतीसूत्र श० १५ तथा श० ८ उ० ५।

(२२) तेरासिय (पृ ११०)

[अ] टीकाकारने आजीविक सम्प्रदायकोही तेरासिय-त्रैराशिक माना है, रोहगुप्तसे प्रचलित 'त्रैराशिक' सम्प्रादायका इन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

[ब] वीर निर्वाण ५४४ मे रोहगुप्तसे त्रैराशिक मतकी स्थापना हुई। उसने अंतरंजिका नगरीमें 'पोट्टशाल' नामक एक परिव्राजकके साथ विवाद किया, जिस समय परिव्राजकने जीव और अजीव इस प्रकार संसारमें दोही राशि हैं ऐसा पूर्वपक्ष रक्खा। उस समय श्रीगुप्तके शिष्य रोहगुप्तने कहा-नहीं, तीन राशि हैं, जैसे-जीव, अजीव, नोजीव ३, शुभ, अशुभ, शुभाशुभ ३ आदि। परिव्राजकको वाग्बल और विद्याबलसे जीतकर रोहगुप्त जब गुरुके पास आया और गुरुको सब हाल कह सुनाया तब गुरु बोले कि रोहगुप्त तुमने तीन राशिकी स्थापना की यह शास्त्रविरुद्ध है, अतः इसका सभामें जाकर पीछा स्पष्टीकरण करो। रोहगुप्तने इसको नहीं सुना। गुरुजीने ६ मासतक राजाके समक्ष शास्त्रार्थ करके आखिर रोहगुप्तको पराजित किया। उसने भी अपना हठ न छोडकर 'त्रैराशिक' मतकी स्थापना की। विशेषावश्यकमें इसको 'षडलूक' और 'वैशेषिक' दर्शनके नामसे भी कहा है। यह द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ऐसे ६ पदार्थोको मानता है-देखें-विशेषावश्यक भाष्य या आवश्यककी बृहद्वृत्ति।

---

१ आजीवियोवासगा अरिहत देवतागा, अम्मा-पिऊ सुस्सूसगा, पच फलपडिक्कंता, तंजहा-उंबरेहिं, वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खुहिं, पलडु-ल्हसुणकन्दमूलविवज्जगा, अणिल्लछिएहिं अणक्कभिन्नेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं वित्तेहिं वित्तिं कप्पेमाणा विहरति भग० श० ८ उ० ५ सू० १०।

द्वितीयं परिशिष्टम् ।

समवायाङ्गस्थो द्वादशाङ्ग्याः परिचय ।



नं सू ४६—से किं तं आयारे ? आयारे णं आयारगोयरविणयवेणइयट्ठाणगमणचंकमणपमाणजोगजुंजणभासासमितिगुत्तीसेज्जोवहिभत्तपाणउग्गमउप्पायणएसणाविसोहिसुद्धासुद्धग्गहणवयणियमतवोवहाणसुप्पसत्थमाहिज्जइ, से समासओ (जाव) निरियायारे, आयारस्स णं (जाव) संखेज्जा अणु संखेज्जाओ पडि संखेज्जा वेढा संखेज्जा सि संखेज्जाओ नि (जाव) अट्ठारस पयसहस्साइं (जाव) सासया कडा णिबद्धा णिकाइया (जाव) पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से त्तं आयारे ॥ सूत्र १३६ ॥

नं सू ४७—से किं तं सूयगडे ? सूयगडे णं ससमया सूइज्जंति (जाव) जीवाजीवा सूइज्जंति लोगे सूइज्जति (जाव) लोगालोगे सूइज्जंति, सूयगडे णं जीवाजीवपुण्णपावासवसंवरनिज्जरणबंधमोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति, समणाणं अचिरकालपव्वइयाणं कुसमयमोहमोहमइमोहियाणं संदेहजायसहजबुद्धिपरिणामसंसइयाणं पावकरमलिणमइगुणविसोहणत्थं असीअस्स किरियावाइयसयस्स (जाव) तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जंति णाणादिट्ठंतवयणनिस्सारं सुट्ठु दरिसयंता विविहवित्थराणुगमपरमसब्भावगुणविसिट्ठा मोक्खपहोयारगा उदारा अण्णाणतमंधकारदुग्गेसु दीवभूया सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभनिप्पकंपा सुत्तत्था, सूयगडस्स णं परित्ता (जाव) पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता (जाव) एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, से त्तं सूयगडे ॥ सूत्र १३७ ॥

नं सू ४८—से किं तं ठाणे ? ठाणे णं ससमया ठाविज्जंति (जाव) लोयालोगा ठाविज्जंति ठाणे णं दव्वगुणखेत्तकालपज्जवपयत्थाणं—

सेला सलिला य समुद्दा सूरभवण विमाण आगर णदीओ ।
णिहिओ पुरिसज्जाया सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥ १ ॥

एक्कविहवत्तव्वयं दुविह जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जंति ठाणस्स णं परित्ता वायणा (जाव) संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा एक्कवीसं उद्देसणकाला बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं (जाव) से त्तं ठाणे ॥ सूत्र १३८ ॥

न० सू० ४९–से किं तं समवाए ? समवाए ण ससमया (जाव) लोगालोगा सूइज्जति, समवाएण एकाइयाण **एगट्ठाणं** एगुत्तारियपरिवुड्ढीए दुवालसगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ ठाणगसयस्स **बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे** आहिज्जाति, **तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण अवरे वि अ बहुविहा विसेसा नरगतिरियमणुअसुरगणाणं आहारुस्सासलेसा-आवाससंखआययप्पमाणउववायचवणउग्गहणोवहिवेयणविहाण–उवओगजोगइंदियकसायाविविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेह-परिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगरतित्थ-गरगणहराणं सम्मत्तभरहाहिवाण चक्कीणं चेव चक्कहरहलहराण य वासाण य निगमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति,** समवायस्स ण परित्ता वायणा जाव से णं अगट्ठयाए चउत्थे अगे एगे अज्झयणे एगे सुयक्खधे एगे उद्देसणकाले एगे चउयाले पदसहस्से पदग्गेण प० सखेज्जाणि अक्खराणि जाव चरणकरणपरूवणया आघविज्जति, से त्त समवाए ॥ सूत्र १३९ ॥

न० सू० ५०–से किं तं वियाहे ? वियाहे ण ससमया (जाव) जीवाजीवा विआहिज्जति (जाव) लोगालोगे विआहिज्जति, **वियाहे णं नाणाविहसुरनरिंदरायरि-सिविविहसंसइअपुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं दव्व–गुणखेत्तकालपज्जवपदेसपरिणामजहच्छिट्ठियभावअणुगमनिक्खेव–णयप्पमाणसुनिउणोवक्कमविविहप्पकारपगडपयासियाणं लोगा-लोगपयासियाणं संसारसमुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाणं सुरवइसंपूजि-याणं भवियजणपयहिययाभिनंदियाणं तमरयविद्धंसणाणं सुदिट्ठदी-वभूयईहामतिबुद्धिवद्धणाणं छत्तीससहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ सुयत्थबहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था,** वियाहस्स ण परित्ता वायणा (जाव) निज्जुत्तीओ, से ण अगट्ठयाए पंचमे अगे एगे सुयक्खधे एगे साइरेगे अज्झयणसते दस उद्देसगसहस्साइ दस समु-द्देसगसहस्साइं छत्तीस वागरणसहस्साइं **चउरासीई** पयसहस्साइ पयग्गेण पण्णत्ता (जाव) से त्तं वियाहे ॥ सूत्र १४० ॥

न० सू० ५१–से किं त णायाधम्मकहाओ ? णायाधम्मकहासु ण (जाव) अतकिरियाओ २२ य आघविज्जंति **जाव नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणयकरणजिण-सामिसासणवरे संजमपइण्णपालणधिइमइववसायदुब्बलाणं १ तव-नियमतवोवहाणरणदुद्धरभरभग्गयणिस्सहयणिसिट्ठाणं २ घोरपरि-सहपराजियाणं सहपारद्धरुद्धसिद्धालयमग्गनिग्गयाणं ३ विसय-सुहतुच्छआसावसदोसमुच्छियाणं ४ विराहियचरित्तनाणदंसणजइ-गुणविविहप्पयारनिस्सारसुन्नायणं ५ संसारअपारदुक्खदुग्गइभव-विविहपरंपरापवंचा ६ धीराण य जियपरिसहकसायसेण्णधिइध-**

थियसंजमउच्छाहनिच्छियाणं ७ आराहियनाणदंसणचरित्तजोग निस्सल्लसुद्धसिद्धालयमग्गमभिमुहाणं सुरभवणविमाणसुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि ततो य कालक्कमचुयाण जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया चलियाण य सदेवमाणुस्सधीरकरणकारणाणि बोधणअणुसास णाणि गुणदोसदरिसणाणि दिट्ठंते पच्चये य सोऊण लोगमुणिणो जहट्ठियसासणम्मि जरमरणनासणकरे आराहिअसंजमा य सुर लोगपडिनियत्ता ओवेन्ति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य, णायाधम्मकहासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे दो सुयक्खंधा एगूणवीसं अज्झयणा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता तं जहा—चरित्ता य कप्पिया य, दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए (जाव) अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खायाओ, एगूणतीसं उद्देसणकाला एगूणतीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता (जाव) से त्तं णायाधम्मकहाओ ॥ सूत्र १४१ ॥

नं सू ५२—से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं उवासयाणं (जाव) इड्ढिविसेसा उवासयाणं सीलव्वयवेरमणगुणपच्चक्खाणपोसहोववास पडिवज्जणयाओ (जाव) आघविज्जंति उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभ अभिगम सम्मत्त विसुद्धया थिरत्तं मूलगुणउत्तरगुणाइयारा ठिइविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहणपालणा उवसग्गाहियासणा णिरुव सग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहो ववासा अपच्छिममारणंतिया य संलेहणाझोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेअइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवंति सुरवरविमाणवरपोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भुत्तूण उत्तमाइं तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तमरयोघ विप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य, उवासगदसासु णं परित्ता वायणा (जाव) एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति से त्तं उवासगदसाओ ॥ सूत्र १४२ ॥

नं सू ५३—से किं तं अंतगडदसाओ ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं (जाव) पडिमाओ बहुविहाओ खमा अज्जवं मद्दवं च सोयं च सच्चसहियं सत्तरसविहो य संजमा उत्तमे च बंभे आकिंचणया तवो चियाओ समिइगुत्तीओ चेव तह अप्पमायजोगो सज्झायज्झाणेण य उत्त माणं दोण्हंपि लक्खणाइं पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं

चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुनिवरो तमरयोघविप्पमुक्को मोक्खसुहमणंतरं च पत्ता एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थारेणं परूवेई, अतगडदसासु ण परित्ता वायणा सखेज्जा अणुओगदारा जाव सखेज्जाओ संगहणीओ, जाव से ण अंगट्ठयाए अट्ठमे अगे एगे सुयक्खधे **दस अज्झयणा सत्त वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला** सखेज्जाइ पयसहस्साइ (जाव) से त्त अतगडदसाओ ॥ सूत्र १४३ ॥

न० सू० ५४–से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु ण अणुत्तरोववाइयाणं नगराइ उज्जाणाइ चेइयाइं वणखडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइ धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोगपरलोगइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइ **परियागो** पडिमाओ सलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खाणाइ पाओवगमणाइ अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाया पुणो बोहिलाभो अतकिरियाओ य आघविज्जति, अणुत्तरोववाइयदसासु ण **तित्थकरसमोसरणाइं परमंगल्लजगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं थिरजसाणं परिसहसेण्णरिउबलपमद्दणाणं तवदित्तचरित्तणाणसम्मत्तसारविविहप्पगारवित्थरपसत्थगुणसंजुयाणं अणगारमहरिसीणं अणगारगुणाण वण्णओ, उत्तमवरतवविसिट्ठणाणजोगजुत्ताणं जह य जगहियं भगवओ जारिसा इड्ढिविसेसा देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं जह य उवासंति जिणवरं जह य परिकहंति धम्मं लोगगुरू अमरनरसुरगणाणं सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाणदंसणचरित्तजोगा जिणवयणमणुगयमाहियं भासित्ता जिणवराण हिययेणमणुण्णेत्ता जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण,** अणुत्तरोववाइयदसासु ण (जाव) एगे सुयक्खधे दस अज्झयणा तिन्नि वग्गा **दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला** सखेज्जाइ पयसयसहस्साइ (जाव) से त्त अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ सूत्र १४४ ॥

नं० सू० ५५–से किं त पण्हावागरणाणि ? पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तर पसिणसय (जाव) **विज्जाइसया** नागसुवन्नेहिं सद्धिं दिव्वा सवाया आघविज्जंति, **पण्हावागरणदसासु णं ससमयपरसमयपण्णवयपत्तेअबुद्धाविविहत्थ-**

भासाभासियाणं अइसयगुणउवसमणाणप्पगारआयरियभासियाणं वित्थरेणं वीरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं अद्दागंगुट्ठबाहुअसिमणिखीरआइच्चभासियाणं विविहमहापसिणविज्जामणपसिणविज्जादेवयपयोगपहाणगुणप्पगासियाणं सब्भूयदुगुणप्पभावनरगणमइविम्हयकराणं अइसयमईयकालसमयदमसमतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगमदुरवगाहस्स सव्वसव्वन्नुसम्मयस्स अबुहजणविबोहणकरस्स पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति, पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा (जाव) एगे सुयक्खंधे पणयालीसं उद्देसणकाला पणयालीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाणि पयसहस्साणि (जाव) से त्तं पण्हावागरणाइं ॥ सूत्र १४५ ॥

न सू ५६—से किं तं विवागसुयं? विवागसुए णं (जाव) से समासओ दुविहे प तं०—दुहविवागे चेव सुहविवागे चेव (जाव) से किं तं दुहविवागाणि? दुहविवागेसु णं (जाव) धम्मकहाओ नगर(नरय)गमणाइं संसारपबंधे दुहपरंपराओ (जाव) से किं तं सुहविवागाणि? सुहविवागेसु सुहविवागाणं (जाव) दुहविवागेसु णं पाणाइवायअलियवयणचोरिक्ककरणपरदारमेहुणससंगयाए महतिव्वकसायइंदियप्पमायपावप्पओयअसुहज्झवसाणसंचियाणं कम्माणं पावगाणं पावअणुभागफलविवागा णिरयगतितिरिक्खजोणिबहुविहवसणसयपरंपरापबद्धाणं मणुयत्तेवि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा वहवसणविणासनासाकन्नुट्ठंगुट्ठकरचरणनहच्छेयणजिब्भच्छेयणअंजणकडग्गिदाहगयचलणमलणफालणउल्लंबणसूललयालउडलट्ठिभंजणतउसीसगतत्ततेल्लकलकलअहिसिंचणकुंभिपागकंपणथिरबंधणवेहवज्झकत्तणपतिभयकरकरपल्लीवणादिदारुणाणि दुक्खाणि अणोवमाणि बहुविविहपरंपराणुबद्धा ण मुच्चंति पावकम्मवल्लीए, अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो तवेण धितिधणियबद्धकच्छेण सोहणं तस्स वा वि हुज्जा, एत्तो य सुहविवागेसु णं सीलसंजमणियमगुणतवोवहाणेसु साहुसु सुविहिएसु अणुकंपासयप्पओगतिकालमइविसुद्धभत्तपाणाइं पययमणसा हियसुहनीसेसतिव्वपरिणामनिच्छियमई पयच्छिऊणं पयोगसुद्धाइं जह य निव्वत्तेंति उ बोहिलाभं जह य परित्तीकरेंति नरनरयतिरियसुरगमणविपुलपरियट्टअरतिभयविसायसोगमिच्छत्तसेलसंकडं अन्नाणतमंधकारचिक्खिल्लसुदुत्तारं जरमरणजोणिसंखुभियचक्कवालं सोलसकसायसावयपयंडचंडं अणाइयं अणवदग्गं संसारसागरमिणं जह य णिबंधंति आउगं सुरगणेसु जह य अणुभवंति सुरगणविमाणसोक्खाणि अणोवमाणि ततो य कालंतरे चुयाणं इहेव नरलोगमागयाणं आउवपुवण्णरूवजातिकुलजम्मआरोग्गबुद्धिमेहाविसेसा मित्तजणसयणधणधन्नविभवसमिद्धिसारसमुदयविसेसा बहुविहकामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुहविवागोत्तमेसु अणुवरयपरंपराणुबद्धा असुभाणं सुभाणं चेव कम्माणं भासिया बहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था अन्नेवि य एवमाइया बहु-

विहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जति, विवागसुअस्स णं परित्ता वायणा (जाव) एक्कारसमे अगे वीसं अज्झयणा (जाव) पयसयसहस्साइं पयग्गेणं प० (जाव) से त्त विवागसुए ॥ सूत्र १४६ ॥

न० सू० ५७—से किं त दिट्ठिवाए ? दिट्ठिवाए णं सव्व० से समासओ पचविहे प तं. (जाव) **ओगाहणसे० उवसंपज्जसे०** चुआचुअसे० से किं त सिद्धसे० ? २ सिद्ध-सेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे प०त. **माउयापयाणि** एगट्ठिय० **पादोट्ठ० आगास०** केउभूय रासिबद्ध (जाव) **सिन्द्धवन्द्धं**, से त्त सिद्ध० से किं त मणुस्ससेणिया० **ताइं चेव माउआपयाणि** (जाव) नदावत्तं **मणुस्सवन्द्धं**, से त्त मणुस्स० **अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पण्णत्ताइं**, इच्चेयाइ सत्तपरिकम्माइ ससमइयाइ **सत्तआजीवियाइं** छ चउक्कणइयाइ सत्ततेरा-सियाइ **एवामेव सपुव्वावरेणं सत्तपरिकम्माइं तेसीति भवंतीति मक्खायाइं**, से त्त परि० से किं त सुत्ताइ ? सुत्ताइ **अट्ठासीति भवंतीति मक्खायाइं**, तं ...से त्तं सुत्ताइ **४ विप्पच्चइयं** (विनय चरियं) **७ समाणं** १० **अहाच्चयं** ११ **सोवत्थि** (वत्त य) १ **पणाम** (इन भेदोंके सिवाय समवा-यांगमें शेष सूत्रके भेद नन्दीसूत्रवत् हैं) से किं त पुव्वगयं ? पुव्वगयं चउद्द-सविह पण्णत्त, तं २ अग्गेणीय, (शेष १३ पूर्वोके नाम नन्दीवत् हैं, पूर्वोंकी चूलिकाके अधिकारमें ' अग्गणीय पुव्वस्स णं ' आदिके स्थानपर समवायांगमें **अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स**, वीरियपवायस्स णं पुव्वस्स, ऐसे सर्वत्र दोनों पद स्वतंत्र षष्ठी विभक्त्यन्त मिलते हैं, बाकी पाठ समान हैं।) अनुयोगके वर्णनमें नन्दीसूत्रकी अपेक्षा समवायांगमें कुछ पाठ न्यूनाधिक है।

जैसेः—

नन्दी	**समवायांग**
मूल पढमाणुओगे ण	एत्थ ण
देवगमणाणि	देवलोगगमणाणि
रायवरसिरीओ	रायवरसिरीओ सीयाओ
तवा य उग्गा	तवा य भत्ता
केवलनाणुप्पयाओ	केवलनाणुप्पाया अ
तित्थपवत्तनाणि य सीसा	—पवत्तनाणिय सघयण संठाण उच्चत्तं आउ वन्नविभागो सीसा
अज्जपवत्तिणीओ	अज्जापवत्तणीओ
ज च परिमाणं	जं वा विपरि०
अणुत्तर गइय उत्तर वेउव्विणो य मुणिनो	अणुत्तरगई य
सिद्धा, सिद्धिपहो जहदेसिओ जच्चिर च कालं पाओ०	सिद्धा, पाओवगया

मसाई मणसप्पाए	मसाई
तिमिरओघविप्पमुक्के मुक्खसुहमणु	तमरओघविप्पमुक्का सिद्धिपहमणु
पत्ते एवमन्ने य	पत्ता, ए ए अन्ने य
कहिया, से तं—	कहिआ आघविज्जंति पण्ण. परू. से त्तं
गंडियाणुओगे ! २ कुलगर०	गंडियाणुओगे ! अणेगविहे पं., तं कुलगर०
चक्कवट्टिगंडियाओ	चक्कहरगंडियाओ
०निरयगइगमणविविहपरियट्टणेसु	०निरियगइगमणविविहपरियट्टणाणुओगे,
पण्णविज्जंति से तं—	पण्णविज्जंति परूविज्जंति से त्तं
से तं अणुओगे	०
—चूलियाओ २ आइ०	—चूलियाओ ! अण्णे आइ०
संखिज्जा अणुओगदारा संखिज्जा वेढा	संखिज्जा अणुओगदारा
संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं,	संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पं०
सम्मभावपरूवणा	सम्मभावपरूवणया
आघविज्जइ	आघविज्जंति
परिकम्मे	परिकम्मं
ओगाढसेणिया	ओगाहणसेणिया
उवसंपज्जणसेणिया	उवसंपज्जसेणिया
विप्पजहणसेणिया	विप्पजहसेणिया
छिन्नावत्ते	छिन्नावत्तं
माउयापयाइं	ताइं चेव माउयापयाणि
मणुस्सावत्ते	मणुस्सावत्तं
	अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पण्णत्ताइं
	एवामेव सपुव्वावरेणं सत्तपरिकम्माइं तेसीति भवंतीति मक्खायाइं
	अट्ठासीति भवंतीति मक्खायाइं
	विप्पजहणं
	समाणं
	महापयं
	सोवत्थि
	पणामं
	अग्गेणीयं
	अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स

(शेष पाठ दोनोंमें समान हैं)

तृतीय परिशिष्टम् ।

नन्दीसूत्रेणसह शास्त्रान्तरपाठानां साम्यम्



न सू गा ५१—सेलघणकुडग चालिणी (पूर्ण) बृहत्कल्पसूत्र पीठिकाभाष्य गा ३३४,

" " " " " आ. नि गा १३९

" " ५२—खीरमिव राय हसा जे घोट्टति उ गुणे गुण समिद्धा दोसेवि य छड्डुता बृ पी भा गा ३६६

" " ५३—जे होंति पगय मुद्धा मिगछावगसीह कुक्कुरग० रयणमिव. असठविया बृ पी. भा. गा ३६७

" " ५४—नय कत्थइ निम्मातो नय पुच्छइ परि दोसेण, वत्थीव० बृ पी. भा. गा ३७१

" सू १ (प्र) कातिविहे...गोयमा ! पचविहेणाणे प त—आभिणिबोहियणाणे सुय (पूर्ण) भग श ९ उ २ सू १७

" " " " " " राय सू. १६५

" " २ दुविहे नाणे पण्णत्ते त पच्चक्खे चेव परोक्खे चेव १, स्थानांग स्था. २ उ १ सू ७१

" " ३ पच्चक्खे दुविहे प त. इदिय पच्चक्खेअ णोइदिअपच्चक्खेअ अनु जीवगुण प्र सू १४४

" " ४ से किं त इदिअपच्चक्खे ? पचविहे प० त० सो इदियपच्चक्खे चक्खुरिंदिय प घाणिंदिअ

" " ५ जिब्भिदिय फासिंदिअ. से त इदिय । से किं त णो इदिय ? २ तिविहे प० त० (पूर्ण) अनु जी सू १४४

" " ६ ओहिणाणे दुविहे प० त०—भवपच्चइए चेव खओवसमिए चेव १३,

" " " " " स्थानां स्था २ उ १ सू ७१

" " " ओहिणाण भवपच्चइय खाओवसामिय, राय सू १६५

" " ७ दोण्ह भवपच्चइए प०त० देवाण चेव नेरइयाणं चेव १४, स्थानां स्था २ उ. १ सू ७१

" " " " " पन्नवणा ३३ वाँ पद

" " ८ दोण्ह खओवसमिए प०त०—मणुस्साण चेव पचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव १५ स्था स्था २ उ १ सू ७१

" " ९ रायपसेणइय सू. १६५, पन्नवणा पद ३३ वाँ स्था स्था ६ उ सू

" गा ५५—जावइया तिसमया—हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स आव नि गा ३०

" " ५६—सव्वबहु अगणिजीवा, निरतर जत्तिय भरिज्जसु । " " " ३१

" " ५७—अगुलमावलियाण, भागमसखिज्ज दोसु सखिज्जा । . " " " ३२

" " ५८—हत्थमि मुहुत्ततो, दिवसतो गाउयमि बोद्धव्वो ।... " " " ३३

नं. सू. गा. ५९—भरहंमि अद्धमासो, जंबुद्दीवंमि साहिओ मासो । ... आव. नि. गा. ३४

" ६० —संखिज्जंमि उ काले, दीवसमुद्दा वि हुंति संखिज्जा। " " " ३५

" " ६१—काले चउण्ह वुड्ढी कालो भइयव्वु खित्तवुड्ढीए । " " " ३६

" " ६२—सुहुमो य होइ कालो तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं । " " ३७

" १६—से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा—दव्वओ खित्तओ, कालओ, भावओ, । दव्वओ णं ओहिनाणी रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, जाव भावओ भ. श. ८ उ. २ सू. १४

" " " ६४—नेरइयदेवतित्थंकरा य... आ. नि. गा. ६६

" " " १८—मणपज्जवणाणे दुविहे प. तं.—उज्जुमति चेव विउलमति चेव १६, स्था. स्था. २ उ. १ सू. ७१

" " " " रायपसेणइय सू. १६५

" " " —से समासओ चउव्विहे प. तं.—दव्वओ खेत्तओ, कालओ, भावओ, । दव्वओ णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिए जाव भावओ । भग. श. ८ उ. २ सू. १५

" गा. ६५—मणपज्जवनाणं पुण जणमणपरिचिंतियत्थपागडणं ।.. आ. नि. गा. ७६

" " सू. १९—केवलणाणे दुविहे प. तं.—भवत्थ केवलणाणे चेव सिद्धकेवलणाणे चेव ३ भवत्थ केवलणाणे दुविहे प. तं.—सजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव अजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव ४ सजोगिभवत्थ केवलणाणे दुविहे प. तं. पढमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव अपढमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव ५ अहवा चरिमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव अचरिमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव ६ एवं अजोगिभवत्थ केवलणाणेऽवि ७ । स्था. स्था. २ उ. १ सू. ७१

" " २ —सिद्धकेवलणाणे दुविहे प. तं.—अणंतरसिद्ध केवलणाणे चेव परंपरसिद्ध केवलणाणे चेव ९ । स्था. स्था. २ उ. १ सू. ७१

" " २१—इत्थी पुरिससिद्धा य तहेव य नपुंसगा । सलिंगे अन्नलिंगे य गिहिलिंगे तहेव य. उ. सू. अ. ३६ गा. ५

" " २१—अणंतरसिद्ध असंसारसमावण्ण पण्णरसविहा प. तं. तित्थसिद्धा अतित्थसिद्धा (जाव) अणेगसिद्धा. पन्न. प. १ सू. ७

" " २२—से किं तं परंपरसिद्ध असंसार अणेगविहा प. तं. अपढमसमयसिद्धा (जाव) अणंतसमयसिद्धा, सेत्तं पन्न. प. १ सू. ८

" " " —से समासओ चउव्विहे प. तं.—दव्वओ खित्तओ कालओ, भावओ, । दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । एवं जाव भावओ. भग. श. ८ उ. २ सू. ११

नं. सू. गा. ६६–अह सव्वदव्वपरिमाण–भावविण्णत्तिकारणमणंतं। ...... आव. नि. गा. ७७

" " " ६७–केवलणाणेणत्थे णाउं, जे तत्थ पण्णवणजोगे। .. .. " " " ७८

" " सू. २४–परोक्खणाणे दुविहे प० तं० आभिणिबोहियणाणे चेव सुयनाणे चेव १७
स्था स्था २ उ. १ सू. ७१

" " " २६–आभिणिबोहियणाणे दुविहे प० तं०–सुयनिस्सिए चेव असुयनिस्सिए चेव १८
स्था स्था २ उ १ सू ७१

" " गा. ६८–उप्पत्तिया वेणइया, कम्मिया परिणामिया। ... ..आ नि. म गा ९३८

" " " ६९ से ८१ तक–पुव्वमदिट्ठ–इत्यादि ६९ गाथासे ८१ गाथातक, आ नि म गा.
९३८ से ९५१

" " सू. २७–आभिणिबोहियणाणे चउव्विहे प०त०–उग्गहो, ईहा अवाओ, धारणा,
भग श ८ उ २ सू १८

" " " २८–से किं तं उग्गहे? उग्गहे दुविहे पन्नत्ते तं०–अत्थुग्गहे य,–" " " " २१

" " " २९ से ३४–एवं जहेव आभिणिबोहियनाणं तहेव, नवर एगाट्ठियवज्ज जाव नोइंदि-
यधारणा सेत्त धारणा म श ८ उ. २ सू २१

" " " ३७–से समासओ चउव्विहे प तं दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ
णं आभिणिबोहियनाणी आएसेण सव्वदव्वाइ जाणइ पासति खेत्तओणं आभि-
णिबोहियनाणी... म श. ८ उ २ सू १०२

" " गा ८२–उग्गह ईहाऽवाओय धारणा एव हुंति चत्तारि,...... . ... आ. नि गा २

" " " ८३–अत्थाणं ओगहणम्मि, उग्गहो तह वियारणे ईहा ....," " " ३

" " " ८४–उग्गह इक्क समयं ईहावाया मुहुत्त मद्धंतु। काल...... ...., " " " ४

" " " ८५–पुट्ठ सुणेइ सद्द रूव पुण पासई अपुट्ठतु। गंधं रस..... .., " " " ५

" " " ८६–भासासमसेढीओ सद्दं. ज सुणइ मीसय सुणई ... . " " " ६

" " " ८७–ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा। सण्णा .. .., " " " १२

" " " ८८–ऊससिय ... णीसिंधिय मणुसार ... . " " " २०

" " सू ४१–जं इमं अरिहंतेहिं भगवतेहिं......दिट्ठिवाओ अ, (लोकोत्तर भावश्रुत)
अनु सू ४२

" " " " " " " " (लोकोत्तर आगम) " ज्ञानप्रमाण

" " " ४२–जं इमं अण्णाणिएहिं, ...चत्तारि वेआ संगोवगा, (लौकिक भावश्रुत)
अनु सू ४१

" " " " " " " " (लौकिक आगम) ज्ञानप्रमाण.

" " " ४४–

" " " ४४–सुयनाणे दुविहे प त –अंगपविट्ठे चेव अंग बाहिरे चेव २१ स्था स्था सू ७१

" " " "–अंगबाहिरे दुविहे प त –आवस्सए चेव आवस्सयवइरित्ते चेव २२
स्था स्था २ सू ७१.

नं सू. पा. ४४—आवस्सयवतिरित्ते दुविहे पं तं.—कालियं चेव उक्कालियं चेव २१
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ठा. ठा. २ सु ७१
,, ,, ,, ४५—दुवालसंगे गणिपिडगे पं तं—आयारे ... दिट्ठिवाए सम. सु १३६
,, ,, ४६—से किं तं आयारे ? ,, ,, ,,
,, ,, ,, ४७—से किं तं सूयगडे ? ,, ,, १३७
,, ,, ,, ४८—से किं तं ठाणे ? ,, ,, १३८
,, ,, ४९—से किं तं समवाए ? सम सु १३९
,, ,, ,, ५ —से किं तं वियाहे ? ,, ,, १४०
,, ,, ५१—से किं तं णायाधम्मकहाओ ? ,, ,, १४१
,, ,, ,, ५२—से किं तं उवासगदसाओ ? ,, ,, १४२
,, ,, ,, ५३—से किं तं अंतगडदसाओ ? ,, ,, १४३
,, ,, ,, ५४—से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? ,, ,, १४४
,, ,, ,, ५५—से किं तं पण्हावागरणाणि ? .. .. ,, ,, १४५
,, ,, ,, ५६—से किं तं विवागसुयं ? ,, ,, १४६
,, ,, ,, ५७—से किं तं दिट्ठिवाए ? ,, ,, १४८
,, ५ —इच्चेयं दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा .. ,, ,, १४८
,, ,, ,, ५८—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले .. ,, ,, १४८
,, ,, ५९—से समासओ चउव्विहे पन्नत्ते तं. दव्वओ... । दव्वओणं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणति पासति एवं खेत्तओवि कालओवि भावओवि .. ..
भ. श. ८ उ २ सु ११
,, ,, ,, ६१—अक्खरसण्णी सम्मं, साईयं खलु सपज्जवसियं च । .. भग श २५ उ ३
सूत्र ६३ आ. नि गा. १९
,, ६४—आगम सत्थग्गहणं जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं बेंति भग. श. २५ उ ३
सूत्र ६३
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, आ. नि. गा. २१
,, ,, ,, ६५—सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गिण्हइ य ईहए यावि । भग. श. २५ उ ३
सूत्र ६३
,, ,, ,, ,, ,, ,, आ. नि गा. २२
,, ६६—मूअं हुंकारं वा बाढक्कार पडिपुच्छ वीमंसा । .. .. भग श २५ उ ३
सूत्र ६३
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, आ नि गा. २३
,, ,, ६७—सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ .. भग श २५ उ ३ सू ६३
एस विही भणिओ अणुओगे...... आ. नि गा. २४

चतुर्थं परिशिष्टम् ।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायोंकी दृष्टिसे ज्ञानकी प्ररूपणा ।

१ श्वेताम्बर दृष्टिमें पांच ज्ञानमें प्राथमिक तीन ज्ञान मिथ्यादृष्टिके लिये मिथ्यारूप होते हैं, अतः पांच ज्ञान और तीन अज्ञान माने गये हैं। लेकिन् दिगम्बर इन आठ भेदोंके अलावा मिश्रप्रकृतिके उदयसे होनेवाला एक मिश्रज्ञान मानते हैं, देखें-गोम्मटसार, जीव० गा. ३०१।

२ श्वेताम्बर मतिज्ञानके मूल २८ भेद मानते हैं। प्रथम कर्मग्रन्थमें ३४० भेद भी मतिज्ञानके मिलते हैं, लेकिन् दिगम्बर मूल २८ भेदोंकेही बहु, अल्प, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निसृत, अनिसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, और अध्रुव, इन बारह विषयोंके भेदसे गुणन करनेपर ३३६ भेद मानते हैं, देखें-गोम्मटसार गा० ३०९। अश्रुतानिश्रितके चार भेद गोम्मटसारसे नहीं मिलते हैं।

३ सैद्धान्तिक मतसे श्रुतज्ञानके अक्षर, अनक्षर-श्रुत आदि १४ भेद हैं, और कर्मग्रन्थके मतसे पर्यवश्रुत, अक्षरश्रुत आदि २० भेद भी होते हैं, संक्षेपसे अक्षरात्मक श्रुत अङ्गप्रविष्ट और अनङ्गप्रविष्ट (अङ्गबाह्य) ऐसे दो प्रकारका है। अङ्गबाह्यमें दशवैकालिक आदि उत्कालिक और उत्तराध्ययन आदि कालिक शास्त्रोंका समावेश होता है। अङ्गप्रविष्ट आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग आदि बारह प्रकारका हैं। श्वेताम्बरदृष्टिसे उपलब्ध शास्त्रोंमें अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य सब मिलकर ३२ या ४५ आगम पूर्ण प्रामाणिक माने गये हैं। गुरुशिष्यपरम्परासे ये शास्त्र मूल परम्पराको नहीं छोडकर अविच्छिन्न चले आरहे हैं। वाचनाओंके समय भी मूल भावके संरक्षणका पूर्ण ध्यान रक्खा गया है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायकी तरह दिगम्बर भी श्रुतके अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट ऐसे दो प्रकार मानते हैं। अङ्गबाह्यमें उनकी दृष्टिसे १४ प्रकीर्णक संमिलित हैं, जो इसप्रकार हैं—१ सामायिक, २ संस्तव, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ विनय, ६ कृतिकर्म, ७ दशवैकालिक, ८ उत्तराध्ययन, ९ कल्पव्यवहार, १० कल्पाकल्प, ११ महाकल्प, १२ पुण्डरीक, १३ महापुण्डरीक और १४ निषीधिका। अङ्गप्रविष्ट आचार, सूत्रकृत आदि बारह भेदयुक्त हैं। द्रव्यसङ्ग्रहमें प्रत्येकके पीछे 'अङ्ग' शब्द जोडकर आचाराङ्ग आदि नाम लिखे है, छट्ठे अङ्गको ज्ञातृधर्मकथा और नामधर्मकथा भी लिखा है, शेप सब समान है। दिगम्बर उपरोक्त अङ्ग एवं अङ्गबाह्यादि श्रुत दुर्भिक्ष आदि कारणसे विच्छिन्नप्राय

मानते हैं, अतएव वर्तमानमें उपलब्ध आचाराङ्गादि शास्त्र उनकी दृष्टिसे प्रामाणिक नहीं हैं।

४ श्रुतके इन १० भेदोंमें एक पद-श्रुत भी आता है। पदका परिमाण श्वेताम्बर सम्प्रदायमें निश्चितरूपसे नहीं मिलता। कहीं कहीं ५१०८८९ (८४० श्लोकोंका) प्रायः पदपरिमाण लिखा है। द्वादशाङ्गीका पदमान उपरोक्त पदसे करना या अर्थबोधक पदसे इसमें भी मतभेद है। टीकाकारने 'सूत्रालापक-पदान्येव संख्यातान्येव पदसहस्राणि भवन्ति' इन शब्दोंमें सूत्रालापकरूप पदको भी माना है। पदप्रतिपत्ति, अनुयोग, अक्षर, पर्याय, प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत वस्तु और पूर्व, इनका नन्दीसूत्रमें अङ्गोंके अवयवरूपसे कहा है, उ० देखें—आचाराङ्ग व दृष्टिवादका परिचय-सूत्र।

गोम्मटसारमें पदपरिमाणका स्पष्ट उल्लेख है, वहाँ १६३४ क्रोड, ८३ लक्ष ७ हजार, ८८८ अक्षरोंका एक पद माना है। इसीसे द्वादशाङ्गका पदपरिमाण माना गया है। इसके सिवाय पदके अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद ऐसे तीन भेद हैं। उपरोक्त मान्यतामें २००० श्लोक करीबका परस्पर दोनों सम्प्रदायोंमें फर्क पड़ता है।

अङ्गोंकी पदगणना

श्वेताम्बर		दिगाम्बर	
१	१८	१	१८०
२	३६	२	३६०
३	७२ ०	३	४२० ०
४	१७४ ०	४	१६४
५	२२८	५	२२८
६	५७६	६	५५६
७	११५२	७	११७ ०
८	२३४ ०	८	२३२८ ०
९	४६८ ०	९	९४४०००
१	९२१६०	१०	९३१६ ०
[illegible]	१८४३२०	११	१८४० ०
१२	८३२६८ ० ५ (पूर्वस्य पदसंख्या)	१२	८३१ ८६८५६ ०५

५ प्रथमके पाँच पूर्वोंके सिवाय अन्य पूर्वोंके वस्तु दिगम्बर सम्प्रदायमें विषमरूपसे हैं।

६ दृष्टिवादके परिकर्म, सूत्र पूर्व, अनुयोग और चूलिका ऐसे पाँच प्रकार श्वेताम्बर मानते हैं। परिकर्मके सिद्धश्रेणिका आदि मूल सात प्रकार हैं। सूत्र बाईस प्रकारका है, पूर्व चौदह प्रकारके होते हैं और अनुयोग मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग ऐसा दो प्रकारका है। चौदहमेंसे सिर्फ चार पूर्वोंपर चूलाएँ हैं।

दिगम्बर भी दृष्टिवादके पांचही प्रकार मानते हैं, लेकिन् वे श्वेताम्बरोंसे भिन्न हैं, जैसे-परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत एवं चूलिका। परिकर्मके चन्द्रप्रज्ञाप्ति, सूर्यप्रज्ञाप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञाप्ति, दीपसागरप्रज्ञाप्ति, और व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि भेद वे मानते हैं। सूत्र एकही प्रकारका है, एवं प्रथमानुयोग भी एक प्रकारका है। पूर्वगतके चौदह प्रकार माने गये हैं, जैसे-१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीयं, ३ वीर्यानुप्रवाद, ४ अस्तिनास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यान, १० विद्यानुप्रवाद, ११ कल्याणानुवाद, १२ प्राणानुवाद, १३ क्रियाविशाल और १४ त्रिलोकबिन्दुसार। दिगम्बर दृष्टिसे चूलिकाएँ पांच तरहकी हैं—१ जलगता, स्थलगता, ३ रूपगता, ४ मायागता और ५ आकाशगता। गोम्मट० जीव० गा. ३६१।

७ श्वेताम्बर अवधिज्ञानके भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक ऐसे दो भेद और गुणप्रत्ययिकके १ अनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्द्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाति और ६ अप्रतिपाति, ऐसे छह प्रकार मानते हैं। उनकी दृष्टिसे परमावधि भी वर्द्धमान अवधिके वर्णनमें आता है।

लेकिन् दिगम्बर भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक ऐसे अवधिके दो मुख्य भेद मानकर गुणप्रत्ययिक अवधिके १ देशावधि, २ परमावधि और ३ सर्वावधि ऐसे तीन प्रकार मानते हैं। अनुगामिक आदि छ प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदायकी तरहही हैं।

८ श्वेताम्बर आम्नायमें मनःपर्यवज्ञान मनुष्योंके मनमें सोचे हुए भाव अर्थ)को प्रकट करता अर्थात् जानता है। ऋजुमति एवं विपुलमति ये उसके दो भेद हैं। यह ज्ञान ऋद्धिप्राप्त साधुओंकोही होता है ऐसा वे मानते हैं।

लेकिन् मनःपर्यवज्ञानसे चिन्तित, अर्द्धचिन्तित एवं अचिन्तित भी मनके विचार जाने जाते हैं ऐसा दिगम्बर मानते हैं। ऋजुमति वर्तमानके मनोगत विचारोंको जानता है और विपुलमति भूत-भविष्यको भी जानता है। मन, वचन, कायकी ऋजुता व सरलतासे प्रत्येकके तीन भेद ऐसे मनःपर्यवके छह भेद वे मानते हैं।

॥ सूत्रपठनमें अनध्याय ॥

अनध्याय	समय
१ बड़ा तारापात हो तो	१ प्रहर
२ दिशा रक्तवर्णवाली हो तो	जबतक दिशा रक्तवर्ण हो तबतक
३ { अकाल बादलके गर्जनेपर	२ प्रहर
„ बिजलीके चमकनेपर	१ „
„ बिजलीके कड़कड़ाट हो तो }	८ „
४ शुक्लपक्षकी प्रतिपद, द्वितीया, तृतीया	प्रहर रात्रिपर्यन्त
५ आकाशमें यक्षाकार हो तो	आकार रहनेतक
६ सफेद धूंअर होनेपर	धूंअर रहनेतक
७ कृष्ण धूंअर होनेपर	„ „
८ धूलिसे आकाशके ढकनेपर	ढका रहे तबतक
९ हड्डीके दिखनेपर	
१० मांसके नजदीक होनेपर	
११ रक्तके पास रहनेपर	
१२ विष्ठा आदिके नजदीक	
१३ स्मशानके पास	
१४ चन्द्रग्रहण होनेपर	८।१२।१६ प्रहरपर्यन्त
१५ सूर्यग्रहण होनेपर	„
१६ राजा आदि किसी बड़े आदमीके मरनेपर	शव-संस्कार होनेतक
१७ राजाओंके युद्धस्थानमें	युद्ध रहनेतक
१८ उपाश्रयके भीतर पञ्चेन्द्रिय जीव मरा हो तो	रहे तबतक
१९ पशुका कलेवर ६० हाथके भीतर हो तो	„
२० मनुष्यका कलेवर १०० हाथके	„
२१ आषाढ शुक्ल पूर्णिमा	पूर्ण दिन रात
२२ श्रावण कृष्ण प्रतिपद्	
२३ भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा	„
२४ आश्विन शुक्ल पूर्णिमा	„
२५ आश्विन कृष्ण प्रतिपद्	„
२६ कार्तिक कृष्ण प्रतिपद्	„
२७ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा	„
२८ मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपद्	„
२९ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा	„
३० वैशाख कृष्ण प्रतिपद्	„
३१ सूर्योदयके समय	दो घडीपर्यन्त
३२ सूर्यास्तके समय	„
३३ मध्याह्नके समय	„
३४ मध्यरात्रिके समय	„

षष्ठं परिशिष्टम् ।

स्पष्टीकरण और सूचना



(१) हमने नन्दीसूत्रका अनुवाद अधिकांश वृत्तिके आधारसे किया है, अतएव स्थविरावलीके अनुवादमें टीकाकारके मतानुसारही गुरु-शिष्य क्रम रक्खा है। वस्तुतः यह युगप्रधान स्थविरावली है, गुरुशिष्यक्रमवाली नहीं। प्रस्तावनामें इस विषयपर हमने विचार किया है, देखे।

(२) अश्रुतानिश्रित मतिज्ञानकी औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धिओंके कथा-भागमें कहीं १ परिवर्तन भी किया है, जैसे-तिल-रोहकके दृष्टान्तमें चतुर्थ उदाहरण, औत्पत्तिकी बुद्धिका १० वाँ, १३ वाँ और १८ वाँ मधुसिक्थका उदाहरण।

(३) मुद्रित पुस्तकोंमें अधिकांश 'भरहसिल पणिय' इस गाथाको प्रथम रखकर फिर 'भरहसिल मिंठ' आदि गाथाको दूसरे नम्बरपर रक्खा है, किन्तु यहां दृष्टान्तके क्रमसे 'भरहसिल मिंठ' इस गाथाको प्रथम रक्खा है।

(४) कुछ उदाहरण अतिशय संक्षित होनेसे अस्पष्ट रहजाते हैं, उनका यहां स्पष्टीकरण किया जाता है।

(अ) वैनयिकी बुद्धिका ११ वाँ १२ वाँ उदाहरण 'रथिक और गणिका'-पाटलीपुत्रमें कोशा नामकी एक वेश्या रहती थी। उसके यहां स्थूलभद्र मुनिने वर्षावास किया। और हावभावसे विचलित न होकर उसको उपदेशसे श्राविका बनादी, जिससे राजनियोगके सिवाय उसनेभी मैथुनके त्याग कर दिये। किसी समय एक रथिकने राजाको प्रसन्नकर कोशाकी मांगनी। की राजाने भी उसके मांगनेपर कोशाको हुकुम दे दिया, किन्तु जब रथिक उसके पास पहुंचा तो वह वारंवार स्थूलभद्र मुनिकी स्तुति करती, परन्तु उसको नहीं चाहती। रथिक अपने विज्ञानसे उसको प्रसन्न करनेके लिये अशोक वनिकामे ले गया, और जमीनपर खडा २ आम्रवृक्षसे आम्रकी लुम्बीको तोडकर अर्धचन्द्रके आकारसे काटली। फिर भी कोशा सन्तुष्ट नहीं हुई और बोली कि शिक्षितको क्या दुष्कर है, देखो-मैं सर्षपकी राशिपर सूईमे पोए हुए कनेरके फूलोंपर नाचती हूं, ऐसा कहके उसने सर्षपराशिपर नृत्य कर दिखाया। रथिक तुलस उसकी बहुत प्रशंसा करने लगा, तब वेश्याने कहा—" आम्रकी लुम्बी तोडना और सर्षपकी ढेरीपर नाचना दुष्कर नहीं, किन्तु प्रमदा-समूहमें रहकर मुनि बना रहना यह दुष्कर है"। इसपर स्थूलभद्र मुनिका वृत्तान्त कह सुनाया जिससे रथिकको भी वैराग्य आया। यह रथिक और गणिकाकी विनयजा बुद्धि हुई।

(च) पारिणामिकी बुद्धिका प्रथम उदाहरण—

चण्डप्रद्योत राजाको बाँधके ले आनेमें अभयकुमारने जो बुद्धिमत्ता की, उसका विस्तार देखनेके लिये आवश्यककी बृहद्वृत्ति देखें।

(छ) पारिणामिकी बुद्धिका चतुर्थ उदाहरण–देवी।

पुष्पभद्र नगरके पुष्पसेन राजाको १ पुत्र और १ पुत्री ऐसे दो सन्तान थी। संयोगवश साथ रहते हुए दोनोंमें वैषयिक प्रेम जग गया और वे परस्पर भोग भोगने लगे। राणी पुष्पवतीको यह देखकर बड़ी ग्लानी हुई। उसी निर्वेदसे वह संसार छोड़कर दीक्षित बन गई। कुछ समयसे संयम–जीवनमें आयु पूर्णकर वह देवी बनी और अपने पूर्वजन्मके पुत्रपुत्रियोंका अनुचित सम्बन्ध देखकर सोचने लगी कि ये दोनों विषयमें मूर्छित होकर इसप्रकार रमते हैं तो इनको नरक आदि दुर्गतिमें उत्पन्न होना पड़ेगा मेरा कर्तव्य है कि मैं इनको सन्मार्गपर लाऊं। ऐसा सोचकर देवीने उनको स्वप्नमें नरक गतिके दुःख देखाये जिससे उन दोनोंको चिन्ता होने लगी कि हम दुःखोंसे कैसे छूटेंगे फिर दूसरे दिन स्वप्नमें देवलोकके सुख दिखाये। प्रातःकाल आचार्यके पास जाकर दोनोंने नरकगतिसे बचने और देवलोकमें जानेका उपाय पूछा। आचार्यने स्वर्गप्राप्तिका मार्ग बताते हुए धर्मका उपदेश दिया उससे दोनोंने दीक्षा लेकर दुःखोंसे मुक्ति मिलाली। यह देवीकी पारिणामिकी बुद्धिका उदाहरण है।

सब कथायें बुद्धियोंके उदाहरणरूप हैं, अतः इनपरसे विधिवाद या ऐतिहासिक निर्णय करनेका प्रयत्न नहीं करें।

संशोधन—

संशोधनकी पूर्ण सावधानी रखते हुए भी परिस्थितिकी विषमता व मुद्रणकी शीघ्रता तथा पूज्यश्रीका विहारमें होना आदि कारणोंसे कुछ भूलें रह गई हैं, जिनका इस परिशिष्टसे संशोधन कर लें।

७ वें सूत्रके अन्तमें 'से त्तं मणपज्जवणाणं' यह पाठ भी मिलता है।

७१ वीं गाथाकी छायामें लायकके स्थानपर 'माणक' पढ़ें।

७१ वीं गाथाकी टीकामें 'घृतभाण्ड' के स्थानपर भाण्ड पढ़ें।

पृ ६० के १० वें उदाहरणमें— 'भण्डन (अपकीर्ति)' के स्थानपर– 'भाण्ड–चेष्टा करनेवाले पुरुष' पढ़ें।

पृ० ७१ व ७१ में उदाहरणोंकी संख्यामें चूक हुई है, उसको इसप्रकार पढ़ें—१८ मधुसित्थ– १९ मुद्दिय– २० अंक– २१ णाणए– २२ भिक्खु– [illegible] चेडगणिहाणे– २४ सिक्खा य–, २५ अत्थसत्थे–, २६ इच्छा य महं–, २७ सय-सहस्से–, गाथार्थमें भी यह संशोधन करलेवें। ८० वी गाथाके अन्तिम पदमें 'दुर्दीप' के स्थानमें 'दुरी'।

पृ १९१ के आदिमें 'तेसट्ठाणं'के पहले 'बत्तीसाए वेणइयवाईणं, तिण्हं'– ऐसा पढें।

पृ. १४६ में 'आसा–'की जगह मासा'।

पृ १४७ में 'प्रशिष्यके' स्थान 'प्रशास्य'।

पृ १५७ में 'कधाइ' के स्थान 'कयाइ' पढें।

गाथा ९५ वेंमें 'सुस्सुसइ'के स्थान 'सुस्सूसइ' और 'वा धारेइ के स्थान' 'धारेइ' ऐसा पढें।

इसके सिवाय मात्रा, बिन्दु और चिन्हकी चूकसे या विपर्याससे जो अशुद्धियां रह गई हैं, उनको पाठक सावधानीसे पढें और संशोधन करले। अल विद्वत्सु।

प्रार्थी—

प्रबन्धक—

श्रीमन्नन्दीसूत्रका शब्दकोश



शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अइय	औत्पत्तिकी बुद्धिका ११ वाँ दृष्टान्त	१६
अईयम्	अतीत–भूतकाल	१८
अकम्मभूमिसु	अकर्मभूमिक्षेत्रोंमें	०
अकिरियराहुमुहदुद्धरिस	अक्रियावादी रूप राहुके मुखसे नहीं पकडने योग्य	९
अकंपिय	अकम्पित नामके ८ वें गणधर	२३
अकिरियावाईणं	अक्रियावादियोंका	०
अक	औत्पत्तिकी बुद्धिका २० वाँ दृष्टान्त	७२
अक्खरा	अक्षर (वर्ण)	४४।४५
अक्खर	वर्ण ज्ञान	,,
अक्खए	अक्षत–क्षयरहित	५७
अक्खरसुयं	श्रुतोंका १ भेद अक्षरश्रुत	३८
अक्खरलद्धियस्स	अक्षरलब्धिवालेका	३९
अक्खोह	क्षोभरहित,	११
अक्खुभिय समुद्द गंभीर	तरङ्गरहित समुद्रकी तरह गभीर	२९
अखंड चारित्त पागारा	परिपूर्ण चारित्ररूप कोटवाला	४
अगुलसेढिमित्ते	अगुल श्रेणिमात्र क्षेत्रमें	६२
अगुल पुहुत्त	अगुल पृथक्त्व २ से ९ अंगुल प्रमाणवाला	५७
अगमिय	श्रुतज्ञानका १२ वाँ भेद	४४
अगए	अगद विनयजा बुद्धिका १० वाँ दृष्टान्त	७४
अगड	औत्पत्तिकी बुद्धिका ७ वाँ दृष्टांत	७१
अगणिजीव	वन्हिकायके जीव	५६
अग्गिभूइ	अग्निभूतिनामके दूसरे गणधर	२२
अग्गिवेस	अग्निवेश्यायन गोत्र विशेष	२५
अंगुल	अगुल नामका १ प्रमाण	१४।१५।५७
अगपविट्ठ	श्रुतज्ञानका १३ वाँ भेद	४४
अगबाहिर	,, ,, १४ ,, ,,	,,
अंगचूलिया	अगचूलिका नामका एक कालिक शास्त्र	४४
अगट्ठयाए	अगकी अपेक्षासे	,,
अगे	अंगशास्त्र	,,
अंगुट्ठपसिणाइं	अङ्गुष्ठप्रश्न–विद्याविशेष	५५
अगुलेहिं	अङ्गुलोंसे	१८

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अग्घाइज्जा ...	सूंघे	३६
अचूलियाई	बिना चूलिकाके पूर्व	५७
अचरमसमय	अन्तिमसमयसे भिन्नसमयके सिद्ध	२१
अज्ज	आर्य	२३
अज्जजीयधर	आर्यजीतधर नामके स्थविर	२८
अज्जधम्म	आर्यधर्म नामके स्थविर ..	३३
अज्जनागहत्थि	आर्यनागहस्ती नामके स्थविर	३३
अज्जमंगु	आर्यमंगु	३
अज्जसमुद्द	आर्यसमुद्र	२६
अज्जसयविणीओ	आर्याओंमें मुख्य ..	५७
अज्जावि	आजभी	३७
अज्जवइर	आर्यवज्र नामके स्थविर	३१
अजाणिया ..	अज्ञोंकी सभा	६
अजोगिभवत्थकेवलनाणं	अयोगिभवस्थकेवलज्ञान	११
अजीवा	अजीव	४७
अज्झयणा	अध्ययन	४४
अज्झवसाणट्ठाणेहिं	अध्यवसायस्थानोंसे ..	
अजिय	अजितनाथजी दूसरे तीर्थङ्कर ..	
अट्ठ ..	आठ	५१
अट्ठमे ...	आठवाँ ..	
अट्ठपयाई ..	अर्थपद नामका परिकर्मका अवान्तर १२६ वाँ भेद	५७
अट्ठारसेव ..	अठारहही	३
अट्ठावीसइ विहस्स	अट्ठाईस तरहके	३६
अट्ठारस	अठारह	४४
अट्ठासीई	अठासी ...	५
अट्ठुत्तरं ...	अठोत्तर, एकसौ आठ	५५
अट्ठहिं	आठसे (बुद्धिगुण)	६४
अड्ढभरहे	अर्द्धभरत, दक्षिणभरतमें	३७
अड्ढभरहप्पहाणे	अर्द्धभरतमें प्रधान ..	४४
अड्ढाइज्जेसु ...	अढ़ाई (द्वीपसमुद्र) में	१
अड्ढाइज्जेहिं	अढ़ाई (अंगुल) से	८
अणसणाए	अनशन—आहारत्यागसे	५७
अणगार	साधु ...	९
अणाणुगामिय	अनानुगामिक अवधिज्ञानका दूसरा भेद	९

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अणागए (यं)	अनागत—भविष्यत्काल ...	५७
अणाइय	आदिरहित	४३
अण्णाणिय वाईणं . . .	अज्ञानवादिओंका	४७
अणत	अनन्तनाथजी १४ वें तीर्थङ्कर . .	. .
अणते ...	अनन्त	१६
अणंताइ ..	अनन्त	११
अणतभागं .	अनन्तवाँ भाग ...	१८
अणतर सिद्ध	एकसाथहोनेवाले सिद्ध	२१
अणतपएसिए	अनन्त प्रादेशिक	४४
अण्णमण्णमणुगयाइ .	एक दूसरेसे मिलेहुए	२४
अणुओगियवरवसमे ...	बडोंको अनुयोगोंमें लगानेवाले	४४
अणुओगजुगप्पहाणाण .	अनुयोगमें युगप्रधान	४८
अणुदिण्णाण ..	अनुदीर्ण—उदयमें नहीं आए हुए ..	८
अनुओगो (गे) .	अनुयोग .	३७।४१।३२
अणुप्पवायम्मि .	अनुप्रवादनामक पूर्व अर्थात् विद्यानुप्रवादपूर्व	५७
अणुत्तरगई ...	अनुत्तर—श्रेष्ठ ५ विमानोंकी गतिसे ...	"
अणुपरियट्टति .	भटकते हैं	"
अणुपरियट्टिंसु ..	भटक चुके	"
अणुपरियट्टिस्सति .	भटकते रहेंगे ..	"
अणुयोगदारा (र) ...	अनुयोगद्वार सूत्र	४४
अणिड्ढीपत्त	अनृद्धिप्राप्त अर्थात् लब्धिरहित ...	१७
अणेगविह .	अनेक तरहके . .	४४।२२
अतगय ..	अवधिज्ञानका भेद ...	१०
अतर दीवग .	अन्तर्द्वीपवर्ती ...	१७
अतो मणुस्सासित्ते .	मनुष्यक्षेत्रके भीतर . ..	१८
अतर दीवगेसु	अन्तर्द्वीपोंके भीतर .	१८
अतीय	बीताहुआ—भूतकाल	"
अतित्थसिद्धा ..	अतीर्थसिद्ध अर्थात् १५ सिद्धोंमें दूसरा भेद	२१
अतित्थयर सिद्ध	अतीर्थङ्करसिद्ध	"
अतो मुहुत्तिया (ए)	अन्तर्मुहूर्तकी ...	३५
अतकिरियाओ . .	अन्तक्रिया	५२
अतगडाण .	अन्तकरनेवालोंका . .	"
अतगडदसाओ	अन्तकृद्दशाङ्ग आठवाँ अङ्ग	५३
अतोमणुस्स खित्ते	मनुष्यक्षेत्रके भीतर	१८
अंतगडे , .	अन्तकरनेवाले . ..	५७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अत्थाणं	अर्थोंके	६७
अत्थसत्थे	अर्थशास्त्रविषयक वैनयिकीबुद्धिका २ रा दृष्टान्त	७२
अत्थुग्गहे ..	अर्थावग्रह अवग्रहका प्रथमभेद	२८
अदिट्ठ ..	अदृष्ट-बिना देखा	६१
अद्धभरहप्पहाणाणि	अर्ध भरतका खजाना	४७
अद्दाग पसिणाइं	दर्पणके आधारसे पूछे हुए प्रश्न	५५
अद्धमास	अर्द्धमास	५७
अन्नलिंगसिद्धा	दूसरे भेषोंसे होनेवाले सिद्ध ..	२१
अनंतरसमयसिद्धा	अनन्तरसमयमें सिद्ध ..	२२
अन्नत्थ	अन्यत्र-दूसरे स्थानमें	११
अणेगसिद्ध ...	एक समयमें एकसे अधिक सिद्ध होनेवाले	२१
अन्ने	दूसरे	५
अभिन्नएयं ..	अछिन्न हुए	४२
अन्नाणिएहिं	मिथ्या ज्ञानवालोंसे	४२
अन्ने वि	दूसरे भी	३६
अपच्छिमो ..	सबसे अन्तिम	२
अप्पडिचक्कस्स	प्रतिपक्षरहित	६
अपज्जवसिअं	अन्तरहित	३८।४१
अपसिणसय	सैकड़ों बिना पूछे	५५
अप्पसत्थेहिं	अप्रशस्त ..	१३
अप्पमत्तसंजय	प्रमादरहित साधु	१७
अपडिवाइ (य)	नहीं पड़नेवाले	९।१५
अपढम समयसिद्ध	दूसरे समयके सिद्ध	११
अपोहए	निश्चय करता है ..	६५
अपुट्ठं	बिनास्पर्श किए ..	६१
अपोह	निश्चय करना अनिश्चितको छोड़ना	७
अभए	पारिणामिकी बुद्धिका पहला उदाहरण	७६
अब्भहियतराए	अधिक बुद्धिसे	१८
अब्भहियतरं	विशेषतासे अधिक	
अब्भहियतरागं ..	चमकतायुक्त	”
अभिनिबुज्झइ	जानता है ..	२४
अभिसेगा ..	अभिषेक	५७
अभासा	नहीं बोलने योग्य बात	४४
अभिसंधारणपुव्विया	पर्यालोचनाके साथ	४
अभिन्नदसपुव्विस्स ...	पूरे दश पूर्वोंको जाननेवालोंका	४१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अभवसिद्धियस्स	अभवसिद्धिक–मुक्तिके अयोग्य .	४३
अभिनदन	वर्तमान अवसर्पिणीके चतुर्थ तीर्थङ्कर	२०
अमच्चे	अमात्य–प्रधान–पारिणामिकी बुद्धिका ९ माँ उदाहरण .	७९
अमच्चपुत्ते	अमात्यपुत्र–प्रधानका लडका–पारिणामिकी बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण .	८०
अमर	देव	५७
अम्मापियरो ..	माता पिता .	५१
अमुक .	अज्ञातनामवाला	३६
अमणुस्साण	मनुष्यसे भिन्न	१७
अयलभाया	अचलभ्राता स्थविर ...	२३
अयलपुर	अचलपुर नामका ग्राम ...	३६
अर	१८ वें तीर्थङ्कर	२१
अरिहतेहिं ...	अरिहतदेवोंसे . ..	४१
अरहताण	अर्हन्त देवोंका .	५७
अरहओ ..	अर्हन्तदेव . .	४४
अरुणोववाए ..	अरुणोपपात ग्रन्थविशेष ..	"
अलाय .	जलती हुई लकडी	१०
अलोगस्स .. .	अलोकका	१५
अवसव्वय	वाममागसे .	७५
अविसेसिया	विशेषता रहित . .	२५
अव्वाहय फलजोगा ..	निर्वाध फलोंसे युक्त	६९
अवेइय	अज्ञात ...	"
अवट्ठिए .	स्थिर रहनेवाला	५७
अव्वए	नाशरहित	"
अवाओ ..	अवाय मतिज्ञानका भेद ...	२७
अवलबणया .	अवलम्बनता, ज्ञानका अवान्तरभेद ..	३१
अवाए ..	अवाय	३३
अवाय	अवायमें	३६
अव्वत्त	अव्यक्त अस्फुट	३६
अवोहो ..	मतिज्ञानका भेद . .	४०
अवसप्पणीओ	अवसर्पिणी–कालका भेद	१६
असण्णिसुय .	असंज्ञि श्रुत . . .	३८
असिद्धा ...	सिद्धोंसे भिन्न ...	५७
अस्सुय , . ,	अश्रुत ... , ...	६९

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
असुय निस्सिय ...	अश्रुतके आश्रित होनेवाला	६८
असंठविय	अच्छीतरह नहीं रक्खा हुआ	५१
असंखेज्जाणि	असंख्येय-संख्यासे पार	१०
असंखिज्जा	असंख्य	६२
असंखिज्जभागं	असंख्यातवां भाग	१८
असंखिज्जसमयपविट्ठा	असंख्यातसमयोंमें सिद्ध होनेवाले	२२
असंजम सम्मद्दिट्ठि	असंयमी सम्यग्दृष्टि	१७
असे	वैनयिकी बुद्धिका छट्ठा उदाहरण	६७
असंखिज्जसमय पविट्ठा	असंख्यसमयमें प्रविष्ट	३६
आसीविसस्स	आशीविषसर्पका	
अहवा	अथवा	१
अहे ...	नीचे	१८
अहेउ	कारणसे हीन ...	५७

आ

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
आइ तित्थयरस्स	आदितीर्थंकर	४४
आइग्गहणं	आदिपदसे ...	५७
आउट्टणया	आवर्तनता-	३३
आउरपच्चक्खाणं ...	रोगीका प्रत्याख्यान	४४
आभिणिबोहिय नाणं	आभिनिबोधिकज्ञान	१
आभीरी	शूद्र जातिकी स्त्री श्रोताका १४ वाँ उदाहरण	५१
आणुगामिय	आनुगामिक अवधिका भेद	६
आगासपएसं	आकाशका प्रदेश	१५
आवलियाए	पंक्ति-श्रेणिसे ...	१६
आयरिय ...	आचार्य	२४
आमंडे ...	बनावटी आँवलेका फल पारिणामिकी बुद्धिका १७ वाँ उदाहरण	६१
आभोगणया	आभोगनता	३२
आगच्छंति ...	आते हैं ...	१७
आसाएज्जा	आस्वादलेवे ...	२६
आभिणिबोहियनाणी	आभिनिबोधिक ज्ञानवाला	१७
आएसेणं	आदेशसे ...	
आयारो	आचारांगसूत्र-प्रथम अङ्ग	४४
आघविज्जंति ...	कहे जाते हैं	४१
आसीविसभावणाणं	सर्पविषयका ज्ञानवाला ग्रन्थ ...	४४

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
आयविसोही	आत्मविशुद्धि	४४
आराहित्ता	आराधना करके	५७
आगरा	आकर–खान	४८
आगम	सूत्र ग्रन्थ	९४
आणाए	आज्ञासे	५७
आया	आत्मा	४६
आउं	जीवनमर्यादा	५७
आयारे	आचाराङ्गमें	,,
आविरिज्जा	ढक जाय	४३
आवस्सय	छह आवश्यक	४४
आवस्सयवइरित्त	आवश्यकव्यतिरिक्त	,,
आणुपुव्विवायगत्तण	आनुपूर्वीके वक्ता	४०

इ

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
इंदभूई	इन्द्रभूति एक गणधर	२२
इमो	यह	३७
इव	समान	५२
इंदिय–पच्चक्ख	इन्द्रियप्रत्यक्ष	३
इड्डीपत्त	ऋद्धिप्राप्त–लब्धिसम्पन्न	१७
इमीसे	इसके	१८
इत्थीलिंगसिद्ध	स्त्रीलिङ्गसे सिद्धहोनेवाली	०
इत्थी	स्त्री	७२
इमे	ये सब	३२
इक्कसमइए	एक समयमें	३५
इक्कं	एक	८४
इच्चेय	यह	४१
इसिभासिय	ऋषिभाषित	४४
इहलोइयपरलोइया	इसलोक व परलोक सम्बन्धी	५१
इड्डिविसेसा	ऋद्धिविशेष	५१
इक्कारसमे	इग्यारहवें	५६
इक्कारसविहे	इग्यारहप्रकारके	५७

ई

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
ईहा	ईहा–मतिज्ञानका भेद	८१
ईहावाया	ईहा अवाय ज्ञानके भेद	८४

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
ईहइपाणि ...	अथवा ईहा करता है	१५
	उ	
उज्जुत्त	उद्यमी प्रयत्नशील	११
उड्ढ	उसका ...	१
उक्कोसेण	अधिकतासे	१४
उच्चारे	औत्पत्तिकी बुद्धिका ८ वाँ उदाहरण	७
उग्गहे ...	अवग्रह ज्ञान	१७
उग्गहिए	ग्रहण किया हुआ	३६
उग्गहणम्मि	ग्रहणकरनेमें	१
उज्जुमई	ऋजुमति	१८
उत्तम	उत्तम ...	३६
उदिण्ण	उदयमें आया हुआ	
उज्जहरपविरायमाणकर	... ग्रोभायमान	१५
उड्ढ	ऊपर	१८
उप्पज्जइ ...	उत्पन्न होता है	१७
उप्पत्तिया	औत्पत्तिकी बुद्धि	६८
उवरिमोवरिमे	ऊपर नीचेके भाग ...	१८
उवरिमतले ...	ऊपर का भाग	४
उदगबिंदू	जलकी बूंद ...	३६
उदाहरणा	उदाहरण—दृष्टान्त ...	८१
उदितोदए	उदितोदय पारिणामिकी बुद्धिका ५ वाँ उदाहरण	७६
उवगवे ...	पाया हुआ	३६
उवसम	उपशम ...	८
उवधारणया	उपधारणता ज्ञानका भेद	३१
उवओगदिट्ठसारा ...	उपयोगसे सफल होनेवाली	७६
उसभ ...	ऋषभदेव भगवान् प्रथम तीर्थङ्कर	२
उभओलोग फलवई	दोनों लोकमें सफलता देनेवाली	७३
उस्सप्पिणीओ	उत्सर्पिणी कालभेद ...	१६
उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं	उत्पन्न हुए ज्ञानदर्शनको धरनेवाले	४१
उवासगदसाओ	उपासकदशाङ्गका सूत्र ...	४
उवदंसिज्जंति ...	उपदर्शन कराते हैं	३
उक्कालिय	उत्कालिक सूत्रोंका अवान्तर भेद	४४
उववाई	औपपातिक सूत्र	४

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
उत्तरज्झयणाइ	उत्तराध्ययनसूत्र	४४
उट्ठाणसुए	उत्थानश्रुत	„
उप्पत्तियाए	औत्पत्तिकी बुद्धिसे	„
उववेया	युक्त हुए	„
उद्देसनकाला	उद्देशनका काल	„
उद्देसणसहस्साइ	हजारों उद्देशन	५०
उज्जाणाइ	उद्यान—बगीचा	५१
उपसग्गा	उपसर्ग—विघ्नबाधा	५२
उपासगदसाण	उपासकोंके दश अध्ययनोंका	„
उवसपज्जसेणिया	उपसम्पद्—श्रेणिका नामक परिकर्म	५७
उवसपज्जणावत्त	उपसम्पादनावर्त—परिकर्मका भेद	„
उग्गा	उग्र भयङ्कर उत्कट	„
उत्तरवेउव्विणो	उत्तर विकुर्वणावाले	„
उस्सप्पिणी गडियाओ	उत्सर्पिणी गण्डिका	„
उवउत्ते	उपयुक्त—तल्लीन हुआ	„
उववत्ती	उपपत्ति—प्राप्ति अथवा उत्पत्ति	५४

ए

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
एग	एक	११
एगमवि	एकभी	१५
एगसिद्ध	एकसमयमें अकेले सिद्ध होनेवाले	२१
एगविह	एक प्रकारका	६६
एयाइ	येही	४२
एवमाई	इसतरहके अन्य भी	
एगुत्तरियाए	एक एक वृद्धिसे	४८
एगवीसे	इक्कीस	„
एक्कवीस	„	„
एगाइयाण	एक आदि	४९
एगुत्तरियाण	एक उत्तरवाली	„
एगट्ठियपयाइ	एकार्थक पद	५७
एगगुण	एक गुण	„
एवमन्ने	इसीतरह दूसरे	„
एवमाइयाओ	इसतरहके	„
एए	ये सब	९३
एस	यह	९७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
एलावच्चगोत्त	एलापत्य गोत्रवाले	२७

ओ

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
ओगाहणा ...	अवगाहना	१२
ओगाढावत्त ...	अवगाढावर्त परिकर्मका भेद	५७
ओगाढसेणिया	अवगाढश्रेणिका परिकर्मका चौथा भेद	,,
ओसप्पिणीओ	अवसर्पिणी ...	६१
ओसप्पिणीगंडियाओ	अवसर्पिणीगण्डिका	८७
ओहसुय	ओघश्रुत	४
ओहिणाण	अवधिज्ञान	१०
ओहिक्खित्त ...	अवधिक्षेत्र	१२
ओहिस्सण्णाणिया	सदा अवधिज्ञानवाले ...	६४
ओगिण्हणया ...	अवग्रहणता–मनके विषयमें लाना ...	३१

क

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
कहिया	कहे गए हैं ...	५७
कयाइ ...	कभीभी ...	,,
कारणा	कारण–हेतु	,,
कच्चायण	कात्यायनगोत्र	२५
कड ...	क्रियायुक्ता	४६
कणगसत्तरी	कनकसप्तति–ग्रन्थविशेष	४२
कप्प ...	कल्पसूत्र	४४
कप्पवडंसियाओ	कल्पावतंसिका	,,
कप्पासिय ...	कार्पासिकग्रन्थविशेष	४१
कप्परुक्ख	कल्पवृक्ष ...	१६
कंत	सुन्दर	१७
कंदरुद्दरिय ...	कन्दरामें दर्पयुक्त	७
कप्पियाओ	कल्पिका एक उपाङ्गग्रन्थ ...	४४
कप्पियाकप्पियं ...	कल्पिकाकल्पिक ग्रन्थविशेष ...	,,
कत्थइ ...	कहींभी	५४
कम्म ...	अष्टप्रकृतिका कर्म	८
कम्मभूमिसु	कर्मभूमियोंमें ...	१
कम्मियाए	कर्मजाबुद्धिसे	४४
कम्मरएण परिघोलणा	पुनः पुनः कर्मोके मलसे	७६

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
कम्मसमुत्था	कर्मोंसे पैदा होनेवाली	७६
कम्हा	क्यों ?	४२
काचि	किसीको	३६
करणसत्ती	करनेकीशक्ति या इन्द्रियोंका बल	४०
करग	करनेवाला	३०
करिसए	कर्मजाबुद्धिका दूसरा उदाहरण	७७
करिस्सामि	करूंगा	३६
करेइ	करताहै	९५
काउं	करनेके लिये	११
काले	समयमें	६०
कालिय	कालिक सूत्र	४४
काविलिय	कपिलकृत	४२
कालिओवएसेण	कालिक उपदेशसे	४०
कालियसुय आणुयोगिए	कालिक सूत्रोंमें अनुयोग करनेवाले	३६
कासव	काश्यप गोत्र	२५
किरियावाइसयस्स	सैकडों क्रियावादी	४७
काउस्सग्गो	कायोत्सर्ग	४४
कुक्कुड	औत्पत्तिकी बुद्धिका ४ थं उदाहरण	७०
कुचस्स	वैनयिकी बुद्धिका १३ वां उदाहरण	७५
कुडाइ	गङ्गाप्रपात आदि कुण्ड	४८
किरियाविसालपुव्वस	क्रिया विशाल पूर्व	४७
किच्चा	करके	,,
कुंथु	कुन्थुनाथजी १७ वें तीर्थङ्कर	२१
कुलगरगडियाओ	कुलकर गण्डिका	५७
कूडा	पर्वतके शिखर	४८
कूव	कूप	७४
कुच्छि	४८ अङ्गुलका प्रमाणविशेष	१४
कुडव	परिमाण विशेष	५१
कुमारे	कुमार—पारिणामिकी बुद्धिका ३ रा उदाहरण	७९
केई	कोई	१०
केउभूय	केतुभूत परिकर्मोंके अनेक भेद	५७
केवलनाण	केवलज्ञान	१९
केवलनाणाणुप्पयाओ	केवलज्ञानानुप्रवाद	५७
कोसियगोत्तो	कौशिक गोत्र	२६
कोट्ठे	कोष्ठक (कोठार)	३४

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
कोडिय	कर्मजाबुद्धिका ७ वाँ उदाहरण	७०

ख

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
खओवसमेणं	क्षयोपशमसे ...	४
खुड्डिआ ...	छोटी	३४
खाओवसमियं	क्षायोपशमिक	३१
खएणं	क्षय होनेसे	८
खमए ...	पारिणामिकी बुद्धिका १ वाँ उदाहरण	८
खग्गि	पारिणामिकी बुद्धिका २ वाँ उदाहरण	८१
खंदिलायरिए	स्कन्दिलाचार्य स्थविर	३७
खंतिसंपन्ने	क्षमायुक्तके	४१
खंडाइं	टुकडे	१६
खित्त	क्षेत्र	६२
खित्तकाल	क्षेत्रकाल	६१
खित्तवुड्ढी	क्षेत्रकी वृद्धिसे ...	५
खाडहिला	औत्पत्तिकी बुद्धिका १२ वाँ उदाहरण	७
खुड्डग	औत्पत्तिकीबुद्धिका १३ वाँ उदाहरण	८१
खंधे ...	स्कन्ध	१८
खंभे	औत्पत्तिकी बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण	७
खीर	क्षीर ...	५२
खइविसं	वासना—असमरपुत्रका भेद	८
खोड	घोटकमुख नामकग्रन्थविशेष ...	४२

ग

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
गए ...	गएहुए ...	११
गय	औत्पत्तिकीबुद्धिका ९ वाँ उदाहरण	७
गंठी	विनयजाबुद्धिका ६ वाँ उदाहरण	७४
गणिए ...	विनयजाबुद्धिका ४ था उदाहरण	७
गणिपिडग	ज्ञान	१
गणहर	गणधर	२३
गहियत्था	अर्थग्रहण करनेवाले	६६
गहियपेयाला ...	प्रमाणको प्राप्त करनेवाले ...	६६
गब्भवक्कंतिय ...	गर्भसे पैदा होनेवाले	१७
गिहिलिंगसिद्धा	गृहस्थके वेषसे सिद्ध होनेवाले ...	२१
गुणरयणाल	गुणोंसे पूर्ण ...	७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
गुणरयणुज्जल	गुणरूपरत्नसे चमकनेवाले	७
गुणपाडिवन्न	गुणोंसे युक्त	,,
गुणपच्चइओ	गुणोंसे विश्वासपात्र—प्रख्यात	६३
गुरुगुणसमिद्ध	विशालगुणसे दीप्तिमान	५२
गुरु	लोगोंके गुरु	२
गाउयम्मि	प्रमाणविशेष	५८
गामल्लिय	ग्रामीण	५४
गोयम ?	गौतम ?	१०
गोविंदाणपि	गोविंदनामक स्थविरको	४१
गोल	औत्पत्तिकीबुद्धिका ११ वां उदाहरण	६१
गणिया	विनयजाबुद्धिका १२ वां उदाहरण	६६
गोणे	विनयजाबुद्धिका १५ वां उदाहरण	,,
गद्दभ	विनयजाबुद्धिका ७ वां उदाहरण	,,
गहण	ग्रहणकरना या वन	३६
गहाय	ग्रहणकरके	,,
गमियं	गमिक श्रुतका भेद	३८
गणिपिडग	गणिओंकी आगमरूपपेटी	४१
गणिय	गणित	४२
गवेसणया	गवेषणता ईहाके पांचनामोंमें तीसरा	३२
गवेसणा	गवेषणा आभिनिबोधिकज्ञानकाभेद	८७
गणिविज्जा	गणिविद्या	४४
गमा	अर्थज्ञान	४७
गरुलोववाए	गरुडोपपात कालिकश्रुतकाभेद	४३
गडियाणुओगे	गडिकानुयोग	८७
गणा	चतुर्विधसघ	,,
गणहरा	गणधर	,,
गणहरगडियाओ	गणधरगडिका	,,
गइ	गति	,,
गमण	जाना	,,
गंडियाओ	गडिका	,,
गध	गन्धको	३६
गिण्हइ	ग्रहण करता है	९५
गुण	दया आदि	५२
गुहाओ	कन्दराएं	४८
गधेत्ति	गन्धसामान्य	३६

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
	घ	
घय ...	कर्मजाबुद्धिका ६ ठा उदाहरण	६७
घयण	औत्पत्तिकीबुद्धिका १ ला उदाहरण	
घड	कर्मजाबुद्धिका ११ वां उदाहरण	७७
घोडयमरणे	विनयजाबुद्धिका १५ वां उदाहरण	६६
घाणिंदिय	घ्राणेन्द्रिय ...	२६
घुंटंति	घोटते हैं ...	५२
घण ...	श्रोताका प्रथम उदाहरण	५१
घोडक	घोटकमुख ...	७२
	च	
चउण्ह	चारोंका ...	६१
चउब्विहं	चार प्रकारका ...	१६
चउसमयसिद्धा	चार समयोंमें सिद्ध होनेवाले	२२
चउवीसत्थओ	चतुर्विंशतिस्तव	४४
चउरासीई	चौरासी संख्यावालोंका ...	४४
चउत्थे	चतुर्थमें	४६
चउद्दसविहे	चौदह प्रकारके	५७
चक्खिंदिय	चक्षुरिन्द्रिय	३३
चक्कवट्टिगंडियाओ	चक्रवर्ति–गंडिका ...	५७
चरणविही	चरणविधि	४४
चयंति	त्यागते हैं	४२
चंदाविज्झयं	चन्द्रवेध्य ग्रन्थविशेष ...	४
चरित्तायारे	चारित्ररूप आचारमें	४४
चरणकरणपरूवणा	चरणकरणकी प्ररूपणा	४६
चयणाइं	देवलोकसे च्यवन गरभमें आना	५७
चलणाहण ...	पारिणामिकाबुद्धिका १६ वां उदाहरण	७२
चरमसमय	अन्तिमसमय	११
चउरो	चार	४२
चंदसूराणं	चन्द्रसूर्यकी ...	४३
चरित्तओ ...	चारित्रवालोंका ...	६५
चामीयर मेहलागस्स	सुवर्णके कन्दोरावाले ...	१२
चालणी ...	श्रोताका २ रा उदाहरण ...	५१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
चाणक्क	चाणक्य पारिणामिकी बुद्धिका १२ वा उदाहरण	७१
चित्तकार	चित्रकार कर्मजा बुद्धिका १२ वां उदाहरण	,,
चडुलिय	जलती हुई लकडी	१०
चिंता	मतिज्ञानका भेद	३२
चुयाचुय सेणिया	च्युताच्युत-श्रेणिकापरिकर्म	५७
चुयाचुयावत्तं	च्युताच्युतावर्त	,,
चुल्लकप्पसुयं	छोटा कल्पसूत्र	४४
चुल्लवत्थूणि	चूलिकावस्तु	५६
चाउरत	चार प्रकार की गतिरुप अन्तवाला	,,
चेडग निहाणे	चेटक निधान औत्पत्तिकी बुद्धिका-२२ वां उदाहरण	६३
चेइयाइ	चैत्य-व्यन्तरगृह	५१
चोयग	प्रेरणा करनेवाला	३६
चोद्दसपुव्विस्स	चौदहपूर्वों के जानकार	
चोयाले	चौआलीस	४८

छ

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
छव्विय	छहो	९
छप्पन्नाए	छप्पन्नतरह के अन्तर्द्वीपोंसे	१८
छव्विहे	छहतरहके	३०
छ चउक्क	षट्चतुष्क	५६
छेइत्ता	छेदकर	,,
छत्तीस	छत्तीस	४७
छेलियाइ	क्ष्वेलित अनक्षर श्रुतों का भेद	८८
छीय	छींकना	८८

ज

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जगजीव	जगत के जीव	१
जगगुरू	जगत के गुरु	,,
जगाणंदो	जगतके आनन्द दाता	,,
जगणाहो	जगतकेनाथ	,,
जगबधू	जगतके बन्धु	,,
जगप्पियामहो	जगतका पिता धर्म आप उसके भी पिता अतः पितामह	,,
जयइ	जयवन्त हैं	,,

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जत्तिय	जितने	५६
जयं	जयको	१४
जहानामए	आहात नामवाला	३७
जम्हा	जिसलिये	४२
जया	जब	८
जत्तिया	जितने	४४
जस्स	जिसके	„
जम्मणा वि	जन्म	५७
जाविरं	जितनी देर	„
जहिं	जहाँ	„
जावियाइ	जितने	
जइ	जहाँ	८
जओ	जब	५
जहा	जैसे	५२
जहन्न	छोटा	११
जलंत	जलता हुआ	१२
जणमण	जनों के मनमें	१८
जंबुद्दीवपन्नत्ती	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	४४
जसवंस	यशोवंश	३४
जसभद्द	यशोभद्र	३६
जलूम	कोई जलजन्तु	४१
जंबूनाम	जम्बूस्वामी	२५
जच्चंजण	जातिमंत अंजन	३५
जाया	पैदा हुए	४१
जाहग	मूषिकजातिका जीव	५१
जाणिया	जाननेवाली	„
जाणग	जाननेवाले	४५
जाणिय	जानकर	„
जिण	रागद्वेषविजयी जिन	१
जिणस्स	जिनदेवका	१
जिणसुरलोयपुज्ज	जिनस्वरूपर्गकीमपाले मनुष्य	५
जिणवसह	जिनदेवोंमें श्रेष्ठ	२४
जिब्भिंदियपच्चक्ख	जिह्वाइन्द्रियसे प्रत्यक्ष	४
जिब्भिंदियवंजणुग्गहे	जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह	२९
जिब्भिंदिय अत्थुग्गहे	जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह	३१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जिब्भिंदिय ईहा	जिह्वाइन्द्रियसम्बन्धी ईहा	३२
जिब्भिंदिय अवाए	जिह्वेन्द्रिय अवाय	३३
जिणपण्णत्ता	जिनदेवोंसे कहेगए	४२
जिणवराणं	जिनेन्द्रदेवोंके	४४
जीवदया	जीवोंके ऊपर दया	४७
जीवाजीवा	जीव अजीव	,,
जीवाभिगमो	जीवाभिगमसूत्र	४४
जे	जो	५८
जेहिं	जिन्होंने	३२
जेसिं	जिनके	३८
जूय	यूका एक परिमाण	१४
जूयपुहुत्त	यूका पृथकृत्व २ से ९ तक	,,
जोइसस्स	ज्योतिष विमानवासीका	१८
जोइट्ठाण	ज्योतिःस्थान	११
जोयणाइ	योजन प्रमाण	१०
जोइ	ज्योति	,,
जोणीवियाणओ	योनिओंको जाननेवाले...	१

झ

झरग	ध्यानकरनेवाला	३०
झाणविभत्ती	ध्यानविभक्ति	४४

ट

टका	पर्वतोंका ऊपरीभाग	४८

ठ

ठवणा	स्थापना	३४
ठाण	स्थानस्थानाङ्गसूत्र	४१
ठाविज्जइ	स्थापन किया जाता	४८
ठाणे	स्थानाङ्गसूत्रमें	,,
ठाविज्जति	स्थापन करते हैं	,,
ठाणसयविवाड्ढियाणं	सैकडों स्थानोंसे बढे हुए	,,
ठाहिस्ति	ठहरता है	३५

ढ

ढोवे	कर्मजाबुद्धिका ४ था दृष्टान्त	७७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जत्तिय	जितने	५६
जयं	जयको	१४
जक्खनामए	अज्ञात नामवाला	१७
जम्हा	जिसलिये	४२
जया	जब	"
जत्तिया	जितने	४४
जस्स	जिसके	"
जम्मणाओ	जन्म	५७
जच्चिरं	जितनी देर	"
जहिं	जहाँ	"
जत्तियाइं	जितने	"
जह	जहाँ	"
जओ	जब	५
जहा	जैसे	६२
जहन्न	छोटा	१२
जडिल	जकड़ा हुआ	१३
जणमज्झ	जनों के मनमें	१८
जंबुद्दीवपन्नत्ती	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	४४
जसवंत	यशोवंत	१४
जसभद्द	यशोभद्र	३६
जहन्न	छोटा जघन्यायु	५१
जंबूनाम	जम्बूस्वामी	२५
जावंजीव	जातिमंत जीवन	३५
जाया	पैदा हुए	५१
जाहग	मूषिकजातिका जीव	५१
जाणिया	जाननेवाली	"
जाणग	जाननेवाले	५५
जाणिय	जानकर	"
जिण	रागद्वेषविजयी जिन	३
जिणस्स	जिनदेवका	१
जिणसूरसेवणुअ	जिनरूपसूर्यकीप्रभासे मनुष्य	५
जिणवर	जिनदेवोंमें श्रेष्ठ	२४
जिब्भिंदियपच्चक्ख	जिह्वेन्द्रियसे प्रत्यक्ष	४
जिब्भिंदियवंजणुग्गहे	जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह	२६
जिब्भिंदिय अत्थुग्गहे	जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह	३१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जिब्भिंदिय ईहा	जिह्वाइन्द्रियसम्बन्धी ईहा ...	३२
जिब्भिंदिय अवाए ...	जिह्वेन्द्रिय अवाय . .	३३
जिणपण्णत्ता	जिनदेवोंसे कहेगए	४२
जिणवराणं ...	जिनेन्द्रदेवोंके	४४
जीवदया . ..	जीवोंके ऊपर दया	४७
जीवाजीवा	जीव अजीव ...	"
जीवाभिगमो . ..	जीवाभिगमसूत्र	४४
जे .. .	जो	५८
जेहिं	जिन्होंने	३२
जेसिं	जिनके	३८
जूय . .	यूका एक परिमाण . ..	१४
जूयपुहुत्त .. .	यूका पृथकुत्व २ से ९ तक ...	"
जोइसस्स	ज्योतिष विमानवासीका ..	१८
जोइट्ठाण . ..	ज्योतिःस्थान	११
जोयणाइ	योजन प्रमाण	१०
जोइ ...	ज्योति ...	"
जोणीवियाणओ ..	योनिओंको जाननेवाले... .	१

झ

झरग ...	ध्यानकरनेवाला ...	३०
झाणविभत्ती	ध्यानविभक्ति	४४

ट

टका	पर्वतोंका ऊपरीभाग	४८

ठ

ठवणा	स्थापना	३४
ठाणं ...	स्थानस्थानाङ्गसूत्र ...	४१
ठाविज्जइ . .	स्थापन किया जाता	४८
ठाणे	स्थानाङ्गसूत्रमें .. .	"
ठाविज्जति ..	स्थापन करते हैं	"
ठाणसयविवड्डियाण ...	सैकडों स्थानोंसे बढे हुए	"
ठाहित्ति . .	ठहरता है . .	३५

ड

डोवे .	कर्मजाबुद्धिका ४ था दृष्टान्त	७७

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
	ण	
णाणदंसणगुण	ज्ञानदर्शनगुण	१
णागज्जुणायरिए	नागार्जुनाचार्य नामक स्थविर ..	१६
णिक्खंते ..	निष्क्रान्त—निकलेहुए	१६
णिच्चं	नित्य—सदा	३१
	त	
तइए	तृतीय—तीसरे	२२
तओ	उसकेबाद ...	१६
तह	वैसे	२१
तहय	इसीतरह ..	२५
तत्तो	तदनन्तर	२७
तहवि	तो भी (तथापि)	१४
तत्थ	तत्र	१५
तत्थं	सूत्र वैनयिकी बुद्धिका ११ वीं दृष्टान्त	४५
तत्थेयं ..	वहांपर ..	१६
तत्थ	वहां	"
तक्खण	तत्काल उसीवक्त	६६
तत्थेगं ..	वहांपर एक ...	१६
तवनियम	तप नियम	११
तवविणए	तप विनयमें	११
तवसंजमे	तप संयममें ..	३६
तवा	तपस्यामें ..	५६
तमेव ...	उसीको ..	११
तस्स य ...	उसके ..	६१
तस्सेव	उसीके ..	११
तवायरणिज्ज	तपविधानके आचरण करनेवाले	५
तं ..	वह	२
तंदुलवेयालिय	तन्दुल वैचारिक	४४
तं जहा ..	जैसे कि ..	१
तसा ..	त्रसकायिक जीव ..	४४
तवायारे	तप आचारमें ..	
ताहे	उससमय ...	१६
ति	इति	२२

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
त्थि	स्त्री	७०
तित्थंकरा	तीर्थङ्कर	६३
तित्थ	चारतीर्थ	१५
तित्थयर	तीर्थंकर	२
तित्थसिद्धा	तीर्थमें सिद्ध होनेवाले	२१
तित्थयरसिद्धा	तीर्थङ्करसिद्ध	,,
तिसमयसिद्ध	तीन समयोंमें सिद्धहोनेवाले	२२
तिरियं	तिर्यक्–तिरछे	१५
तिवग्ग	त्रिवर्ग	७३
तिविह	तीन प्रकारका	५
तिण्ह	तीनोंका	४७
तित्तीस	तेंतीस	,,
तिन्नि वग्गा	तीन वर्ग	५४
तिन्नि उद्देसणकाला	तीन उद्देशनकाल	,,
तिगुणं	त्रिगुण–तीनगुणा	५७
तित्थपवत्तणाणि	तीर्थोंका आरम्भ	,,
तीसा	तीस सख्या	,,
तीस	तीस	,,
तीए	मूल	५७
तिसमुद्दखाय कित्ति	तीनसमुद्रोंतक ख्यातकीर्ति	२९
तिसमयाहारग	तीनसमयतक आहारकरनेवाला	,,
तुंगियं	तुंगिकानगरविशेष	२६
तुण्णाए	कर्मजाबुद्धिका ५ वां उदाहरण	७७
तुरगजुत्त	घोडासे युक्त	६
तेणं	उसमें	३६
तेहिं	उनसे	४२
तेयग्गि निसग्गाण	तेजोऽग्नि निसर्ग	४४
तेरासिय	त्रैराशिक मत विशेष	४२
तेवीस	तेस	४७
तेण	उसकेबाद	,,
तेरसमे	तेरहवां	५७
तेरसेव	तेरह ही	,,
ते	वे सब	३७
तेलुक्कनिरिक्खिय	तीन लोकसे देखे गए	४१
तिमिर ओघ विप्पमुक्के	अन्धकारसमूहसे रहित	५७

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
तवोकम्मगंडियाओ	तपःकर्मगण्डिका	५७
थ		
थावरा	स्थावर जीव	३६
थूभिंदे	पारिणामिकी बुद्धि का २१ वां उदाहरण	७२
थूलभद्दे ..	स्थूलभद्र पारि बुद्धिका १३ वां उदाहरण	७१
द		
दढ रूढ	दृढतासे पैदा हुआ	१२
दमसंघसूर	उपशमप्रधान संघ सूर्यका	१
दव्वे	द्रव्यमें ..	६१
दव्वाई	द्रव्य	१७
दसवेयालियं ..	दशवैकालिकसूत्र	४४
दसाओ	दशाश्रुतस्कन्ध	४४
दसट्ठाणगविवड्डियाणं	दशस्थानकोंसे बढ़े	४५
दह	ह्रद—जलाशयविशेष	
दसारगंडियाओ	गण्डिकानुयोगका चौथा भेद	५७
दव्वपज्जव	द्रव्यपर्याय	६१
दससमय सिद्ध	दशसमयोंमें सिद्ध	२२
दयागुणविसारए	दयागुणोंमें निपुण	४१
दसण	दर्शन	११
दंसिज्जंति	दिखाए जाते हैं	४१
दंसणायार	दर्शनाचारमें	४४
दस	दशसंख्यामें	१
दिट्ठिवाओ	दृष्टिवाद बारहवां अङ्ग	४
दिव्वा	देवसम्बन्धी	५५
दिट्ठ	देखा गया	६४
दिट्ठिवायस्स	दृष्टिवादका	५७
दिट्ठिविसमप्पयाणं	दृष्टिविषभावन—सूत्रोंका भेद	६४
दिट्ठिवाओवएसेणं	दृष्टिवादोपदेशसे ..	४
दीवसमुद्द	द्वीपसमुद्र ..	२६
दूसगणि	दुष्यगणी स्थविर ..	७
दुब्भिगंधा	दुर्गन्ध—बदबूवाली	५२
दुग्गं	दोनोंका	७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
दोसु	दोनोंमें	५७
देसेण	एकदेशसे	,,
दिवसतो	एक दिनके भीतर	५८
धम्मवर	श्रेष्ठ धर्म	१२
धरणोववाए	धरणोपपात श्रुतभेद	४४
धरणा	मतिज्ञानका नाम	२७
धणदत्ते	धनदत्त० पारिणा० बुद्धिका ७ वा उदाहरण	७०
धम्मायरिया	धर्माचार्य	५१
धम्मकहाओ	धर्मकथाऐं	,,
धारणा	मतिज्ञान का भेद	२७
धणु वा	४ हाथ का एक प्रमाण	१४
धणुपुहुत्त	२ से ९ धनुषतक	,,
धारेइ	धारण करता है	३६
धारए	धारण करनेवाले	३९
धिइपरक्कम	धैर्यरूप पराक्रम	३५
धीरा	धीर	९४
धुयरय	पापरूपमलको दूर करनेवाले	३
धिइवेलापरिगय	धैर्यरूप तटसे युक्त	११
धुवे	ध्रुव	५७

न

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
नमो	नमस्कार हो	४१
नमि	नमिनाथ २१ वें तीर्थङ्कर	१९
नेमि	नेमिनाथ २२ वें तीर्थङ्कर	,,
नपुसगलिङ्गसिद्ध	नपुसकलिङ्गी सिद्ध	२१
नर	मनुष्य	५७
न भवइ	नहीं होता है	,,
न भविस्सइ	नहीं होगा	,,
नत्थि	नहीं है	,,
नगराइ	नगर	५१
नवमे	नवमें	५१
न	नहीं	५७
नदणवणमणहर	नन्दनवनकेसमानमनोहर	१३
नगर रह	नगररूपरथ	१९

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
नंदिल खमण	नन्दिलक्षमण	३१
नंदिसेणे	पारिणामिकी बुद्धिका १ ठा उदाहरण	७०
नट्ठे	नष्ट हुआ	३६
नंदी	नंदीसूत्र	४४
नंदावत्ते	नन्द्यावर्त परिकर्मकाभेद	५८
नाणुज्जोय	ज्ञानोद्योत	१०
नागज्जुणवायए	नागार्जुनवाचकमुख्य	४०
नाण	ज्ञान	११
नाइलकुल	नागिल गोत्रविशेष	४४
नागज्जुणरिसीण	नागार्जुन ऋषिके	४५
नाणस्स	ज्ञानका	५
नाउं	जाननेके लिये	१७
नाणत्तं	ज्ञानत्व	१४
नामए	मुद्रारहित औत्पत्तिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण	७२
नासिक्कसुंदरीनंदे	पारिणामिकी बुद्धिका ५ वाँ उदाहरण	८
नाणाघोसा	अनेकतरहकी ध्वनिवाला	१२
नामधिज्जा	नाम	
नाणावंजणा	अनेकव्यञ्जनवाले	”
नायव्वा	जानना चाहिए	५४
नायाधम्मकहाओ	ज्ञाताधर्मकथाङ्ग	४१
नाणसुत्तं	ज्ञानसूत्र	४२
नाडयाई	नाटक आदि	”
नागपरियावलियाओ	नागपर्यावलिका	४४
नाणायारे	ज्ञानाचारमें	४६
नायाणं	उदाहरणरूप ज्ञातोंका	५१
नाया	जाननेवाले	४७
नागसुवण्णेहिं	नाग व सुवर्णके साथ	५५
निज्जुत्तिमीसिओ	निर्युक्तिसे मिला हुआ	१७
निच्चे	नित्य	५७
निचए	निश्चल रहनेवाला	
नासी	नहीं था	”
निरय	नरक	”
निरयगमणाई	नरकोंमें गमन	५६
निदंसिज्जंति	निदर्शन किया जाता	४६

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
निबद्ध	बंधा गया	,,
निकाइया	विशेष रीतीसे बांधेगए	,,
निज्जुत्तीओ	निर्युक्तिएँ	,,
निग्गंथाणं	साधुओंके	,,
निसीहो	निशीथ सूत्र	४४
निच्चुग्घाढिओ	सदा खुला हुआ	४३
निप्फज्जइ	निष्पन्न होता है	,,
निस्सिंघिय	अनक्षर श्रुत का भेद	५५
निच्छूढ	,, श्रुतका भेद	,,
नियमा	नियम	५६
नीसमियं	सुना हुआ	३९
निव्वोदए	छप्परसे गिरा हुआ पानी–विनयजा बुद्धिका १४ वां उदाहरण	७५
निमित्ते	निमित्तशास्त्र–विनयजा बुद्धिका पहला उदाहरण	७४
निरतर	लगातार	५५
निद्दिट्ठ	कहा हुआ	५६
निम्माओ	मायासहित–मायावी	५४
निच्च	सदा	५४
नियमूसिय	हठात् लिया हुआ	१३
निम्मल	निर्मल	९
निव्वुइ	निर्वृति–शान्तिसुख	२४
नेरइयाण	नारकिओंका	७
नेरइय	नारकी जीव	३४
नोइंदियपच्चक्ख	मानस प्रत्यक्ष	३
नोइंदियाण	नोइन्द्रिय	५
नो इंदिय अत्थुग्गहे	नो इन्द्रिय का अर्थावग्रह	३०
नो इंदिय ईहा	नो इन्द्रियसम्बन्धी ईहा	३२
नो इंद्रिय अवाए	नो इन्द्रियसम्बन्धी अवाय	३३
नो इंदिय धारणा	नो इन्द्रियसम्बन्धी धारणा	३४
नो	नहीं	३६
नो चेव	पक्षान्तरमें नहीं	,,

प

पभवो	उत्पत्तिस्थान	९

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
परतित्थियग्गह	परमतावलम्बी रूप ग्रहोंके	१
पहनासग	मार्गोंको रोकनेवाले	„
पंचमहव्वय थिरकण्णियस	पांच महाव्रतरूप स्थिर कर्णिकावाले	„
पयमित्थ	यहांपर पढ़के	११
पभवे	श्रीमहावीर के ५ वें गणधर प्रभवस्वामी	१३
पमायए	प्रमादशाली	१
पसन्नमण	प्रसन्नचित्त ...	११
पंथे	पथ–औत्पत्तिकी बुद्धिका ११ वां उदाहरण	६१
पखे	प्रासकरनेवाले ..	३६
पयाए	पैदलचलके	३७
पयओ	पवित्र होकर	४७
पणमामि	प्रणाम करताहूं	„
पाए ..	चरणोंको	४६
पावयणीणं	प्रवचनकर्ताके	„
पडिच्छगसएहिं ..	सैकड़ों विनीतशिष्योंसे ..	„
पणिवइए ..	प्रणतहुए	„
पणिमिऊण	प्रणामकरके	५
पवयणं	प्रवचन ..	५
पण्णत्ता ..	कहे गए हैं	५१
परिसं ..	सभाको ..	५२
पास	श्रीपार्श्वनाथस्वामी २३ वें तीर्थङ्कर	२१
पुप्फदंत ..	पुष्पदन्तस्वामी ९ वें तीर्थङ्कर ..	१
पुव्वाणं	पूर्वोंका	३५
पंडियजणसामण्णं	पण्डितोंके संमाननीय ..	४२
पइण्ण ...	प्रकीर्ण	४६
पभोए	स्वभावसे ही	४७
पुराणं ..	अठारहवां पुराण	४२
पायंजली	पातञ्जलिकृत ग्रन्थ ..	„
पुस्सदेवयं	पुष्यदैवत ग्रन्थविशेष ...	„
पुरिसं	पुरुषको	४३
पडुच्च	उद्देश करके ...	„
पण्णविज्जंति	प्रज्ञापन किये जाते हैं	„
परूविज्जंति	प्ररूपण किए जाते हैं ...	„
पज्जवक्खरं	पर्यायाक्षर	„
पडिवज्जा ..	प्राप्त करे	„

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
पभा	प्रभा	४३
पडिक्कमण	प्रतिक्रमण चतुर्थ अध्याय	४४
पच्चक्खाण	प्रत्याख्यान	,,
पण्णवणा	प्रज्ञापनासूत्र	,,
पमायप्पमाय	प्रमादाप्रमादश्रुत	,,
पोरिसिमंडलं	पौरुषीमण्डलश्रुत	,,
पुप्फियाओ	पुष्पिकाश्रुत	,,
पुप्फचूलियाओ	पुष्पचूलिका	,,
पइन्नगसहस्साइं	प्रकीर्णक सहस्र	,,
पारिणामियाए	पारिणामिकी बुद्धिसे	,,
पत्तेयबुद्धावि	प्रत्येक बुद्ध भी	,,
परिपुण्णग	श्रोताके उदाहरणमें चतुर्थ दृष्टान्त	५१
पण्हावागरणाइं	प्रश्नव्याकरण १० वां अङ्ग	४४
पंचविहे	पांच प्रकारके	,,
परित्ता	परिमित	,,
पडिवत्तीओ	प्रतिपत्ति	,,
पढमे	प्रथम	,,
पणवीसं	पचीस	,,
पंचासीइं	पचासी	,,
पयसहस्साइं	हजारों पद	,,
पयग्गेणं	पदपरिमाणसे	,,
परसमए	अन्यमत	४७
पासंडिय	अन्यतीर्थी	,,
पब्भारा	झुके हुए शिखर	४८
परूवणा	प्ररूपणा	,,
पल्लवग्गे	पल्लवाग्र—संक्षिप्त परिचय	४९
पचमे	पांचवें	५०
पव्वज्जाओ	दीक्षाएँ	५२
परियागा	दीक्षासमय	,,
पोसहोववास	पौषध उपवास	,,
पडिवज्जणया	स्वीकार करना	,,
पडिमाओ	श्रमण और श्रावकोंका व्रतविशेष	,,
पाओवगमणाइं	पादपोपगमन—संथारा	,,
पुणबोहिलाभा	फिर सम्यग्-ज्ञानका लाभ	,,
पसिणसयं	सैकडों प्रश्न	५५

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
पसिणापसिणसयं	पूछे बिनपूछे सैकडों प्रश्न	५५
पणयालीसं	पैंतालीस	"
पंचविहे	पांच प्रकारके	५७
परिकम्मे	परिकर्म दृष्टिवादका १ प्रकार	
पत्तेयबुद्धसिद्ध	प्रत्येकबुद्ध होकर सिद्ध हुए	२१
पुरिस लिंगसिद्ध	पुरुषलिंगी सिद्ध	"
परंपरसिद्ध	परम्परा—क्रमानुसार सिद्ध	२२
पच्चक्खजोग	प्रत्यक्षयोग्य जानने योग्य	६७
पच्चक्खनाण	प्रत्यक्षज्ञान	२३
परोक्खनाण	परोक्षज्ञान	२४
पण्णवयंति	प्रज्ञापन करते हैं	१
पुव्व	१४ पूर्व ज्ञानविशेष	६६
पणिय	औत्पत्तिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण	७
पूयइ	कर्मजा बुद्धिका १ वां उदाहरण	१
पडए	कर्मजा बुद्धिका ७ वां उदाहरण	"
पड	औत्पत्तिकी बुद्धिका ५ वां उदाहरण	
पइ	पति औत्प बुद्धिका १५ वां उदाहरण	"
पुत्ते	पुत्र औत्प बुद्धिका १६ वां उदाहरण	
पत्ते	पत्र औत्प बुद्धिका १७ वां उदा	"
पायस	खीर " " ६ वां उदा	
पंचपिओ	" " १३ वां उदा	"
पंच	पांच	३२
पच्चाउट्टणया	प्रत्यावर्तनता—वारंवार आवृत्ति अवायके पांच नामोंमें दूसरा नाम.	३३
पंचनामधिज्जा	पांच नाम हैं	३४
पइट्ठा	प्रतिष्ठा—धारणाका चतुर्थ भेद	"
पट्टवणं	प्ररूपणा	३५
पडिबोहगदिट्ठंतेण	प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे	
पुरिसे	पुरुष	
पडिबोहिज्जा	जगावे या समझावे	
पण्णवग	प्रज्ञापक बोलनेवाला	"
पुग्गल	पुद्गल	
पण्णवए	प्रज्ञापनकरनेवाले	३६
पक्खिवेज्जा	प्रक्षेप करे	"
पक्खिप्पमाण	प्रक्षेप क्रियाजाताहुआ	"

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
पवाहेहित्ति	प्रवाहयुक्त करेगा ...	३६
पूरिय	पूर्ण	,,
पविसइ	प्रवेश करता है	,,
पासिज्जा	देखे ...	,,
पडिसवेइज्जा	अनुभव करे ...	,,
पुट्ठं	स्पृष्ट—स्पर्श किये ..	८४
पराघाए	प्रत्याघात होनेपर— पीछे टकरानेपर	८६
पन्ना	प्रज्ञा—आभिनिबोधिक ज्ञानका ९ मां नाम	८७
पूइएहिं	पूजित हुए तीर्थङ्करोंने	४१
पणीयं	प्रणीत ...	,,
पुव्वगए	पूर्वगत दृष्टिवादका ३ रा भेद	,,
पुट्ठसेणिया	पृष्टश्रेणिका परिकर्मका ३ रा भेद	,,
पाढो आगासपयाइ	सिद्धश्रेणिका परिकर्मका चतुर्थ भेद	,,
पडिग्गहो	परिग्रह मनुष्यश्रेणिका परिकर्मका ११ वां भेद	,,
पुट्ठावत्त	पृष्टावर्त—पृष्टश्रेणिकापरिकर्मका ११ वां भेद	,,
पण्णवीसा	पचीस ..	,,
पन्नरस	पन्द्रह—पञ्चदश ..	,,
पाणाउपुव्व	प्राणायुःपूर्व—पूर्वगतका १२ वां भेद	,,
पच्चक्खाणप्पवाय	प्रत्याख्यानप्रवाद—,, ९ मां भेद	,,
पुव्वभवा	पूर्वभव	,,
परिमाणं	परिमाण—संख्या	,,
परियट्टण	पर्यटन	,,
पाहुडा	प्राभृत—दृष्टिवादका प्रकरण विशेष	,,
पाहुड पाहुडा	प्राभृत प्राभृत ...	,,
पाहुडियाओ	प्राभृतिका ...	,,
पाहुड पाहुडियाओ	प्राभृत प्राभृतिका ..	,,
पडुप्पण्णकाले	उपस्थित—वर्तमानकालमें	,,
पंचत्थिकाए	पञ्चास्तिकाय	,,
पुव्वविसारया	१४ पूर्वोमें निपुण	,,
पडिपुच्छइ	पीछे शङ्कास्थलको पूछता है	,,
पसंग पारायणं	अवसरमें निपुण होना ...	,,
परिणिट्ठ	परिनिष्ठित—पूर्ण ..	,,
पढमो	पहला	,,
परिणयापरिणय	बाईस प्रकारके सूत्रोंमें २ रा भेद	११

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
	फ	
फुसेंत	चमकता हुआ	३१
फलभर	फलसमूहका भार	३१
फुट्ट	फूटता है	५४
फासिंदियवसट्ट	स्पर्शेन्द्रियपरवश	४
फासिंदिय वेजनुगमो	स्पर्शेन्द्रियपथ्यअनुगामी	२१
फासं	स्पर्शको	३१
फासेति	यह स्पर्श है ऐसा	
फासे	स्पर्शको	१
फासिंदियदुद्दंतत्तणस्स	स्पर्शेन्द्रिय अधिक असर	२१
फलविवागे	फलविपाकोंको	५६
	ब	
बहुविहसब्भाव	अनेक प्रकारकी स्वाभावोंसे	४४
बहुनयर	अनेक नगरोंमें	[illegible]
बहुमायय	बहुमानक अपविशाल	९
बहू	अनेक तारकों	६३
बहुपुट्ठ	बहु और पुष्ट	८५
बहवे	अनेकों	४३
बहुमाणसामिस्स	बहुमानसामीके	४४
बत्तीसइ	बत्तीस प्रकारकी	४०
बाहुपविण्णा	बाहुरूप	५५
बलदेव गणियाओ	बलदेव गणिका	५७
बारसमे	बारहमें	११
बाह्मणं	ब्राह्मण–स्थानविशेष	१४
ब्राह्मण पुरुषं	ब्राह्मण पुरुष–२ से ९ तक	११
बालुय	औत्पत्तिकी बुद्धिका ५ वीं उदाहरण	७
बिंति	कहते हैं	७८
बहुल	बहुलनामक स्थविर	२७
बंभदीवगसीहे	ब्रह्मद्वीपिक शाखाके	२१
बाहिरि	बाहर	४८
बिईए	दूसरी	२२
बिराली	ओमकका १ वीं उदाहरण	५१
बीए	दूसरे	४०
बीसा	बीस	५७

शब्द	अर्थ	सूत्रा
बुद्धबोहिय	बुद्धबोधित	२
बुद्धवयणं	बुद्धवचन–बौद्धग्रन्थ	४
बुद्धी	बुद्धि	६
बुद्धीए	बुद्धिका	४
बोद्धव्वो	समझना चाहिए	५
बोहिलाभ	सम्यग्ज्ञानका लाभ	५
बीओ	दूसरा	१
बाढक्कार	अङ्गीकारसूचक ध्वनि	१
बुद्धिगुणेहिं	बुद्धिगुणोंसे	१
बीईवइंसु	अन्त करगए	५
बीईवयति	अन्त करते हैं	
बीईवइस्संति	अन्त करेंगे	

भ

शब्द	अर्थ	सूत्रा
भयवं	भगवान्	
भद्द	भद्र–कल्याण	
भगवओ	भगवान्का	१
भद्दबाहु	भद्रबाहु स्वामी स्थविर	२
भणग	कथन करनेवाले	३
भद्दगुत्त	स्थविर भद्रगुप्त	३
भवियजण	भव्यजन	४
भवभय	ससारकी भीति	४
भगवते	भगवन्तोंको	५
भवे	संसारमें	५
भवपच्चइयं	भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान	
भरिज्जसु	भरा–पूर्ण किया	५
भाग	भाग–हिस्सा	५
भरहम्मि	अर्द्धभरतमें	५
भइयव्वा	चाहिए	६
भंते !	भगवन् !	१
भावे	भावोंको	१
भावओ	भावसे	१
भवत्थकेवलनाण	भवस्थ केवलज्ञान	
भासइ	बोलता है	६
भूयहियप्पगब्भे	जीवोंके हितमें निर्भय	४
भूयदिन्न	भूतदिन्न नामके स्थविर	

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
भेरी	वाद्यविशेष, श्रोताका ११ वां उदाहरण	५१
भूया	समान होते हैं	५१
भरहसिल	औत्पत्तिकी बुद्धिका प्रथम उदाहरण	७
भरह	औत्पत्तिकी बुद्धिका अलग उदाहरण	८
भरनित्थरणसमत्था	कठिन कार्यको पार लगानेमें समर्थ	७१
भवंति	होते हैं	११
भविस्सइ	मर जायगा	
भगवंतेहिं	भगवन्तोंसे	४१
भावओ	भावसे	३७
भयणा	भजना—अनिश्चयपन	४१
भत्तपच्चक्खाणाइं	आहारत्याग	५२
भगवंताणं	भगवन्तोंके	५७
भवसिद्धिया	भवसिद्धिक	८
भद्दबाहुगणिया	भद्रबाहुगणिका	८
भवियमभविया	भव्य अभव्य	८
भवइ	होता है	८
भविस्सइ	होगा	८
भणिओ	कहागया	१७
भत्ताई	भक्त	५७
भासासमसेढीओ	भाषाकी सम्यक्श्रेणिसे	४६
भारहं	भारतनामक ग्रन्थ	७२
भागवयं	भागवत ग्रन्थ	७२
भासा	भाषा	४७
भिक्खु	भिक्षु	७२
भेयवत्थू	भेदवस्तु	४२
भिन्नेसु	अपूर्ण पूर्वधारिओंमें	४१
भीमासुरक्खं	भीमासुरोक्त ग्रन्थ	७२
भुवि	भूमा	५७
भावाणं	भावोंके	४८

म

महप्पा	महात्मा	
महावीरे	भगवान् महावीर	२
मल्लि	मल्लिनाथस्वामी १९ वें तीर्थङ्कर	११
मंडिय	मण्डितपुत्र नामक गणधर	२१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
माढर	माठर ग्रन्थविशेष	२६
महागिरि	महागिरि नामक स्थविर	२७
महुरवाणिं	मीठी वाणीवाले	४७
मद्दवरयाणं	मृदुतामें सलग्न	४८
महिस	श्रोताका ६ ठा दृष्टान्त	५१
मसग	श्रोताका ७ वां दृष्टान्त	,,
मणपज्जवनाण	मन.पर्यवज्ञान	१
मणुस्साण	मनुष्योंका	५
मज्झगय	मध्यगत	१०
मग्गओ अंतगय	पृष्ठतः अन्तगत	,,
मणी	पारिणामिकी बुद्धिका १८ वा उदाहरण	७०
महुसित्थ	औत्पत्तिकी बुद्धिका १७ वां उदाहरण	,,
मिंढ	औत्प बुद्धिका ३ रा उदाहरण	,,
मग्ग	औत्प बुद्धिका १४ वां उदाहरण	,,
मत्थए	मस्तकपर	१०
महल	महान्	११
मणुयलोए	मर्त्यलोकमें	५९
मइपुव्व	मतिज्ञानपूर्वक	२४
मई	मति–आभिनिबोधिक ज्ञानका नाम	,,
मइनाण	मतिज्ञान	२५
मग्गणया	मार्गणता–ईहा–मतिज्ञानका नाम	३२
मल्लग	सरावा–मिट्टीका छोटा पात्र	३६
मग्गणा	मार्गणा–मतिज्ञानका नाम	८७
महिय	पूजित	४१
महाकप्पसुय	महाकल्पश्रुत	४४
महापण्णवणा	महाप्रज्ञापना	,,
महानिसीह	महानिशीथसूत्र	,,
महल्लिया विमाण–पविभत्ति	महतीविमान–प्रविभक्ति ग्रन्थ	,,
महासुमिण भावणाण	महास्वप्नभावन नामक ग्रन्थ	,,
मरणविभत्ती	मरणविभक्ति नामक ग्रन्थ	,,
मनोगए	मनोगत भावोंको	१८
मडलपवेस	मण्डलप्रवेश ग्रन्थ	४४
मज्झिमगाण	मध्यके तीर्थङ्करोंके	,,
मणुस्ससेणियापरिकम्मे	मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म	५७
मणुस्सावत्त	मनुष्यावर्त परिकर्मका भेद	,,

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
मई.	मही (पृथ्वी)–औत्प. बुद्धिका २५ वां उदाहरण	७२
माउयापयाई	मातृकापद–परिकर्मका भेद ...	५७
माया	मायानिर्मित	४४
माणुसखित्तनिबद्ध	मनुष्यक्षेत्रमें होनेवाला ..	१८
मिच्छदिट्ठि	मिथ्यादृष्टि	१
मिच्छादिट्ठियाईं	मिथ्यादृष्टिओंसे	"
मिच्छासुयं	मिथ्याश्रुत	"
मिच्छत्तपरिग्गहियाइं	मिथ्यात्वसे परिगृहीत	"
मियछावय ..	मृगका बच्चा	४६
मिउमद्दवसंपन्ने	मृदु मार्दवसे, युक्त	४
मुणिवरमइंद एग..	मुनिवररूप मृगेन्द्रसे पूर्ण	१४
मुद्दियकुवलयनिभ	द्राक्षा व कुवलयसमान कान्तिवाले ..	३५
मुहुत्तंतो	मुहूर्तके भीतर	५८
मोत्ति	कर्मजा बुद्धिका ५ वां उदाहरण	७७
मुद्दिय	औत्प. बुद्धिका १६ वां उदाहरण	७२
मुहुत्तमद्द ..	अल्प मुहूर्त	८४
मुग्ग	मुद्ग–मोठनामक धान्यविशेष	४२
मूलपढमाणुओगे	मूलप्रथमानुयोग	५७
मुणिणो ..	साधु	५७
मुणिवरवसभे	मुनिवरोंमें श्रेष्ठ	
मुत्तसुहे	मोक्षसुख	"
मूल	मूल रचना–अनुयोगविधि ..	६६
मेहा	मेधा–मतिज्ञानका एक नाम ...	३१
मेरुसमुद्दर	वाल्मीकि जालालेवर ..	४१
मोरगसंत	गालसे हुए मोर ..	१५
मोरियपुत्ते	मौर्यपुत्र–गणधर	२१
मेयज्जे ..	मैतार्य नामक गणधर	२१

य

य	और	३१

र

रयणद्दिष्वोसहिगुह ...	रत्नोंसे सहित ओषधीयुक्त कन्दरावाला	१४
रसंत ..	शब्द करता हुआ	१५
रुंदस ..	विस्तीर्ण ..	११
रविसमचरित्तसद्दरस ...	चारित्रपर्वतके रक्षक ...	११

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
रयणकरंडगभूय	रत्नोंकी पेटीके समान	३२
रक्खिओ	रक्षित रक्खा	,,
रेवइनक्खत्तनाम	रेवतीनक्षत्र नामवाले	३५
रयणमिव	रत्नके समान	५२
रुययम्मि	रुचकद्वीपमें	५९
रयणि	रत्निप्रमाण—१ हाथ	१४
रूविदव्वाइं	रूपी द्रव्योंका	१६
रयणप्पमाए	रत्नप्रभानामकपृथ्वीके	१८
रुक्ख	वृक्ष	७०
रहिए	रथिक—विनयजा बुद्धिका ११ वां उदाहरण	७४
रुक्खाओ	वृक्षसे	७५
राया	राजा	७९
रावेहिति	आर्द्र (गीला) करेगा	३६
रूवं	रूप	,,
रूवत्ति	कोई रूप है ऐसा	,,
रस	रसको	,,
रसोत्ति	यह रस है	,,
रसे	रस	,,
रसणिंदिय—लद्धिअक्खरं	रसनेन्द्रिय—लब्ध्यक्षर	३९
रायपसेणियं	राजप्रश्नीयसूत्र	४४
रामायणं	रामायण—रामचरित्र	४२
रायाणो	राजा	,,
रासिबद्धं	परिकर्मका अवान्तर भेद	५७
रायवर सिरीओ	श्रेष्ठ राजलक्ष्मी	,,

ल

लक्खण	लक्षण	७४
लक्खणपसत्थे	लक्षणोंसे प्रशस्त—उत्तम	४९
लद्धिअक्खर		
लिक्ख	लिक्षा—प्रमाणविशेष	१४
लिक्खपुहुत्त	लिक्षा पृथक्त्व—२ से ९ तक	,,
लेह	लेख	४२
लोगबिंदुसारपुव्व	लोकबिन्दुसार—पूर्वोंका एक भेद	५७
लोग	लोक	१४
लोयालोय	लोकालोक	४२

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
लोहिच्चणाम	लौहित्य नामक स्थविर	३६
लोगायर्य	लौकायतिक-मतका ग्रन्थ	४२

व

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
वइसेसियं	वैशेषिक-नैयायिक दर्शन	४२
वग्गचूलिया	वर्गचूलिका	४४
वण्णोववाए	वरुणोपपात-ग्रन्थविशेष	,,
वणसंडाई	वनखण्ड	५१
वत्थूणि	वस्तु-दृष्टिवादका एक अङ्ग	५७
वट्टमाण	वर्तमान	११
वट्टमाणचरित्त	वर्तमान चारित्रवाला	१२
वड्ढइ	बढ़ता है	,,
ववसायंमि	व्यवसाय निश्चयमें	८३
वंजणं	व्यञ्जन-वर्णभेद या इन्द्रिय	३६
वयंते	बोलते हुएको	,,
वयासी	बोला	
वंजणुग्गहे	व्यञ्जनावग्रह	२८
वड्ढइ	वर्धकि-कर्मजा बुद्धिका ९ वाँ उदाहरण	७७
वहे	पारिणामिकी बुद्धिका १५ वाँ उदाहरण	७
वण्णपरिणाम	वर्णोंका परिणाम	७
वण्हीदसाओ	वासुदेववाला श्रुत	६७
वण्णिओ	वर्णन किया	६१
ववहारो	व्यवहार	४४
वंदणयं	वन्दना अध्ययन	,,
वाई	वादी	५७
वागरण	व्याकरण	४२
वावत्तरिकलाओ	बहत्तर कलाएँ	,,
वायणा	वाचना-पाठ	४४
वक्खाण-सहस्साइं	हजारों व्याख्यान	५
वासं	वर्ष	५६
वासपुहुत्तं	वर्षपृथक्त्व २ से ९ वर्षतक	
वासुदेवगंडियाओ	वासुदेवगण्डिका	५७
विगप्पा	विकल्प-भेद	६१
विउलमई	विपुलमति	१८
विउलतरं	बहुत अधिक विस्तारवाला	,,

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
वितिमिरतराए	अन्धकाररहित	१८
विसुद्धतर	अतिशय शुद्ध	”
विण्णत्ति	विज्ञप्ति–विज्ञापना	६६
विणयसमुत्था	विनयसे होनेवाली	७३
विसेसिया	विशेषतायुक्त	२५
वियागरे	कथनकरे	८५
विसुज्झमाण	विशेषतासे शुद्ध होता हुआ	१२
विन्नाणे	विशेषज्ञान	३३
विवागसुय	विपाकसूत्र	४१
विवाहपन्नत्ति	व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र)	”
विज्जाचरण विणिच्छओ	विद्याचरण–विनिश्चय ग्रन्थ	४४
विहारकप्पो	विहारकल्प	”
विमाण पविभत्ती	विमान प्रविभक्ति	”
वित्तीओ	वृत्ति–व्यवहार	”
विण्णाया	विज्ञाता–विशेषज्ञ	”
विवाहे	भगवती सूत्रमें	५०
विआहिज्जति	व्याख्यात किये जाते हैं	”
विआहिज्जति	व्याख्यात किया जाता	”
विचित्ता	विचित्र–विविधतायुक्त	५३
विज्जाइसया	अतिशययुक्त विद्याएँ	”
विवागसुयं	विपाक सूत्र	५६
विप्पजहणसेणिया	विप्रजहच्छ्रेणिका–परिकर्मका भेद	५७
विप्पजहणावत्त	विप्रजहदावर्त	”
विविह	विविध	”
विराहित्ता	विराधना करके	”
विही	अनुयोग–विधि	९७
वीयरागसुय	वीतराग श्रुत	४४
विवाहचूलिया	व्याख्या चूलिका	”
वीरियायारे	वीर्याचार	”
वीमंसा	विमर्श–मतिज्ञानका ३ रा भेद	७८
वियालणे	ईहाका स्थानविचालन	८३
वियावत्तं	सूत्रका १५ वाँ भेद	५६
वीसेढी	विषम श्रेणि	८६
वुच्छित्ति	विच्छेद होना	४३
वूह	समूह	४७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
वुड्ढीए	वृद्धिसे	४१
वुड्ढी	वृद्धि	”
वुत्ता	कहे गए	६८
वेया	वेद	४२
वेणइया	विनयजा बुद्धि	४४
वेसमणोववाए	वैश्रमणोपपात	”
वेलंधरोववाए	वेलन्धरोपपात	”
वेणइयवाईणं	वैनयिक वादियोंका	४०
वेला	वृद्धि—कालविशेष	४४

स

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
सउणरुयं	पक्षियोंका शब्द—निमित्तशास्त्र	४२
सगडभद्दियाओ	शकटभद्रिका—ग्रन्थविशेष	”
सच्छंदं	स्व-इच्छा	”
सट्ठितंतं	षष्टितन्त्र ग्रन्थविशेष	
संगोवंगा	साङ्गोपाङ्ग—अङ्ग उपाङ्गोंके साथ	”
संखिज्जा	संख्येय—संख्या करने योग्य	४४
संकिलिस्समाण	दुःखी या मलिन होता हुआ	१३
संखिज्जसमयसिद्ध	संख्यात समयके सिद्ध	२२
संखिज्जइभागं	संख्येयवां भाग	१४
संखिज्जवासाउय	संख्येय वर्षकी आयुवाले	१७
संगहणीओ	संग्रहणियाँ	४४
संजममहामंदर	संयमरूप महामेरु पर्वत	१६
संघ	साधु साध्वी, श्रावक श्राविकारूप संघ	१९
संजमविहिन्नू	संयमविधिज्ञ	४२
संडिल्ल	शाण्डिल्य आचार्य	२६
संमुच्छिम	बिना गर्भके उत्पन्न होनेवाले जीव	१७
संलेहणा	संलेखना	४४
संजयासंजय	संयतासंयत—श्रावक	१७
संजयसम्मदिट्ठि	संयतसम्यग्दृष्टि—साधु	”
सम्मामिच्छदिट्ठि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि—मिश्रदृष्टि	”
सम्मदिट्ठि	सम्यग्दृष्टि	”
संति	शान्तिनाथजी १६ वें तीर्थङ्कर	२१
संभव	सम्भवनाथजी ३ रे तीर्थङ्कर	”
ससि	शशि—चन्द्रप्रभजी ८ वें तीर्थङ्कर	”

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
सभूय	सम्भूत नामक स्थविर	२६
सज्झायमणतधरे	अपरिमित स्वाध्यायोंको धरनेवाले ...	३८
समुप्पज्जइ	उत्पन्न होता है	८
समुव्वहमाणे	अत्यन्तरह वहन करता हुआ ...	१०
सव्वओ समंता	चारों तरफमे	१३
समासओ	संक्षेपसे	१६
सव्वओ	सब ओरसे	१२
सव्वदरिसीहिं	सर्वदर्शिओंने . ..	४१
सव्वदिसाग	सर्वदिशा सम्बन्धी	५६
सव्वयहु	सबसे अधिक	१३
सव्वभावाण	सब भावोंके	१८
सव्वदव्वाइं	सब द्रव्योंको	२२
सव्वजीवाणं पि	सभी जीवोंका	४३
सव्वदव्व परिणाम	सब द्रव्योंके परिणामको ...	२२
समएहिं	सिद्धान्तोंसे	४२
समाणा	होते हुए	,,
सम्मत्त परिग्गाहियाइ ...	सम्यक् रूपसे ग्रहण किये गए ..	,,
सम्मत्तहेउत्तणओ ...	सम्यक्त्वके हेतु होनेसे... ...	,,
सपक्ख दिट्ठिओ	अपने पक्षकी दृष्टिओंको ..	,,
सपज्जवसियं	अन्तवाला या श्रुतका एकभेद ...	४३
सव्वागासपएसग्गं ...	सर्व आकाशके प्रदेशायको ..	४३
सव्वागासपएसेहिं ...	सर्वाकाश–प्रदेशोंसे	,,
समवाओ	समवायाङ्गसूत्र	४१
ससमए	स्वसिद्धान्त	४७
ससमयपरसमए	स्वपर दोनों सिद्धान्त ...	,,
सत्तट्ठीए	सततठ	,,
सब्भावुब्भावणया ...	सद्भावोंका विस्तार करना ...	४६
समुद्देसणकाला	समुद्देशनकाल ...	०
सव्वभावदेसणयं ...	सर्व भावोंका उपदेशक ...	२४
सयय	सदा	१९
सरिव्वय	समान वयवाले	२७
समणाणं	साधुओंका	४४
समुट्ठाणसुए ..	समुत्थान श्रुत	,,
सजोगिभवत्थ०	सयोगिभवस्थ०	१९
सयंबुद्धसिद्ध	स्वयम्बुद्धसिद्ध–सिद्धोंका भेद .	२१

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
सलिंगसिद्ध	स्वलिङ्गसिद्ध–सिद्धोंका भेद	२१
समुद्द	समुद्र	१६
सन्निपंचिंदियाणं	समनस्क पञ्चेन्द्रिय जीव	१७
सरड	औत्पत्तिकी बुद्धिका ६ ठा उदाहरण	७
सयसहस्स	औत्पत्तिकी बुद्धिका २६ वाँ उदाहरण	७२
सा	वह	
सासय	शाश्वत	०
साहिओ	साधिक	५६
सामज्ज	श्यामार्य नामक स्थविर	२८
साइ	स्वाति आचार्य	२८
साइयं	सादिक श्रुतका १ भेद	७३
सीया साडी	सीता साड़ी–वैनयिकी बुद्धिका १० वाँ उदाहरण	७५
साहुक्कार	साहुकार–वणिक	७६
साहू	साधु–पारिणामिकी बुद्धिका ७ वाँ उदा.	७६
सावग	श्रावक–पारिणामिकी बुद्धिका ८ वाँ उदा.	८१
सावत्थी	श्रावस्ती–नगरका नाम	३३
सद्दाइ	शब्द आदि	३६
सद्दं	शब्दको	
सण्णा	संज्ञा–मतिज्ञानका नाम	४७
सई	स्मृति	
सम्मसुयं	सम्यक् श्रुत–श्रुतज्ञानका १ भेद	३८
[illegible]	[illegible]	३६
[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	७१
[illegible]	[illegible]	०
[illegible]	पारिणामिकी बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण	८१
[illegible]	[illegible]	५
[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	३
[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	६
[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	५
[illegible]	[illegible]	१२
[illegible]	[illegible]	१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
समणगणसहस्सपत्त	साधुसमूहरूप विशाल कमल	८
संघचक्क	संघरूपचक्र	५
संघसमुद्द	संघरूप समुद्र	११
संघमहामंदर	संघरूप मन्दराचल	१७
सावगजणमहुअरि	श्रावकरूप भ्रमर	८
संघनगर	संघरूप नगर	४
सिट्ठि	पारिणामिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण	७९
सिल	औत्पत्तिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण	०
सिक्खा	,, ,, २३ वा उदाहरण	०
सिज्जंस	श्रेयांसनाथजी, ११ वें तीर्थङ्कर	१९
सिज्जंभव	शय्यम्भवस्थविर	२५
सीयल	शीतलनाथजी, १० वें तीर्थङ्कर	२०
सिलायलुज्जल	शिलातल उज्ज्वल	१३
सीलपडागूसिय	शीलरूप पताकासे उच्च	६
सिलोगा	श्लोक	०
सीसा	शिष्य	०
सुयरयण	श्रुतरूप रत्न	७
सुअ	श्रुत	२
सुदर कंदर	सुन्दर कन्दरा	१४
सुरासुरनमंसिय	देवदानवोंसे वन्दित	३
सुरभिसील	शीलरूप सुगन्धियुक्त	१३
सुयनाणपरोक्ख	श्रुतज्ञानपरोक्ष	३८
सुणेइ	सुनता है	८५
सुमिणे	स्वप्न	३६
सुमिणेत्ति	स्वप्न है	,,
सुणिज्जा	सुने	,,
सुत्त	सूत्र	,
सुयनिस्सिय	श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका भेद	८१
सुत्तत्थ	सूत्रार्थ	७३
सुयअन्नाणं	श्रुत अज्ञान	२५
सुयनाण	श्रुतज्ञान	,,
सुहुमयर	अधिक सूक्ष्म	६२
सुहुमो	सूक्ष्म	६१
सूइज्जइ	सूत्रित किए जाते हैं	४७
सूयगडे	सूत्रकृताङ्ग	,,

शब्द	अर्थ
सुयक्खंध	श्रुतस्कन्ध
सुमिणभावणाओ	स्वप्नभावना नामक ग्रन्थविशेष
सूरपण्णत्ती	सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र
सुट्ठुवि	अच्छीतरह भी
सुगंधि	सौरभ
सुयधारयंतसिहर	सूत्रशाखा मुखरूप शिखरवाला
सूर	सूर्य
सुमइ	सुमतिनाथजी, ५ वें तीर्थंकर
सुप्पभ	सुप्रभनाथजी, ६ वें तीर्थंकर
सुपास	सुपार्श्वनाथजी, ७ वें तीर्थंकर
सुहम्म	सुधर्मास्वामी, ५ वें गणधर
सुहत्थि	सुहस्ति स्थविर
सुनिच्चाणिच्चणिच्च	नित्य अनित्यके ज्ञाता
सुसमण	अच्छे साधु
सुयसागरपारग	श्रुतसागरके पारगामी
सुकुमाल	अतिशय मृदु
सुसुमिण दुस्सुमिण धारये	सुस्वप्न दुःस्वप्नके धारक
सेलघण	श्रोताका प्रथम उदाहरण
से	वह
सेसा	बाकी बचे
सोइंदिय	श्रोत्रेन्द्रिय

ह

शब्द	अर्थ
हत्थि	औत्पत्तिकी बुद्धिका १ [illegible]
हत्थम्मि	हाथमें
हरिवंसवंसविभूसओ	हरिवंशविभूषक
हवइ	होता है
हंस	पक्षीविशेष
हारिय	हारित गोत्र
हारियगुत्त	हारीतगोत्र
हिमवंत खमासमणे	हिमवन्तनामक
हिमवंतमहंतविक्कमे	हिमवानके तुल्य
हियनिस्सेयसकरि	हित न [illegible]
हीयमाण	घटता हुआ
हीयमाणक	हीयमान [illegible]

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
हुंति	होते है	३६
हुंकार	स्वीकारसूचक ध्वनि	९६
हेउ	हेतु	३८
हेतुसत	सैकडों हेतु	१४
हेऊ	हेतु	५७
हेऊवएसेण	हेतूपदेशसे	४०
हेरण्णिए	कर्मजा बुद्धिका प्रथम उदाहरण	७७
होइ	होता है	५१



शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
सुयक्खंधा	श्रुतस्कन्ध	४४
सुमिणभावणज्झयणं	स्वप्नभावना नामक ग्रन्थविशेष	,
सूरपण्णत्ती ...	सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र	„
सुट्ठुवि	अच्छीतरह भी	४३
सुगंधि ...	सौरभ ...	१८
सुयधारसंमविहर ...	श्रुतधारा श्रुतरूप शिखरवाला	„
सूर	सूर्य	१९
सुमइ ...	सुमतिनाथजी, ५ वें तीर्थङ्कर	२
सुप्पभ ...	सुप्रभनाथजी, ६ वें तीर्थङ्कर	„
सुपास	सुपार्श्वनाथजी, ७ वें तीर्थङ्कर	
सुहम्म ...	सुधर्मास्वामी, ५ वें गणधर ...	२५
सुहत्थि	सुहस्ति स्थविर ...	२७
सुमुणियणिच्चानिच्चं	नित्य अनित्यके ज्ञाता ...	४६
सुसमण	अच्छे साधु ...	४७
सुयसागरपारए	श्रुतसागरके पारगामी	३
सुकुमाल ...	अतिशय मृदु ...	४९
सुसमिय सुसमण धारये ...	सुशान्त सुश्रमणके धारक ...	४९
सेलघण ...	श्रोताका प्रथम उदाहरण	५१
से	वह	३
सेसा ...	बाकी बचे	
सोइंदिय	श्रोत्रेन्द्रिय ...	३

ह

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
हत्थि	औत्पत्तिकी बुद्धिका ६ ठा उदाहरण	७१
हत्थम्मि ...	हाथमें	५८
हरिवंसगंधिवामो	हरिवंशगणिका	५७
हवइ ...	होता है ...	६१
हंस	पक्षीविशेष ...	५१
हारिय ...	हारित गोत्र	२८
हारियगुत्त ...	हारितगोत्र ...	„
हिमवंत खमासमणे	हिमवन्तनामक क्षमाश्रमण ...	३९
हिमवंतमहंतविक्कमे	हिमवान्के तुल्य महापराक्रमी	३८
हियनिव्वुइकरवाई	हित व निर्वाणसुखको देनेवाली ...	१८
हुयवह	जलता हुआ	[illegible]
हेमजालक	हेमजालक-आभरण ...	९

सूचना—विहारमें होनेसे शब्दकोष पूज्यश्रीजीके दृष्टिगोचर नहीं कराया गया अतः उसमें कुछ अशुद्धियाँ रहगई हैं। शीघ्रताके कारण विशेषनाम व पारिभाषिक शब्दोंका पृथक्करण भी उसमें नहीं किया गया। कृपया पाठक उनको सुधारके पढ़ें। विशेष—

पृष्ठ	पङ्क्ति	शुद्धपाठ
३	१२	योग्य शिष्योंको अनुयोगमें लगानेवाले
४	१	अनन्त समयके
"	१४	अनभिलाप्य उद्वेगरहित
६	७	असंख्यात समयके
	२४	आवलिकारूप काल
"	१२	सामान्यरूपसे
७	२४	एक समयकी स्थितिवाले
८	१	ऊपरके नीचेका भाग
९	२६	एक २ से बढ़नेवालीसे
"	२५	करणलक्षण
११	१	कुम्भ-घड़ा
"	१५	केवलज्ञानका अभाव
१२	२१	गोरगुह—गोरक्षमुख नामक ग्रन्थ
"	१५	गुणमय परागसे पूर्ण
१३	५	गुणप्रत्ययिक अवधिज्ञान
१४	१५	चौथे समयमें सिद्ध होनेवाले
"	१६ के बाद	चउक्कपयाभि.. ...चार भववाले—स्वसमयसे
१५	२५	छेदोपस्थापनादिक अवसरपूजाका भेद
१६	५	यथाख्यातक
"	६	जिसके
"	१४	जैसे
"	१७	जोड़ा या कमसे कम
	२१	जालोंका
१७	१२	ठहरेगा
१९	९	तीसरे समयमें सिद्ध होनेवाले
	११	धर्म, अर्थ कामरूप-त्रिवर्ग
"	११	तेतीस
२	२	दसवें समयके सिद्ध
२२	१५	नालायक

शब्दकोषमें केवल सूचनाही दिया गया है वहाँ पाठक गाथा या सूत्रके अङ्कको ध्यानसे समझें। सुज्ञेषु किं बहुना।

सूचना—विहारमें होनेसे शब्दकोष पूज्यश्रीजीके दृष्टिगोचर नहीं कराया गया अतः इसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। शीघ्रताके कारण विशेषनाम व पारिभाषिक शब्दोंका पृथक्करण भी इसमें नहीं किया गया। सुज्ञ पाठक उनको सुधारके पढ़ें। विशेष—

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्धपाठ
१	१२	योग्य शिष्योंको अनुयोगमें लगानेवाले
४	१	अनन्त समयके
„	१४	अनभिष्वंग उद्वेगरहित
६	७	असंख्यात समयके
	२४	आवलिकारूप काल
„	१२	सामान्यरूपसे
७	२४	एक समयकी स्थितिवाले
८	१	ऊपरके भंगका भाग
९	२९	एक २ से बढ़नेवालोंसे
„	३५	कम्पकम्पन
११	३	कुम्भ–घड़ा
„	१५	केवलज्ञानका उत्पाद
१२	२३	गोडगुड–गोगुड नामक ग्रन्थ
„	३५	पुष्पमय परागसे पूर्ण
१३	५	पुष्पमध्यिक अवधिज्ञान
१४	१५	चौथे समयमें सिद्ध होनेवाले
„	१९ के बाद	चउक्कसंपाचि... चार नयवाले–स्वसमयसे
१५	२५	छेदितादिक अक्षरश्रुतका भेद
१६	५	यथानामक
„	९	जिसके
„	१४	जैसे
„	१७	छोटा या कमसे कम
	२३	तालीका
१७	१२	डालेगा
१९	९	तीसरे समयमें सिद्ध होनेवाले
„	११	धर्म, अर्थ, कामरूप–त्रिवर्ग
„	३१	तेबीस
२	२	दूसरे समयके सिद्ध
२२	३५	नालाब

शब्दकोषमें केवल शब्दार्थ दिया गया है, अतः पाठक गाथा या सूत्रके अर्थको ध्यानसे समझें। सुज्ञेषु किं बहुना।